कबीर
का
सामाजिक
दर्शन
डॉ० प्रहलाद मौर्य

कबीर का सामाजिक दर्शन

पूना विश्वविद्यालय की पी एच्० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध

●

लेखक

डॉ० प्रहलाद मौर्य

एम० ए०, पी एच्० डी०

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय

सटाना (महाराष्ट्र)

●

अनुशंसा लेखक

डॉ० रामकुमार वर्मा

पुस्तक संस्थान

१०९/५०ए नेहरू नगर, कानपुर १२

Kabir ka Samajik Darshan by Dr Prahlad Maurya

Rs 30 00

प्रकाशक

महेश त्रिपाठी, पुस्तक संस्थान १०९/५० ए नेहरू नगर कानपुर–२०८०१२

लेखक

डा० प्रहलाद मौर्य, एम० ए०, पी एच० डी०

मूल्य तीस रुपये 30/-

मुद्रक आराधना प्रेस, ब्रह्मनगर, कानपुर—२०८०१२

आवरण मुद्रक लक्ष्मी प्रिंटर्स, कानपुर

आवरण शिल्पी एस० मतवाला, कानपुर

जिल्दसाज अब्दुल गफर एण्ड संस, कानपुर

मानव समाज के शुभ चिन्तको, दार्शनिको
एव
कबीर-साहित्य के
अध्येताओ को
सादर समर्पित
प्रह्लाद मौर्य

अनुशसा

सत कबीर के विचारो का अनुशीलन इधर अनेक विश्वविद्यालयों के शोध छात्रों द्वारा हो रहा है । अनेक शोध प्रबन्ध इस सदभ म प्रकाशित भी हो चुके हैं । सत कबीर की विचारधारा जीवन के किन क्षत्रो मे प्रवाहित हुई है इस पर अनेक मनीषियो ने भी विचार किया है । जैसे जैसे मानव समाज धार्मिक और सामाजिक रूढ़िया से मुक्त होता गया है वस ही वसे सत कबीर के साहित्य की वास्तविक प्रेरणा समझी जाती रही है क्योकि सत कबीर न धम और समाज को मानवता के मूल्या पर ही परखा है । उसका महत्व बुद्धि और विवक की तुला पर भारी ही उतरता चला गया है ।

जिस निष्पक्षता से सत कबीर न समाज को परखा है उसी निष्पक्षता से मनस्वी शोधकर्ता डा० प्रहलाद मौय ने सत कबीर के समकालीन भार तीय समाज और कबीर के समाज दशन को परखा है । सत कबीर पर अब तक जितना भी काय हुआ है उसका अनुशीलन डॉ० मौय ने किया किन्तु पद्मपत्रमिवाम्भसा' जसी दष्टि हा उन्होने रखी और वे किसी पूर्वाग्रह से प्रभावित नही हुए । यदि उन्होन कोई आग्रह माना है तो स्वय सत कबीर का जिनकी सामाजिक चतना वे उन्हा से ग्रहण करना चाहते हैं । उनकी मौलिक अतद ष्टि ने कबीर के मनोभावो मे प्रवेश कर उन्ही तत्त्वा का विश्लेषण करना ठीक समझा है जो समकालीन परिस्थितियो के सदभ में कबीर के मन मे उन्बुद्ध हुए और उनके तटस्थ दृष्टिकोण से शाश्वत और चिरनवीन बन गये । इस शोध प्रबन्ध का परीक्षण करत हुए मुझे ऐसा अनुभव होता रहा कि मैं स्वय सत कबीर की दृष्टि से भारतीय समाज के दशन कर रहा हूँ ।

प्राक्कथन

कबीर साहित्य का मूल्यांकन कई तरह से किया गया है किन्तु ऐसा एक भी ग्रंथ नही है जिसमे उनके साहित्य और विचारधारा का विवेचन पूर्वाग्रह मुक्त होकर किया गया हो। कई शताब्दियो पहले से कबीर के अध्येताओ ने उनका एक विशिष्ट रूप निश्चित कर लिया है और सारे अध्ययन उसी रूप की व्याख्या करते रहे हैं। बीसवी शताब्दी मे थोडा सा प्रकाश उनके प्रखर व्यक्तित्व पर डाला गया। आगे के आलोचको और शोधकर्ताओ ने उसी को व्याख्यायित करने मे अपने प्रयत्नो की इतिश्री कर दी। होता यह है कि नया अध्येता पहले कबीर पर लिखी सारी पुस्तकें पढ़ता है और बाद मे कबीर की रचना। पहले पढी हुई आलोचना की पुस्तको से कबीर साहित्य के बारे मे जो दृष्टिकोण उसका बन जाता है वह उसी चश्मे से सारा कबीर साहित्य देखता है। परिणाम यह होता है कि कबीर के विचारों के स्थान पर आलोचको के विचार प्रमुख हो जाते हैं। प्रस्तुत शोध ग्रंथ मे इससे भिन्न पद्धति अपनाई गई है। इस ग्रंथ के सारे विवेचन विश्लेषण और निष्कर्ष कबीर की रचनाओ पर आधारित हैं आलोचको की राय पर नही। जहाँ तक मैं जानता हूँ कबीर साहित्य के इस ढग के अध्ययन का यह पहला प्रयास है।

कबीर पर अब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है। कुछ तो शोध प्रबन्ध हैं और कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ। लेकिन कबीर के व्यक्तित्व और उनकी साहित्यिक रचनाओ का ठीक ठीक मूल्यांकन अभी तक नही हो पाया। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखक डा० प्रहलाद मौर्य ने इस ग्रन्थ मे उनके सामाजिक व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है जिसके कारण कबीर के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओ के कई अपरिचित पहलू प्रकाश मे आये हैं। कबीर के सामाजिक व्यक्तित्व का उन्होने कबीर की रचनाओ के आधार पर ही प्रस्तुत किया है। वस्तुत कबीर का सामाजिक व्यक्तित्व ही प्रधान है। वे समाज से दूर रहने वाले निरे साधक नही थे। वे जानते थे कि वे जो कुछ हैं समाज मे बने हैं। इसलिए उनकी वयक्तिक साधना का भी सामाजिक पक्ष था। उनकी प्रत्येक अनुभूति के बाद वे पडित मुल्ला

और संतों को सम्बोधित करते हुए बताते थे और पुराने के सन्दर्भ में उसका विश्लेषण भी प्रस्तुत करते थे। तत्कालीन समाज के व्यवहार और विचार धारा पर उनके मार्मिक व्यंग्य थे जिनकी अभिव्यक्ति उनकी रचना में कहीं मार्मिक ढंग से हुई है और कहीं आक्रोश के रूप में। कबीर का आक्रोश सात्त्विक है किन्तु वह स्वभावतः तत्कालीन व्यवस्था के विरोध में है और उसके कारण ही आलोचकों ने कबीर को लोक धर्म चिन्तन का विरोधी मान लिया है। प्रसन्नता की बात है कि डॉ० प्रह्लाद मौर्य ने इस तथ्य को समझा है और इसी दृष्टि से उन्होंने अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में कबीर एक प्रकाश स्तम्भ हैं जहाँ से आगे के चिन्तकों पर उनका प्रकाश पड़ा है। किन्तु कुछ कारणों से उस प्रकाश को लोगों ने अपनी दृष्टि से देखा या जानबूझ कर अनदेखा कर दिया। कबीर साहित्य के मर्म को समझने वाले आग्रहमुक्त विद्वानों से यह आशा है कि वे कबीर के व्यक्तित्व, चिन्तन और रचना को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करें। डॉ० प्रह्लाद मौर्य से मैं विशेष रूप से यह आशा करता हूँ कि उन्होंने जिस कार्य का प्रारम्भ किया है उसका और अधिक पल्लवन करेंगे।

दिनांक २-१०-१९७४ ई०

डॉ० रामनारायण मौर्य
हिन्दी विभाग
पूना विश्वविद्यालय पूना-७

प्रस्तावना

हजारों वर्ष से भारतवर्ष में वेदों की स्थापना और उसकी परम्परा इतनी दृढ़ और मान्य रही है कि हमारे आध्यात्मिक जीवन और लौकिक कर्म लगभग उसी से संचालित होते रहे। वेद हमारी विचारधारा के ही स्रोत नहीं थे बल्कि जीवन पद्धति के समर्थक भी रहे हैं। चिन्तन के क्षेत्र में भी वेदों को हमने सर्वश्रेष्ठ माना और लोक व्यवहार के लिए भी उन्हीं की ओर देखते रहे। परिणामस्वरूप भारत में जो भी चिंतक, विचारक, ऋषि और सन्त हुए सभी वैदिक चिन्तन और लोक व्यवहार से प्रभावित रहे। वेदों को लेकर चिन्तन और व्यवहार की एक ऐसी परिपाटी बन गयी थी जिसके अन्तर्गत ही दूसरे लोग सोच पाते थे गौतमबुद्ध एक ऐसे क्रान्तिकारी और सजग चिन्तक हुए जिन्होंने उस परम्परा और परिपाटी से भिन्न कुछ सोचा और उसे व्यावहारिक रूप दिया। किन्तु कालान्तर में गौतमबुद्ध की यह क्रान्तिकारी चिन्तन धारा बहुत अधिक रूढ़िग्रस्त हो गयी और चिन्तन का स्थान परम्पराओं और रूढ़ियों ने ले लिया। गौतमबुद्ध के बाद कोई ऐसा प्रखर व्यक्तित्व सामने नहीं आया जिसने मूल चिन्तन की धारा को मोड़ दिया हो। चौदहवीं शताब्दी में कबीर का आविर्भाव उत्तरी भारत के इतिहास में एक क्रान्तिकारी घटना है। उन्होंने वैदिक परम्परा से आती हुई रूढ़ियों और बौद्ध परम्परा में प्रचलित कर्मकाण्डों को बिल्कुल त्याग दिया। नए सिरे से चिन्तन किया और अपने अनुभव के आधार पर नयी स्थापनाएँ कीं। कबीर को अपने काल में प्रचलित विचारों और धारणाओं से भिन्न बहुत कुछ कहना था और उन्होंने कहा भी। किन्तु कई सौ वर्षों तक उनके कथनों की वास्तविकता और उसका मर्म समझने का प्रयत्न नहीं किया गया। तत्कालीन समाज में कबीर की वाणी का चाहे जो प्रभाव रहा हो किन्तु सम्प्रदाय पर आधारित भारतीय विद्वानों ने उसे कोई मान्यता नहीं दी। वर्ग विद्वेष

के कारण कबीर पिछले चार सौ वर्षों तक उपेक्षित रहे। लेकिन इनकी समर्थ और प्रभावशाली वाणी कब तक छिपी रहती। आखिरकार कुछ विद्वानों ने उनकी प्रतिभा को समझा और हिन्दी के अन्य विद्वानों को समझाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप कबीर के पठन पाठन की एक श्रृंखला चल पड़ी।

कबीर की विचारधारा का समर्थन के लिए स्वतन्त्र रूप से अनेक पुस्तकें एवं शोध प्रबन्ध लिखे गये। परन्तु किसी ने भी तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में कबीर के सामाजिक दर्शन को जानने की कोशिश नहीं की। कबीर के विचारों को किसी धर्म से प्रभावित होने तथा उसे अध्यात्म से जोड़ने का प्रयत्न सभी ने किया है जिसके कारण कबीर के विचार या दर्शन की मौलिकता लोग समझ नहीं पाये। किसी ने श्रद्धावश उनका गुणगान किया और किसी ने ईर्ष्यावश उनकी निन्दा की। लेकिन अनुभूति प्रधान कबीर का दर्शन लोगों की समझ से परे रहा।

अधिकतर विद्वानों का प्रयत्न 'कबीर के दर्शन' को अद्वैतवाद इस्लाम के एकेश्वरवाद सूफीवाद आदि से जोड़ने की ओर दिखायी देता है और उसकी परम्परा लोग वेद में मानते हैं। परिणामस्वरूप कबीर का मूल दर्शन विद्वानों के चिन्तन का विषय नहीं बन सका। वस्तुतः उनके दर्शन में एक नवीन ढंग का प्रतिस्थापन है जिसके कारण वे पूरे हिन्दी साहित्य में सशक्त माने जाते हैं।

कबीर साहित्य के अध्ययन के लिए निष्पक्ष दृष्टिकोण और आग्रह मुक्त समझ का उपयोग कम ही हुआ है। इसी कमी को पूरा करने के लिए प्रस्तुत अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में व्यक्त विचार सिद्धान्त या मान्यताएँ वही हैं जो कबीर की रचनाओं में हैं। इसके लिए किसी लेखक या आलोचक के विचारों का सहारा नहीं लिया गया है। हमने इस बात पर जोर नहीं दिया है कि कबीर के बारे में मूर्धन्य लेखक और विद्वान क्या कहते हैं ? बल्कि इस बात पर जोर दिया है कि कबीर की वाणी क्या कहती है ? हर चीज के लिए प्रमाण कबीर की रचनाएँ हैं। इसलिए यह सारा का सारा अध्ययन उनकी रचना पर आधारित है विद्वानों की आलोचना पर नहीं। वस्तुतः इस अध्ययन के मूल में कबीर की वाणी है। हमने उसकी मात्र व्याख्या की है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मूल प्रतिपाद्य कबीर का सामाजिक दर्शन है। कबीर उच्चकोटि के चिन्तक थे। उनके प्रखर व्यक्तित्व का प्रभाव पूरे मध्यकाल पर पड़ा है उनका आविर्भाव चौदहवीं शताब्दी में हुआ था। यद्यपि उनके जीवन काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, फिर भी उनके काव्य का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि वे हिन्दी के अत्यन्त प्राचीन मत हैं। इसके लिए विभिन्न तर्कों और मतों का परीक्षण कर हमने उनका जीवनकाल को सन १३४८ १४४८ तक मानना ठीक समझा है। इन सौ वर्षों के भीतर तत्कालीन समाज में अनेक तरह के संघर्ष चले हुए थे। राजनीति, धर्म, साहित्य तथा दर्शन आदि के अन्तर्गत विविध प्रकार के संघर्ष थे। कबीर उन संघर्षमयी परिस्थितियों के बीच खड़े होकर अपने साहित्य का निर्माण कर रहे थे। वस्तुत उनका सारा साहित्य तत्कालीन संघर्षों की उपज है।

कबीर का सारा साहित्य कबीर का सारा व्यक्तित्व है। उनका व्यक्तित्व तत्कालीन समाज की विविध प्रतिक्रियाओं से बना था। इसीलिए उनके काव्य में विविध प्रकार की प्रतिक्रियाओं के दर्शन होते हैं। कबीर एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उनकी प्रतिभा का विकास अनेक रूपों में दिखायी देता है। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी है। इसीलिए वे अनेक दिशाओं से सार ग्रहण करते हुए दिखाई देते हैं। ज्ञान के अनेक मार्ग तथा चिन्तन की अनेक झीनी झीनी रेखाएँ उनके व्यक्तित्व के मूल से जुड़ी हैं। यह देख कर लोगों को भ्रम होता है। इसलिए वे कबीर के नाम के साथ महात्मा संत साधु कवि तथा अवतारी महापुरुष आदि विशेषण जोड़ते हैं—पर सामाजिकता को प्रधान मानने वाले कबीर सबसे पहले मानवतावादी हैं तब तक और कुछ। वे सत्य बोलने के कारण नैतिक हैं। उनके सत्य में उनका संत स्वरूप झलकता है। उनके विचार मानव हित की बातों से भरे हैं। उनके समाज में क्या कुछ नहीं था। जैसा वे चाहते थे। इसलिए उनकी कविता का स्वर स्वाभाविक रूप से ऊंचा हो गया है। आन्तरिक उद्वेग ने उनके स्वर को प्रखरता दी है। यही स्वर की प्रखरता उनकी कविता का तेज है जो पूरे वातावरण में निनादित है। इस निनाद में पूरा वातावरण प्रभावित है। वाणी की प्रभावकता ने ही कबीर को शक्तिशाली व्यक्तित्व दिया है। इसी आधार पर वे उच्चकोटि के कवि माने जाते हैं।

हिन्दी के इस उच्चकोटि के कवि ने अपने व्यक्तित्व को तत्कालीन समाज की प्रतिक्रियाओ मे शक्तिशाली बना लिया था। समाज उनके लिए एक अखाड़ा था जिसमे वे लड भिड कर स्वस्थ हुए थे। प्रतिद्वन्द्वी को पराजित करने म वे अति कुशल थे। क्योंकि उनके पास आत्मबल था और साथ ही साथ वे दूसरे की कमजोरियो से भी परिचित थे। इसलिए उनके सामने पाँडे और मुल्ला टिकते ही नही थे। इसका कारण यह था पाँडे और मुल्ला मे कर्मकाण्ड तथा बाह्याचार अधिक था पर कबीर इसके विरोधी थे। उन्होंने तो तत्कालीन समाज म फैली हुई बुराइयो के बीच अच्छाइयो की खोज की थी। उस समय के समाज म वेद पुराण कुरान तथा धर्म के नाम पर अनेक तरह के भ्रष्टाचार थे। कबीर उन अर्थहीन सामाजिक मान्यताओ को किसी भी प्रकार मानने के लिए तयार नही थे। इसलिए वे सभी को नकार कर मानव समुदाय को विशुद्ध सामाजिक दृष्टि से देखते थे। वे धार्मिक अधानुकरणो तथा वर्गवादी विचारधाराओ स बिलकुल मुक्त थे। वे इस तरह के भेद भरे समाज म रहते हुए भी एक प्रकार से तटस्थ थे। वे समझ बूझ कर अपनी जगह खड़ थे क्योंकि उनक भीतर भी एक न्याय युक्त समाज बनाने की शक्ति थी। इसीलिए उन्होंने एक जनप्रिय समाज की कल्पना की थी। उन्होंने केवल कल्पना ही नही की थी बल्कि सत्सग द्वारा उसे व्यावहारिक रूप भी दिया था। वे सत्सग द्वारा समाज को बल शाली बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने साधु सतो का एक सगठन बनाया था। उनका उठना बठना उन सतो के बीच था। उनका कहैं कबीर सुनो भाई साधो" वक्ता श्रोता का दृश्य उपस्थित करता है। वे अपने मन की बात साधु सतो स ही कहते थे। वे समाज के सभी अवांछित तत्वो की भर्त्सना करके न्याय की बात कहते थ। व मानव जीवन के टूटे हुए सम्बधो को जोड़न के लिए प्रयत्नशील थे। इसीलिए वे ऐसे सवमान्य सत्य की बात कहत थे जिस पर सबको विश्वास होता था। उनकी कथनी और करनी म बुराइयो के लिए कोई स्थान नही था। क्योंकि व स्वय समाज म किसी प्रकार की बुराई चाहते ही नही थे। इसीलिए उन्होंने अपने आप को चाहो तथा अपन आपको सुधारो का नारा लगाया। अपने को सुधारने के लिए अपने अन्दर की बुराइयों का त्याग आवश्यक है। जब तक कोई अपनी बुराई को समझता नही तब तक उस अच्छाई का ज्ञान नहीं होता। वास्तव म कबीर आत्मसुधारवादी थ। हर व्यक्ति अपन को सुधार ल तो पूरा समाज सुधर सकता है। कबीर क उपदेशों का यही निष्कर्ष है।

कबीर के दर्शन की सबसे बड़ी मौलिकता यह है कि वे अपने आप को देख लेने में समर्थ थे। अपने आप को देख लेने वाला व्यक्ति ही मौलिक दर्शन की सृष्टि कर सकता है। दर्शन का यह पहला लक्षण है। क्योंकि दर्शन की शक्ति अपने में होती है। दूसरे की आँखों से कोई नहीं देखता। कबीर को 'मानव समाज' को मानव समाज के रूप में देखने की विमल दृष्टि मिली थी। इस दृष्टि से वे ऊँच नीच, ज्ञानी अज्ञानी तथा नर नारी को समान रूप से देखते थे। वे स्वर्ग और धरती के विविध भेदों को नहीं मानते थे। उन्होंने इस धरती पर एक सत्य देखा था। जिस सत्य के प्रकाश से सारा जग प्रकाशित है। जड़ और चेतन का सम्बन्ध भी उसी से है। जीव और शरीर का सम्बन्ध भी उसी से है। मानव जीवन के लिए उपयोगी भौतिक पदार्थों में भी वही सत्य समाया हुआ है। इसलिए कबीर भक्ति और जीवन के दैनिक कार्यों को दो नहीं मानते। जीवन के विविध कर्म ही भक्ति के सोपान हैं। भक्ति करके मनुष्य कर्म करना सीखता है। भक्ति इसलिए की जाती है कि मनुष्य समाज में हर तरह से सुरक्षित रहे। भक्त बुरा कर्म नहीं करता। भक्त बुरे मार्ग पर नहीं जाता। इसलिए भक्ति का पथ कर्म का पथ है और कर्म का पथ जीवन का पथ है। यदि भक्ति से जीवन बनता है तो कर्म से भी जीवन बनता है। कर्म और भक्ति अन्त में एक ही हैं। समाज द्वारा मान्य लौकिक और पारलौकिक धारणाएँ कर्म करने के लिए हैं। मनुष्य कर्म करके जीवन पाता है और जीवन पाकर अमरत्व पाता है। अमरत्व मोक्ष पद है। मोक्ष कर्म करने वाला भी पाता है और भक्ति करने वाला भी। मोक्ष जीवन का अंतिम लक्ष्य है। इसी के लिए लोग भक्ति और कर्म दोनों करते हैं। अन्त में समाज द्वारा मान्य लौकिक और पारलौकिक धारणाएँ एक ही धरातल पर उतरती हैं। इस धरती पर कुछ भी अलौकिक नहीं है। जो कुछ है सब लौकिक है। यह सब समझने का फेर है। जब आदमी को ज्ञान नहीं होता तो उसे आश्चर्य होता है। ज्ञानी कभी आश्चर्य नहीं करता। वह सद् असद् समझता है। इसलिए वह कर्म करता है। कर्म मनुष्य को व्यक्तित्व देता है। अतः व्यक्तित्व पाने के लिए मनुष्य को कर्म करना चाहिए। कर्म वह है जिससे किसी की हानि न हो। यदि किसी के कर्म से किसी की हानि होती है तो वह कर्म नहीं है। समाज के सभी मनुष्य कर्म नहीं कर पाते क्योंकि उनके सामने स्वार्थ है। कर्म तो वही कर सकता है जो निःस्वार्थ हो। जो समाज के विविध सम्बन्धों में अपने को उचित रूप से समझता हो और उसके अनुसार कर्म करता हो।

वस्तुत कम, धम का दूसरा नाम है। कम से ही समाज का स्वरूप स्थिर होता है। इसलिए यदि समाज को सुधारना है तो मनुष्य को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कम करना चाहिए। कम की यापकता मे ही समाज का व्यापक सुख है। समाज क विविध भेदो म कम को छोटा नही बनाना चाहिए। जाति वण तथा धन के आधार पर किसी को छोटा या बडा नही समझना चाहिए। मनुष्य मनुष्य है। कम स उसका सीधा सम्ब ध है। इस लिए कम को बिगाडना मनुष्य को बिगाडना है और मनुष्य को बिगाडना, पूरे मानव समाज को बिगाडना है। कबीर यह नही चाहते थे कि मानव का पारस्परिक सगठन टूट जाय। वस्तुत कबीर के दशन का आविर्भाव मानव जीवन की समस्याओ को लेकर हुआ है। उन समस्याओ के हल का एक मात्र उपाय यह है कि प्रत्येक मनुष्य कम करके चरित्रवान बने।

मनुष्य अपने जीवन की अनेक समस्याओ का हल कम द्वारा करता है। कम प्रत्येक मनुष्य क जीवन से लगा हुआ है। जीवन को कम से अलग नही किया जा सकता। कम जीवन स ही पदा होता है और जीवन के साथ उसका अत हो जाता है। जीवन नही तो कम नहा। मनुष्य कम करता है तो सदगति पाने के लिए। उसी प्रकार भक्त भी भक्ति इसलिए करता है कि उसे सद्गति मिल। अत भक्ति कम का पर्याय है। भक्ति अपने आप म पदा होती है और कम भी। *कबीर क अनुसार भक्ति जीवन म ऊपर* स आरोपित कोई आदश नहा है। बल्कि यह सहज है। यह जीवनयापन का एक अग है। इसलिए कबीर भक्ति को जीवन दशन मानते हैं और उसे परम मूल्य के रूप म स्वीकार भी करत हैं। समाज म प्रत्येक मनुष्य के लिए भक्ति आवश्यक है। यदि वह भक्ति नही करता तो वह सदगति नही पा सकता। तब वह दुगति का अधिकारी है। तब वह अधर्मी और अ यायी है। इतना ही नही, तब वह धम और याय स दण्डनीय भी है। भक्ति म आत्मीयता का भाव जगता है। मनुष्य मनुष्य म प्रेम करता है। मनुष्य मनुष्य स सम्ब ध स्थापित करता है। भक्ति का फल यागात्मक है और कम का भी। प्रत्येक मनुष्य का कम ही उस समाज म रहन का अधिकार दता है। यदि कोई मनुष्य कम नहा करता तो वह समाज म रहने योग्य नहा है। इसलिए कबीर भक्ति को जावन का साधक रूप मानत हैं। यह निम तथा वह परा धम है जिस समय मनुष्य भक्ति करता है। भक्ति स मनुष्य ब्रह्म साक्षात्कार का सुख पाता है। वह ब्रह्म क आनन्द रूप का अनुभव

करता है । यही सुखानुभूति प्रह्लाद है । सुख जीवन का मूल है । सुख से अलग होना जीवन से अलग होना है । भक्ति से सुख प्राप्त होता है योग से सुख प्राप्त होता है और सत्कर्म से सुख प्राप्त होता है । इसलिए प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह समाज में रहकर सत्कर्म करे । अत कबीर की भक्ति में सामाजिक उपयोगिता का भाव निहित है, जो आज भी उतना ही सत्य है जितना कबीर के समय में था । सचमुच कबीर की भक्ति म कर्म करने की प्रेरणा है जिसे सबको स्वाभाविक रूप से स्वीकार करना चाहिए ।

कबीर के सामाजिक विचारों और कार्यों का मूल्यांकन यह है कि उन्होंने अपने व्यवहार से एक अलग समाज की स्थापना की थी जो परम्परावादी और रूढ़िगत मान्यताओं से भिन्न था । यह एक प्रकार से कबीर का सामाजिक विद्रोह था ।

इस शोध प्रबन्ध के लिए कबीर और उनके साहित्य से सम्बन्धित सभी प्रकार की प्राप्त सामग्री का सर्वेक्षण और निरीक्षण किया गया है किन्तु विषय के विवेच्य तत्त्वों की प्रामाणिकता के लिए कबीर के साहित्य को ही स्रोत माना गया है । कबीर का साहित्य कम नहीं है । उनके नाम पर बहुत सारी रचनाएं मिलती हैं जिनका संग्रह विविध पुस्तकों के रूप म हुआ है । उन पुस्तकों में हमें बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' अधिक प्रामाणिक लगी । इसलिए हमने इसके नवें संस्करण की प्रति को ही प्रस्तुत अध्ययन का आधार बनाया है । कबीर की रचना को तत्कालीन संदर्भों म समझ कर उसे नये ढंग से व्याख्यायित करने का प्रयास इसमें प्रमुख है और उसी के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को हमने प्रामाणिक माना है । इस प्रकार यह अध्ययन सर्वथा नवीन और मौलिक है । कबीर के दर्शन को मैंने चिन्तन की भाषा में व्यक्त करने का प्रयास किया है । वास्तव में कबीर का मूल दर्शन चिन्तन में ही उतरा है । उसी को विद्वानों के समक्ष शोध प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है । कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों के अन्वेषण का लेखक का यह प्रथम प्रयत्न है । जान बूझ कर इसे विस्तृत रूप नहीं दिया गया है । इस शोध प्रबन्ध म वही बातें कही गयी है जिनका सम्बन्ध कबीर और कबीर के दर्शन से है । इसमें किंवदन्तियां, वर्गवादी धारणाओं तथा श्रद्धा सिंचित उद्गारों के लिए कोई स्थान नहीं है । आशा है पाठकगण इसे इसी दृष्टि से देखेंगे ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डॉ० राजनारायण मौर्य के मार्ग दर्शन में लिखा गया है। इसे सन १९७१ ई० में पी एच० डी० के लिए प्रस्तुत किया गया था और अगले वर्ष इस पर पूना विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी है। इस शोध प्रबन्ध का मूल नाम समकालीन भारतीय समाज और कबीर का समाज दर्शन' था जिसे अब कबीर का सामाजिक दर्शन' नाम दिया जा रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के मार्ग दर्शक डा० राजनारायण मौर्य के प्रति मैं कृतज्ञ हूं जिनके निर्देशन में यह कार्य पूरा हुआ है। साथ ही साथ यहाँ के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ आनन्द प्रकाश दीक्षित का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य में लगे रहने की प्रेरणा दी है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के परीक्षक एवं अनुशंसा लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० रामकुमार वर्मा (इलाहाबाद) तथा डा० मदनगोपाल गुप्त (बड़ौदा विश्व विद्यालय बड़ौदा) का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पी एच० डी० के योग्य ठहराया। कबीर साहित्य के उन सभी विद्वानों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करता हूँ जिनका इस प्रबन्ध लेखन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्राप्त हुआ है।

कबीर मठ (पूना) के बाबा जगदीशदास महन्त का मैं हृदय से आभारी हूँ जिनके ग्रन्थालय से मुझे विविध पुस्तकें पढ़ने को मिली हैं। मराठा विद्या प्रसारक समाज के सरचिटणीस श्री बाबू राव जी ठाकरे, के० टी० एच० एम० कालेज के प्राचार्य डा० साल्के तथा सटाना कालेज के प्राचार्य श्री बी० के० डागरे की परम सहानुभूति का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस कृति के प्रति अपनी शुभेच्छा प्रकट की है।

पूज्य पिता श्रीराम तथा माता झूरादेवी का मैं आजीवन ऋणी हूँ जिन्होंने अनेक तरह के कष्ट सह कर अपने पुत्र को इस योग्य बनाया। प्रिय भाई रामअक्षयवर की सेवाओं को मैं कभी नहीं भूल सकता जिन्होंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता दी है। शोध कार्य करते समय मेरी पत्नी ने जो सहयोग दिया है, तदर्थ उनका भी आभार मानता हूँ।

पुस्तक संस्थान कानपुर के प्रकाशक श्री महेश त्रिपाठी का मैं हृदय से आभार मानता हूँ जिन्होंने कागज आदि की कठिनाई होते हुए भी इस कृति को सहृप प्रकाश में लाया है। उनकी यह सेवा भुलाने लायक नहीं है।

शीघ्रता के कारण मुद्रण आदि में जो कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों आशा है, पाठकगण उन्हें क्षमा करेंगे।

शामसीपुर
पट्टी नरेन्द्रपुर, जौनपुर
दीपावली सं० २०३१

—प्रह्लाद मौर्य

विषय-सूची

कबीर का सामाजिक दर्शन

प्रथम अध्याय

कबीर का जीवन काल

कबीर ने यद्यपि समस्त मध्यकालीन भारतीय साहित्य को प्रभावित किया था किन्तु उनके जीवन सम्बन्धी एतिहासिक तथ्यो का निराकरण अभी तक नही हो पाया है। अनेक मत मतान्तरो और विवादो के होते हुय भी यह प्रश्न पिछले पचास वर्षों से वैसे का वैस पडा हुआ है। इसका प्रधान कारण यह है कि न तो स्वय कबीर ने अपने सम्बन्ध म कुछ निर्णयात्मक बात कहा है और न इतिहास म ही उनसे सम्बन्धित तथ्यो का उल्लेख है। समसामयिक कवियो की रचनाओ, इतिहास ग्रन्थो तथा स्वय कबीर की रचनाओ म यत्र तत्र जो उल्लेख आते हैं उन पर ही विद्वानो ने अनुमान द्वारा कुछ निर्णय निकालने का प्रयत्न किया है जो पूर्णत विवाद रहित नही है।

अभी तक कबीर के जीवन काल को निर्धारित करने का प्रयत्न दो रूपो मे हुआ है। पहला है 'अन्त साक्ष्य" के आधार पर और दूसरा 'वाह्य साक्ष्य" के आधार पर।

१ अन्त साक्ष्य

कबीर ने अपनी रचनाओ म अपने विषय म जो कुछ कहा है उसमे से विद्वानो ने जितना प्रामाणिक माना है वह अन्त साक्ष्य है। कबीर के बारे मे यह भी प्रसिद्ध है कि व पढे लिखे नही थे, उन्होने अनुभव की सारी बातें मौखिक रूप से लोगो म कही थी।[1] उनका ज्ञानार्जन सत्सगति विद्यापीठ म हुआ था। वेद शास्त्र, स्मृति पुराणादि मे निहित तथ्यो का ज्ञान उन्हे सन्त समाज से ही प्राप्त हुआ था।[2] कबीर का काव्य ही नही पूरा हिन्दी सत-साहित्य सत्सगति एव आत्मचिन्तन म विकसित

---

१ मसि कागद छुयो नही कलम गह्यो नहि हाथ।
चारिउ जुग के महातम कबीर मुखहि जनाई बात ॥

२ 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृ० १५५

हुआ है। इसीलिये इनके काव्य म गुरु एव सत्सगति की महिमा का अत्यधिक वणन मिलता है।[1] कबीर ने इस बात का कहा भी उल्लेख नहीं किया है कि उनके गुरु कौन थ ? और उन सन्तो का नाम भी नहीं लिया है जिनकी सगति म व थ। स्वय कबीर द्वारा लिखित कोई भी हस्तलिखित ग्रन्थ अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर उनके जीवन काल का निणय किया जा सके। यह निश्चित है कि उनका काव्य किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ही लिखा गया है। जिस व्यक्ति ने कबीर की वाणी को लिपिबद्ध किया है उसका भी जीवन काल अज्ञात है। ऐसी स्थिति म केवल उनकी रचनाएँ ही उनके अस्तित्व एव जीवन काल निर्धारण की प्रमुख सामग्री हैं। इस सम्बन्ध म उनके विषय म पायी जाने वाली प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ बड महत्व की हैं।

कबीर के जीवन काल निर्धारण म बाबू श्यामसुन्दर दास ने कबीर की दो प्राचीन हस्तलिखित रचनाओ का सहारा लिया है और उन्ही दोनो के आधार पर कबीर के मौलिक पदो का सग्रह 'कबीर ग्र थावली' मे किया है। इन दोनो प्रतियो में से एक प्रति सन १५०४ ई० की और दूसरी प्रति सन १८२४ ई० की लिखी हुई है।[2] यद्यपि इन दोनो प्रतियों में लिपि काल मे ३२० वष का अतर है फिर भी दोनो में पाठ भेद अधिक नही है। अब तक पाई गई हस्तलिखित प्रतिया में सन् १५०४ ई० वाली प्रति अधिक प्राचीन है पर यह सन्देह रहित बात नही है कि जितने पद उसम सग्रहीत ह उतने ही कबीर के प्रामाणिक पद हैं। कबीर की और भी रचनाएँ हो सकती हैं पर यह प्रति अत्यन्त प्राचीन है। इसलिय हमने इस ही प्रामाणिक मानकर कबीर का अध्ययन किया है। कबीर ग्र थावली मे कबीर के जिन पदो का सग्रह किया गया है वे कबीर के ही लगते हैं। यद्यपि भाषा की दृष्टि से इसम पजाबीपन की झलक मिलती है।[3] फिर भी प्राचीनता का आभास कम नही

---

१ कबीर ग्रन्थावली–श्याम सुन्दरदास–

गुरुदेव को अग	पृ० १–३
सगति को अग	प० ३७
साध को अग	पृ० ३८–३९

२ कबीर ग्र थावली स, श्याम सुन्दरदास प० १

(प्रथम सस्करण की भूमिका)

३ 'दोनो हस्तलिखित प्रतियो मे जो पजाबीपन देख पडता है उसका कुछ कारण समझ म नही आता।

कबीर ग्रन्थावली—श्याम सुन्दरदास, पृ० ५।

(प्रथम सस्करण की भूमिका)

है। हो सकता है उस जमाने म इसी तरह की भाषा बोली जाती रही हो। यह बात तो निश्चित है कि कबीर के जमाने मे जो भाषा उत्तर प्रदेश मे बोली जाती थी वह आज जसी (परिमार्जित) नही थी। अतएव कबीर की भाषा की प्राचीनता यह सिद्ध करती है कि सन १५०४ ई० वाली प्रति प्रामाणिक है। और कबीर सन १५०४ ई० के आस पास विद्यमान थे।

भाषा के आधार पर कबीर का काल निणय

का य मे प्रयुक्त श द एव भाषा के आधार पर किसी कवि का जीवन काल निर्धारित किया जा सकता है। कबीर कालीन भाषा और आज की भाषा में काफी अ तर हो चुका है। श दो का जसा प्रयाग तत्कालीन समाज मे हाता था आज वैसा नही होता है। इसका प्रमाण कबीर का समूचा का य ही है। कबीर का का य सजन तत्कालीन समाज म प्रचलित जन भाषा मे हुआ है जिसे कबीर के पूववर्ती किसी कवि ने नहा अपनाया है। परवर्ती कवियो की रचनाओ म भाषा शली एव वण्य विषय का अनुकरण होन पर भी वह व्यजना नही है जो कबीर की भाषा मे है। कबीर ने अपने का य म कई जगह ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जो इतिहास मे किसी विशेष शासक से सम्बद्ध हैं और उन श दा का प्रचलन भी किसी विशेष काल तक ही होता रहा। उदाहरणाथ 'सुलतान' श द गुलाम वश मे सुलताना रजिया बेगम तथा सुलतान बलवन आदि के लिए शासक के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। भारतीय इतिहास म इस श द का प्रयाग तुगलक वश तक हुआ है। अकबर का शासन काल प्रारम्भ हाते ही शासक के लिए बादशाह श द प्रयुक्त होने लगा। कबीर ने अपने का य म कई जगह "सुलतान' शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है जसे वे स्वय किसी सुलतान के शासन काल म वतमान थे।[१] राजा, राव राणा, छत्रपति शब्द का भी प्रयोग कबीर ने अपने काव्य म शासक के अथ म किया है।[२] जिसका प्रयोग इतिहास मे मुगल काल के आरम्भ तक पाया जाता है। उनके का य मे प्रयुक्त इन

१ बिरहा बुरहा जिनि कहौ बिरहा है सुलितान।
जिहि घटि बिरह न स चर सो घट सदा मसान॥

क० ग्र०, पष्ठ ७/२१

कबीर थोडा जीवणा माडे बहुत मँडाण।
सबही ऊभा मेल्हि गया राव रक सुलितान॥

क० ग्र०, पष्ठ १६/५

२ इक दिन एसा होइ गा सबसू पड बिछोह।
राजा राणा छत्रपति सावधान किन होह॥

क० ग्र०, पृष्ठ १६/६

शब्दों से केवल इतना ही स्पष्ट हो पाता है कि कबीर गुलाम वंश से लेकर मुगल काल के प्रारम्भ तक के बीच में वर्तमान थे।

वर्ण्य विषय के आधार पर

वर्ण्य विषय भी अन्त साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। कबीर ने अपने वर्ण्य विषय में किसी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं किया है जो किसी निश्चित काल का प्रमाण दे सके। कबीर काव्य में वर्णित समाज में जिस प्रकार के व्यक्तित्व देखने को मिलते हैं वैसे व्यक्तित्व १२ वीं सदी से लेकर १६ वीं सदी तक पाये जाते हैं और शायद आज भी। उनके समाज में नैतिकता का पतन, आर्थिक दुर्व्यवस्था, और सामाजिक असमानता है जिसके प्रति उन्होंने अपना अन्तर्विरोध प्रकट किया है। कबीर धार्मिक कर्मकाण्डों तथा सामाजिक भ्रष्टाचारों से रहित एक सम्पन्न समाज का रूप देखना चाहते थे। उनका वर्ण्य विषय इन्हीं तथ्यों से परिपूर्ण है। अतः उनका वर्ण्य विषय भी उनके जीवन काल का सही प्रमाण नहीं दे पाता।

कबीर के जीवन काल निर्धारण में अन्तःसाक्ष्य के मूल निष्कर्ष

(१) प्राचीनतम पाई गई हस्तलिखित लिपि के आधार पर कबीर सन १५०४ ई० के पूर्व हुए थे।

(२) उनके काव्य में प्रयुक्त शब्द एवं भाषा के आधार पर कबीर मुगल वंश से लेकर मुगल काल के प्रारम्भ तक के बीच में रहे होंगे।

(३) वर्ण्य विषय के आधार पर कबीर का जीवन काल १२ वीं सदी से १५ वीं सदी के बीच माना जा सकता है।

२. वाह्य साक्ष्य

कबीर की रचनाओं के अतिरिक्त उनके विषय में जो अन्य जानकारी मिलती है, वह वाह्य साक्ष्य है। कबीर का जिन लोगों पर प्रभाव पड़ा है उनमें से कुछ सन्त, कुछ समाज सुधारक और कुछ ऐतिहासिक पुरुष हैं। कबीर के जीवन काल के सम्बन्ध में दी गई इन सबकी सूचनाएं वाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत आती हैं। अतएव वाह्य साक्ष्य को हम दो रूपों में देख सकते हैं।

(१) ऐतिहासिक प्रमाण।

(२) साहित्यिक रचनाएं।

१ ऐतिहासिक प्रमाण

कबीर के जीवन काल से किसी ऐतिहासिक घटना का स्पर्श नहीं होता, पर उनके मरने के बाद १६ वीं शताब्दी से ऐतिहासिक पुस्तकों में कबीर का नाम पाया जाने लगता है। उन पुस्तकों में पहली पुस्तक है—

आइन-ए-अकबरी।

ग आइन-ए-अकबरी

इस ग्रन्थ को अबुल फज़ल अल्लामी ने अकबर के राज्य काल के ४२ वें वर्ष बाद सन् १५९८ ई० में लिखा था।[1] इसमें दो बार कबीर का नाम आया है। पृष्ठ १२९ पर लिखा है कि मुवहिदी कबीर की आत्मा यहाँ (समाधिस्थल पर) विश्राम करती है। सन् १५९८ ई० तक कबीर के काव्य एवं कार्यों के सम्बन्ध में अनेक विश्वस्त किंवदन्तियाँ लोगों में कही जाने लगी थीं। कबीर अपने उदार विचारों एवं उदार सिद्धान्तों के कारण हिन्दू-मुसलमान-दोनों में पूज्य थे। जब उनकी मृत्यु हुई तो हिन्दू उनके शरीर को जलाना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते थे।[2] दूसरी जगह पृष्ठ १७१ पर लिखा है—कुछ लोगों का यह भी कहना है कि रतनपुर में कबीर की समाधि है। कबीर मुवहिद थे और उन्हें आध्यात्मिक दृष्टि मिली थी। उन्होंने अपने समय के सिद्धान्तों का भी प्रतिकार कर दिया था। हिन्दी भाषा में धार्मिक गाथा से परिपूर्ण कबीर के अनेक पद उस समय तक वर्तमान थे।[3]

आइन-ए-अकबरी में पाए गए इन दोनों कथनों से कबीर के जीवन काल के सम्बन्ध में केवल इतना ही पता चलता है कि सन् १५९८ ई० तक कबीर के बारे में बहुत सी जनश्रुतियाँ लोगों में कही जाने लगी थीं। विश्वस्त जनश्रुतियों के बनने में अधिक समय लगता है। निश्चय ही कबीर सन् १५९८ ई० से बहुत पहले हो चुके थे।

---

१ 'आइन-ए-अकबरी' (अबुल फज़ल अल्लामी) कर्नल एच० एस० जेरेट द्वारा अनूदित।
भाग २ कलकत्ता सन् १८९१ पृष्ठ १२९

२ 'कोई कहते हैं कि कबीर मुवहिद (अद्वैतवादी) यहाँ विश्राम करते हैं और आज तक उनके काव्य और कार्यों के सम्बन्ध में अनेक विश्वस्त जनश्रुतियाँ कही जाती हैं। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा अपने उदार सिद्धान्तों और ज्योतित जीवन के कारण पूज्य थे और जब उनकी मृत्यु हुई तब ब्राह्मण उनके शरीर को जलाना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते थे।"

३ कोई कहते हैं कि रतनपुर में कबीर की समाधि है जो ब्रह्मैक्य का मनन करते थे। आध्यात्मिक दृष्टि के द्वारा उनके सामने सत्य खुला था और उन्होंने अपने समय के सिद्धान्तों का भी प्रतिकार कर दिया था। हिन्दी भाषा में धार्मिक सत्यों से परिपूर्ण उनके अनेक पद आज भी वर्तमान हैं।'

आइन-ए-अकबरी — एच० एस० जेरेट द्वारा अनूदित
भाग २ — पृष्ठ १७१

उर्दू और फारसी के तीन और ग्रन्थों में कबीर का नाम आया है। वे हैं–

(१) 'दबिस्ताने मजाहिब"

(२) 'तजकीरल फुकरा'

( ) खजीन अतुल असफिया'

(१) दबिस्ताने मजाहिब–के लेखक हैं–मोहासिनफानी। इस पुस्तक में सभी प्रसिद्ध धर्म प्रणेताओं के उपदेशों और उनके व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है। इसमें पृष्ठ १४४ पर लिखा है कि कबीर जन्म से जुलाहे थे। वे एकश्वरवादी एवं वैरागी थे जिसके कारण हिन्दुओं में उनका बहुत मान था। कबीर आध्यात्मिक गुरु की खोज में अच्छे अच्छे हिन्दू और मुसलमानों के पास गए किन्तु उन्हें कोई अभीष्ट व्यक्ति नहीं मिला। अन्त में किसी ने उन्हें प्रतिभाशाली वयोवृद्ध ब्राह्मण रामानन्द की सेवा में जाने का निर्देश किया।[1]

(२) तजकीरुल फुकरा–तजकीरल फुकरा के लेखक मौलवी नसीरुद्दीन हैं जिन्होंने कबीर को रामानन्द का शिष्य बताया है। उपरोक्त दोनों पुस्तकों में प्राप्त वर्णन से केवल इतना ही पता चलता है कि कबीर रामानन्द के शिष्य थे। इन वर्णनों के आधार पर कबीर के जीवन काल से सम्बन्धित समस्या नहीं हल हो पाती।

(३) खजीन अतुल असफिया–इस पुस्तक के लेखक हैं मौलवी गुलामसरवर। इसमें कबीर का जन्म संवत हिजरी में दिया गया है जो परिवर्तन करने पर सन् १३९४ ई० ठहरता है। इस तिथि को पूर्णतया प्रामाणिक सिद्ध करने के लिये कोई अन्य ठोस आधार नहीं मिलता जिससे कि इस तिथि को सही माना जा सके।

२ साहित्यिक रचनाएँ

हिन्दी सन्त साहित्य में कबीर के जीवन काल से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। इन सन्तों में रैदास, पीपा, सेननाई, धर्मदास तुकाराम तथा गरीबदास प्रमुख हैं जिन्हें कबीर का समकालीन या उत्तर कालीन माना जाता है। इनमें सभी सन्तों का जीवन काल प्रामाणिक और निश्चित नहीं है। जिनका काल निश्चित भी है वे बाद के कवि या सन्त हैं।

(१) रैदास—इन सन्तों में रैदास जो कबीर के गुरु भाई कहे जाते हैं—

१ 'जन्म से जुलाहे कबीर जो ब्रह्माश्रय में विश्राम रखने वाले हिन्दुओं के मान्य थे, एक वैरागी थे। कहते हैं कि जब कबीर आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक की खोज में थे वे अच्छे-अच्छे हिन्दू और मुसलमानों के पास गए किन्तु उन्हें कोई इच्छित व्यक्ति नहीं मिला। अन्त में किसी ने उन्हें प्रतिभाशाली वृद्ध ब्राह्मण रामानन्द की सेवा में जाने का निर्देश किया।
दबिस्तान मजाहिब—पृष्ठ १४४।

प्रमुख हैं। रदास का जीवन काल सन् १४१४ ई० से सन् १४५० ई० तक माना गया है पर इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।[1] कबीर के बारे मे सत रदास ने लिखा है कि वे उच्च कोटि के निगु णोपासक ज्ञानी थे।[2] जिनके कुल म ईद बकरीद क अवसर पर गोहत्या होती थी उसी कुल म पदा हुए। कबीर तीनों लोक म प्रसिद्ध हो गए।[3] इससे उनकी जाति का पता चलता है, जीवन काल का नही।

(२) पीपा—फर्कु हर के अनुसार पीपा का ज म सन १४२५ ई० मे हुआ था।[4] पर कनिघम न इनका जन्म सन १३६० ई० से १३८५ ई० के बीच माना है।[5] पीपा ने कबीर की भक्ति और उनके व्यक्तित्व की प्रशसा करत हुए लिखा है कि यदि कलियुग म नामदव और कबीर न होते तो भक्ति का महत्त्व समूल नष्ट हो गया होता।[6] उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि कबीर ने जिस सत्य को प्रकाशित किया था पीपा उससे लाभान्वित हुए थे।[7] इन कथनो से इतना ही ज्ञात होता है कि कबीर पीपा से पहले हुए थ। पीपा भी रामान द क शिष्य माने जाते हैं।[8] यदि कबीर का रामान द का शिष्य होना सिद्ध हो जाय तो कबीर का होना भी सन १३६० ई० से सन १३८५ ई० के आस पास सम्भव है।

---

१ उत्तरी भारत की सत परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ २४३

२ निरगुण का गुन देखो आई। देही सहित कबीर सिधाई॥
रदास की बानी पृष्ठ ३३—बल्वेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित।

३ जाके ईद बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि, जाके बापि वसी करी पूत ऐसी करी। तिहूँ लोक प्रसिद्ध कबीरा।
आदि गुरु ग्रन्थ साहिब—तरन तारन—पृष्ठ ६९८

४ हि दी सत साहित्य—डॉ० त्रिलोकी ना० दीक्षित—पृष्ठ ४३।
एव डॉ० रामकुमार वर्मा। सत कबीर—पृष्ठ ५५

५ आर्कयालाजिकल सर्वे रिपोर्ट—भाग २ पृष्ठ २९५–२९७ और
भाग ३ पृष्ठ १११।

६ जो कलि नाम कबीर न होते।
तो ले वेद अरु कलिजुग मिलि करि भगति रसातलि देते॥
सत कबीर' डा० रामकुमार वर्मा पृष्ठ ५५।

७ नाम कबीरा साँच परकास्या तहा पीप कछू पाया।
सत कबीर—(प्रस्तावना) ले० डॉ० रामकुमार वर्मा,
पृष्ठ ५४–५५

८ हिन्दी सत साहित्य—डा० त्रिलोकी ना० दीक्षित—पृष्ठ ४३।

उर्दू और फारसी के तीन और ग्र थो मे कबीर का नाम आया है। वे हैं–

(१) 'दबिस्ताने मजाहिब"

(२) 'तजकीरुल फुकरा

( ) 'खजीन अतुल असफिया'

(१) दबिस्ताने मजाहिब–के लेखक है–मोहासिनफानी। इस पुस्तक मे सभी प्रसिद्ध धर्म प्रणेताओ के उपदेशो और उनके व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है। इसमे पृष्ठ १४४ पर लिखा है कि कबीर जन्म से जुलाहे थ। वे एकेश्वरवादी एव बैरागी थ जिसके कारण हिन्दुओ मे उनका बहुत मान था। कबीर आध्यात्मिक गुरु की खोज म अच्छे अच्छे हिन्दू और मुसलमानो के पास गए किन्तु उन्हे कोई अभीष्ट व्यक्ति नही मिला। अन्त मे किसी ने उन्हे प्रतिभाशाली वयोवृद्ध ब्राह्मण रामानन्द की सेवा मे जाने का निर्देश किया।[1]

(२) तजकीरुल फुकरा–तजकीरुल फुकरा के लेखक मौलवी नसीरुद्दीन हैं जिन्होने कबीर को रामानन्द का शिष्य बताया है। उपरोक्त दोना पुस्तको मे प्राप्त वर्णन से केवल इतना ही पता चलता है कि कबीर रामानन्द के शिष्य थे। इन वर्णना के आधार पर कबीर के जीवन काल स सम्बन्धित समस्या नही हल हो पाती।

(३) खजीन अतुल असफिया–इस पुस्तक के लेखक हैं मौलवी गुलामसरवर। इसम कबीर का जन्म सवत हिजरी म दिया गया है जो परिवर्तन करने पर सन १३९४ ई० ठहरता है। इस तिथि को पूर्णतया प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए कोई अन्य ठोस आधार नहा मिलता जिससे कि इस तिथि को सही माना जा सके।

२ साहित्यिक रचनाएँ

हिन्दी सन्त साहित्य म कबीर के जीवन काल स सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। इन सन्तो म रैदास पीपा सेननाई धर्मदास तुकाराम तथा गरीबदास प्रमुख हैं जिन्हे कबीर का समकालीन या उत्तर कालीन माना जाता है। इनम सभी सन्तो का जीवन काल प्रामाणिक और निश्चित नहा है। जिनका काल निश्चित भी है वे बाद के कवि या सन्त हैं।

(१) रैदास—इन सन्तो म रैदास जो कबीर के गुरु भाई कहे जाते हैं—

१ जन्म स जुलाहे कबीर जो ब्रह्मवाद म विश्वास रखने वाले हिन्दुओ के मान्य थ, एक बैरागी थ। कहते हैं कि जब कबीर आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक की खोज म थ व अच्छे-अच्छे हिन्दू और मुसलमानो के पास गए किन्तु उन्हे कोई इच्छित व्यक्ति नहा मिला। अन्त म किसी ने उन्हे प्रतिभाशाली वृद्ध ब्राह्मण रामानन्द की सेवा म जाने का निर्देश किया।
दबिस्ताने मजाहिब—पृष्ठ १४४।

प्रमुख हैं। रैदास का जीवन काल सन १४१४ ई० से सन् १४५० ई० तक माना गया है पर इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।[1] कबीर के बारे में संत रैदास ने लिखा है कि वे उच्च कोटि के निर्गुणोपासक ज्ञानी थे।[2] जिनके कुल में ईद बकरीद के अवसर पर गोहत्या होती थी उसी कुल में पैदा हुए। कबीर तीनों लोक में प्रसिद्ध हो गए।[3] इससे उनकी जाति का पता चलता है जीवन काल का नहीं।

(२) पीपा—फकुहर के अनुसार पीपा का जन्म सन १४२५ ई० में हुआ था।[4] पर कनिंघम ने इनका जन्म सन १३६० ई० से १३८५ ई० के बीच माना है।[5] पीपा ने कबीर की भक्ति और उनके व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यदि कलियुग में नामदेव और कबीर न होते तो भक्ति का महत्त्व समूल नष्ट हो गया होता।[6] उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि कबीर ने जिस सत्य को प्रकाशित किया था पीपा उसमें लाभान्वित हुए थे।[7] इन वर्णनों से इतना ही ज्ञात होता है कि कबीर पीपा से पहले हुए थे। पीपा भी रामानन्द के शिष्य माने जाते हैं।[8] यदि कबीर का रामानन्द का शिष्य होना सिद्ध हो जाय तो कबीर का होना भी सन १३६० ई० से सन १३८५ ई० के आस पास सम्भव है।

---

१ उत्तरी भारत की संत परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ २४३

२ निरगुण का गुन देखो आई। देही सहित कबीर सिधाई॥

'रैदास की बानी' पृष्ठ ३४—बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित।

३ जाके ईद बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहिं, आक वापि वसी करी पूत ऐसी करी। तिहूँ लोक प्रसिद्ध कबीरा।

आदि गुरु ग्रन्थ साहिब—तरन तारन—पृष्ठ ६९८

४ हिन्दी संत साहित्य—डॉ० त्रिलोकी ना० दीक्षित—पृष्ठ ४३।

एवं डॉ० रामकुमार वर्मा। संत कबीर—पृष्ठ ५५

५ आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट—भाग २ पृष्ठ २९५–२९७ और

भाग ३ पृष्ठ १११।

६ जो कलि नाम कबीर न होते।

तो ले वेद अरु कलिजुग मिलि करि भगति रसातलि देत॥

संत कबीर' डा० रामकुमार वर्मा पृष्ठ ५५।

७ नाम कबीरा साँच परकास्या तहाँ पीप कछू पाया।

संत कबीर—(प्रस्तावना) ले० डा० रामकुमार वर्मा,

पृष्ठ ५४–५५

८ हिन्दी संत साहित्य—डॉ० त्रिलोकी ना० दीक्षित—पृष्ठ ४३।

(३) सेन नाई—सेन नाई का जन्म काल सन् १४४८ ई० माना गया है।[1] सेन नाइ ने 'कबीर अरु रदास सवाद" म कहा है कि रैदास और कबीर गुरु भाई थे।[2] ये भी रामानन्द के शिष्य बताए जाते हैं।[3]

धमदास—धमदास का जन्म काल सन १४३३ ई० और मत्यु काल सन १५४३ ई० माना गया है।[4] इन्होने कबीर के मर जाने के बाद उनके शरीर के अन्तिम सस्कार के लिए बीरसिंह बघेला और बिजली खाँ के युद्ध की बात कही है और अन्त मे बताया है कि दोनो के युद्धोपरान्त शव के स्थान पर पुष्प ही अव शेष रहा जिसे हिन्दू मुसलमान दोनों ने बाँट कर अपनी अपनी रीति के अनुसार दाह और दफन सस्कार किया। फ्यूहर ने कबीर के नाम पर बिजली खाँ द्वारा बनवाया गया स्मारक का निर्माण काल सन १४५० ई० माना है।[5] अत कबीर सन १४५० ई० मे पूर्व हुए थे।

सत तुकाराम—सत तुकाराम का जन्म काल सन १५९८ ई० माना जाता है।[6] इन्होने अपनी अभग गाथा म यह बताया है कि गोरा कुम्भार रविदास चमार कबीर मुसलमान, सेन नाई आदि अपनी भक्ति के कारण ईश्वर म लीन हो गए। इससे कबीर के जीवन काल का सही पता नही चलता। इस वर्णन के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि कबीर सन् १५९८ ई० के पहले हुए थे।

गरीबदास—गरीबदास का जन्म सन १७१७ ई० और मत्यु सन १७७८ ई० माना गया है।[7] उन्होने कबीर को काशी का मुसलमान जुलाहा कहा है।[8] उपरोक्त

---

१ मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र-प्रो० रानडे-पृष्ठ १६०।

२ रदास कहै जी॥
सबल सिधारया निबला तारया सुनो कबीर गुरु भाई।
कहैं कबीर जी को है लघु दीरघ को नाही हम तुम दोयु गुरुभाइ॥
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, ले० डा० रामकुमार वर्मा—
पृ० ३५२

३ हिन्दी सत साहित्य-डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित पृ० ४३।

४ सत साहित्य-डा० सुदर्शन मजीठिया पृष्ठ २५८।

५ आरक्यालाजिकल सर्वे आफ इंडिया (वेस्टन प्राविसेज) भाग २ पृष्ठ २२४।

६ कबीर दर्शन—डा रामजीलाल सहायक पृष्ठ १३।

७ वही पृष्ठ १३।

८ सत काव्य—परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ ४५२।

९ मोलन को मुजरा हुआ जगल म दीदार।
कासी म अचरज भया गयी जगत की नि द॥
कबीर मसूर—परमानन्ददास-पृष्ठ २५३

सतो द्वारा उद्धत वणन के आधार पर कबीर के निश्चित जीवन काल का पता नही चलता। जिन सतों ने कबीर को अपना गुरु भाइ कहा है उनका भी जावन काल अनुमानित है। अत सता द्वारा कबार के वणन के आधार पर कबीर के वास्तविक जीवन काल का निराकरण नही हो पाता।

कबीर पथी साहित्य

कबीर के काल निर्धारण की दृष्टि से कबीर पथी साहित्य तो और भी भ्रामक है। कबीर पथियों ने कबीर और कबीर साहित्य की महिमा बढाने के लिए बहुत सी किंवदतियाँ तथा अनर गेय पद रच डाले हैं। कबीर पथी साहित्य मे कबीर के ज म और मत्यु सम्बन्धी दोहे भी मिलते हैं। उनके जन्म के सम्बन्ध मे "कबीर चरित्र बोध' म कहा गया है कि कबीर दिन सोमवार ज्येष्ठ मुदी बरसायत पव के अवसर पर सवत १४५५ (सन १३९८ ई०) मे पदा हुए थे।[1] पर इस तिथि का काई एतिहासिक प्रमाण नही मिलता और न कही दूसरी जगह ही इसकी चचा की गई है। यह केवल शुभ मुहूर्तो का बनावटी सयोग है जिसम कबीर जसे प्रतिभा शाली व्यक्ति के आविभाव की कल्पना की गयी है।

कबीर की मत्यु के सम्बन्ध म भी यह कहा गया है कि व माघ सुदी एका दशी सवत १५७५ को मगहर म पचत्व को प्राप्त हुए थे।[2] कबीर की निधन तिथि सवत् १५७५ मानने वाले विद्वान कबीर को सिकदर लोदी और गुरु नानक के सम कालीन ठहराने का प्रयत्न करते है—जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नही है। उपरोक्त दोनो तिथियो के आधार पर कबीर का १२० वप जीना सिद्ध होता है। कबीर के गुरु रामानन्द की भी आयु ११९ वप मानी गया है।[3] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि दोनो को चिरजीवी सिद्ध करने के लिए १२० और ११९ वप की दीघायु दोनो क साथ जोडी गयी है।

कुछ कबीर पथियो के अनुसार कबीर (सन ११६८-१४६८ ई०) ३००

---

१ चौदह सो पचपन साल गए चन्द्रवार एक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए॥
कबीर चरित्र बोध (बोध सागर स्वामी युगलानन्द द्वारा सशोधित) पृष्ठ ६०।

२ सवत पन्द्रह सौ पछतरा मगहर कियो गवन।
माघ सुदी एकादशी मिल्यो पवन मे पवन॥
कबीर कसौटी—भूमिका—बाबू लहना सिंह पष्ठ २४ बम्बई सवत १९७१।

३ कबीर की विचारधारा—गोविन्द त्रिगुणायत—पृष्ठ २८।

वष तक जीवित रहे ।[1] पर इतनी लम्बी आयु किसी भी व्यक्ति के लिए अवैज्ञानि है । यह कबीर पंथियो का श्रद्धा सिंचित उद्गार है जो कि कबीर को ३०० व तक जीवित रहने की बात कही है । अत कबीर पंथी साहित्य के आधार पर कबी के प्रामाणिक जीवन काल का पता नहीं चलता । उक्त साधु सतो के वणन से इतन ही पता चलता है कि कबीर रामान द, रदास पीपा तथा सेन नाई आदि के सम कालीन थ । इन सतो का जीवन काल सन १२६६ ई० से सन १४५० ई० के बी निर्धारित किया गया है । अत कबीर का होना भी इसी काल खण्ड के बीच अनु मानित किया जा सकता है ।

भक्तमाल—प्राचीन ग्र थो म नाभादास कृत भक्तमाल की भी विद्वानो मे बड चर्चा है जो प्राचीन कवियो के व्यक्तित्व एव जीवन सम्बन्धी उपकरण प्रस्तुत कर की एक महत्वपूर्ण सूची है जिसका निर्माण काल सन १५८५ ई० माना जाता है । इसमे कहा गया है कि कबीर वर्णाश्रम विरोधी, पक्षपात रहित सबके हित की बात कहने वाले व्यक्ति थे ।[3] इसस कबीर के जीवन काल का कुछ पता नहीं चलता पर इसी ग्र थ म रामान द पर भी एक छप्पय लिखा गया है जिसमे यह बताया गय है कि कबीर पीपा रदास आदि रामान द के शिष्य थे ।[4] पीपा का समय सन

---

१ सम्प्रदाय पृष्ठ ६०

२ सत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा—प्रस्तावना प० ३५ ।

३ कबीरकानि राखी नहा वर्णाश्रम पटदरसनी ॥
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो ।
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमनी स ग्री साखी ।
पच्छपात नहि बचन सबहि के हित की भाखी ॥
भक्तमाल (नाभादास) प० ४६१ ६२।

४ श्री रामान द रघुनाथ ज्यो दुतिय सत जगतरन कियो
अनतानद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि ।
पीपा भावानद रदास धनासेन सुरसर की धरहरि ॥
औरो शिष्य प्रशिष्य एकतें एक उजागर ।
विश्व मगल आधार सर्वानद दशधा के आगर ॥
बहुत काल वपुधारि क प्रनत जनन को पार दियो ।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो ॥
भक्तमाल—छप्पय ३१ ।

१४२५ ई० निश्चित किया गया है।[1] इससे ऐसा लगता है कि उक्त ग्रन्थ संतों का जीवन काल भी इसी के आस पास होना चाहिए।

ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकाश में कबीर का जीवन काल —कबीर के काल निर्णय में तीन ऐसे प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति हैं जो बाधक या साधक हैं।

(१) रामानन्द जीवन काल—सन् १२९९ से सन् १३६० ई०

(२) सिकन्दर लोदी जीवन काल—सन् १४८८ से सन् १५१८ ई०

(३) बिजली खाँ जीवन काल—सन् १४५० ई०

रामानन्द और कबीर में गुरु शिष्य का सम्बन्ध मान कर कबीर का काल निर्धारण करने वाले कई विद्वान हैं जिनमें डॉ० पीताम्बर बड़थ्वाल प्रमुख हैं। रामानन्द के काल निर्धारण में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। अगस्त्य संहिता, डा० भाण्डारकर[2] एवं ग्रियर्सन[3] के अनुसार रामानन्द का जन्म काल सन् १२९९ ई० माना जाता है। अगस्त्य संहिता के अनुसार रामानन्द का जीवन काल सन् १२९९ ई० से सन् १४१० ई० तक माना गया है। पर इतिहासकार रामानन्द का जीवन काल सन १२९९ ई० से सन् १३६० ई० तक मानते हैं।[4]

(२) सिकन्दर लोदी—लोदीवंश में सिकन्दर लोदी एक प्रसिद्ध मुसलमान शासक हुआ है जिसके शासन काल में कबीर का होना बताया जाता है। उसका शासन काल सन् १४८८ ई० से सन् १५१८ ई० तक माना जाता है।

(३) बिजली खाँ—नवाब बिजली खाँ द्वारा बनवाया गया कबीर का रौजा एक मुख्य ऐतिहासिक घटना है जिसका निर्माण सन् १४५० ई० में हुआ था।[5]

(१) रामानन्द—ओरछेवाले हरीराम व्यास ने सर्वप्रथम स्वामी रामानन्द को कबीर का गुरु कहा है। यदि कबीर का काल सन् १३९८ ई० से सन् १५१८ ई० तक मानते हैं तो कबीर रामानन्द के शिष्य नहीं हो सकते क्योंकि रामानन्द का प्रामाणिक काल सन १२९९ ई० से १३६० ई० तक माना गया है। कबीर

---

१ आउटलाइन्स आफ रिलिजस लिटरेचर आफ इंडिया—

फर्क्युहर—पृष्ठ ३२३।

२ 'वैष्णविज्म शैविज्म" डा० भाण्डारकर, पृष्ठ ६९।

३ जर्नल आफ दि रायल एसियाटिक सोसाइटी—१९२० पृष्ठ ३२३।

४ संत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा पृष्ठ ६०।

५ रामानन्द सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव—

डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ ७३।

६ आरक्यालॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया (न्यू सिरीज) नॉर्थ वेस्टर्न प्राविंसेज,

भाग २, पृष्ठ २२४।

का जीवन काल सन् १३९८ ई० से सन् १५१८ ई० तक सिद्ध करने के लिए रामानन्द का काल लोगों ने और आगे बढ़ा दिया है।[1] कबीर के अध्येताओं में रामानन्द का जन्म काल कहीं कहीं साम्प्रदायिक सन् १२९९ ई० से १०० वर्ष बाद तक माना है किन्तु प्रामाणिक जन्म संवत् को आगे पीछे करना ठीक नहीं। यह भी प्रसिद्ध है कि सेन धन्ना कबीर रैदास, पीपा आदि रामानन्द के शिष्य थे।[2] धन्ना का जन्म काल मेकालिफ ने सन् १४१५ ई० और पीपा का जन्म काल सन् १४०८ या सन् १४१८ ई० के लगभग माना है।[3]

धन्ना का ऊपर निर्देशित काल जन्म का नहीं बल्कि मृत्यु का है। रैदास का काल अभी तक अनिश्चित है किन्तु यह सम्भव है कि ये रामानन्द के समकालीन रहे हों। मेकालिफ ने जिस काल में पीपा का होना बताया है उसके अनुसार ये रामानन्द के शिष्य नहीं ठहरते। मेरे विचार से कबीर, रैदास पीपा आदि को रामानन्द का शिष्य प्रमाणित करने के लिए रामानन्द का काल और आगे तक खींचना ठीक नहीं है।

(२) सिकन्दर लोदी—अनन्त दास ने सन् १५८८ ई० में सिकन्दर लोदी और कबीर की भेंट वाणी में बतायी है। इस घटना के अनुसार कबीर और सिकन्दर लोदी समकालीन थे। परिचयी ग्रन्थ तथा किंवदन्तियों के आधार पर कहा गया है कि सिकन्दर लोदी ने कबीर को दंड देने की आज्ञा दी थी।[4] पर इस घटना का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि कबीर को भक्तों में महान भक्त सिद्ध करने के लिए सिकन्दर लोदी द्वारा कबीर को दंड देने और उनके बेदाग बचे रहने की बात कही गयी है।[5] यदि किसी नवाब या सामंत से कबीर की भेंट हुई थी

---

१ कबीर की विचार धारा —डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृष्ठ २८

२ हिन्दी संत साहित्य —डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृष्ठ ४२

३ द सिख रेलिजन वाल्यूम ६ लेखक एम० ए० मेकालिफ (सन १९०९)

४ स्याह सिकन्दर कासी आया। काजी मुल्ला के मन भाया ॥
कहैं सिकन्दर ऐसी बाता। हू तोहि दे दीजिए जाता ॥
गाफल सके न मान मोरी। अब देखूं साँची करामति तोरी ॥
बाध्यो पग मेल्या जंजीरू। ले बोरयो गंगा के तीरू ॥
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा पृष्ठ ३२९

५ कासी माहि सिकन्दर चमक्यो गल में जरि जंजीर का।
जिनको आइ मिले परमेसुर बंधन काटि कबीर का ॥
बषना जी की वाणी जयपुर सम्वत् १९९२ पृष्ठ १४८

६ हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय डॉ० पी० द० बड़थ्वाल पृष्ठ ११४

तो वह सिकन्दर लोदी नहीं था। बल्कि वह कोई प्रादेशिक शासक या नवाब रहा होगा। सम्भव है कि यह घटना तत्कालीन काशी के शासक के साथ घटित हुई हो। जिन मतों ने इस घटना की चर्चा की है उन्होंने किसी बादशाह या शासक का नाम नहीं लिया है बल्कि किसी शासक द्वारा कबीर को दंड देने की बात कही है। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल तथा डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी ने इस घटना को असत्य और निराधार बताया है। अतः सिकन्दर लोदी और कबीर का समकालीन होना अप्रमाणिक है।

मेरे विचार से कबीर पंथी साधु मतों ने कबीर को अधिक महान सिद्ध करने के लिए कबीर रामानन्द और सिकन्दर लोदी को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया है क्योंकि ये तीनों उस युग के ऐसे ज्योतिर्मय नक्षत्र हैं जिनका प्रभाव पूरे समाज व इतिहास पर पड़ा था। यद्यपि तीनों महान व्यक्तियों को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है पर तीनों के व्यक्तित्व और जीवन काल में काफी अन्तर है। रामानन्द जैसे उदार व्यक्ति के शिष्यत्व में कबीर के जैसे विचार भले पनप जायें पर सिकन्दर लोदी जैसे कट्टर शासक के राज्य में कबीर जैसा शक्ति तबारी अपनी बात बेधड़क कह जायें असम्भव जान पड़ता है।

(३) बिजली खां—यही बात बिजली खां और उसके द्वारा बनवाये गये स्मारक (रौजे) की। सन १४५० ई० में बिजली खां ने बस्ती जिले में आमी नदी के किनारे मगहर नामक गाँव में कबीर के नाम पर एक रौजा बनवाया था जिसका जीर्णोद्धार फिदाई खां ने सन १५६८ ई० में करवाया था।[1] इसका वर्णन गरीबदास जी ने भी किया है।[2] इससे यह घटना प्रामाणिक लगती है।

आरक्यालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया में बिजली खां द्वारा बनाए गए स्मारक का उल्लेख है। इसलिए यह ऐतिहासिक सामग्री सबसे ठोस है। पर बिजली खां की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को अभी तक किसी विद्वान ने प्रस्तुत नहीं किया है। यह कहाँ का शासक था? इसका कार्य काल क्या था? यह सब निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है किन्तु 'आरक्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया' में इसका उल्लेख है इसलिए लगता है कि नवाब बिजली खां एक ऐतिहासिक व्यक्ति है और उसके द्वारा बनवाया गया स्मारक एक ऐतिहासिक घटना है। कुछ भी हो पर बिजली खां के

---

१ आरक्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया (न्यू सिरीज) नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज, भाग २, पृष्ठ २२५।

२ मगहर में ता ऊपर बनाई बिजली खान पठाना ॥
कासी चौरा उठि गया भौरा दोनो दीन दिवाना ॥
"गरीबदास जी बानी", पृष्ठ ७१

अस्तित्व म कोई ■ न्देह नही है।

यह स्मारक कबीर के मरन क बाद ही बनवाया गया होगा। यदि कबीर का निधन सन् १४४८ ई० म हुआ था (जसा कि मन विल्सन आदि ने माना है) तो उनके नाम पर स्मारक बनवाने का विचार करने और बनवाने म दो वष का समय लगना स्वाभाविक जान पडता है।

डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी का कहना है कि कबीर का काल विक्रम की १५ वी शताब्दी के आगे किसी भी प्रकार नही जा सकता। उनका कथन है कि सन १३६० ई० से सन् १४०४ तक का काल उत्तर भारत म क्रान्ति का काल है। इन दिना राजनतिक एव धार्मिक क्रान्तियाँ साथ साथ चल रही थी।[1] कबीर जस क्रान्तिकारी विचारक का होना इसी काल म सम्भव है। सन् १३४८ ई० म कबीर उत्पन्न हुए थे और २५ वष की अवस्था म उन्होने अपनी बात लोगा म कहनी प्रारम्भ कर दी थी।

इस प्रकार कबीर के जीवन काल के सम्बन्ध म विभिन्न विद्वाना के विभिन्न मत लक्षित होते हैं। किसी ने उनकी ज म तिथि को सही मानकर उनके पूरे जीवन काल का खाका खीचा है तो किसी ने उनकी मत्यु तिथि को प्रामाणिक मानकर कुछ वष पहले की ओर जाकर ज म काल का अ दाज लगाया है। कुछ विद्वानों न न तो कबीर का ज म काल दिया है और न मत्यु काल ही बल्कि बीच का काल चुन लिया है। इस प्रकार विद्वाना ने २१८ वष के बीच कबीर के होने की बात कही है। इन लोगो ने कबीर का ज म काल सन् १३०० इ० से १४४० इ० तक (१४० वष) और मत्यु काल सन १४२० ई० से सन १५१८ ई० (९८ वष) तक माना है। कबीर की कम स कम आयु ५० वष और अधिक से अधिक आयु १२० वष लोगो ने मानी है। कबीर का काल निर्धारण करने मे कुछ विद्वानो न कबीर पथी साहित्य का सहारा लिया है और कुछ विद्वानो ने एतिहासिक सामग्री का। ऐतिहासिक सामग्री का आधार कुछ पुस्तकें तथा हस्तलिखित प्रतियाँ है। स त का य हस्तलिखित प्रतियो म निहित है। जो कि काल निर्धारण की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है।

सन्त कबीर के काल निणय के सम्बन्ध म जो नयी सामग्री प्राप्त हुई है उसका विश्लेषण और परीक्षण आवश्यक है। 'सेन्ट्रल पब्लिक लायब्रेरी पटियाला म 'दादूदयाल की वाणी' शीपक से एक हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। इसकी पुस्तकालय क्रम सख्या २७०५ है। जिसम ६५६ पष्ठ हैं। इसका लिपिकाल सवत् १८५७ (सन १८०० ई०) है। इसम दादूदयाल तथा अ य स तो की वाणी सग्रहीत

---

१ हिन्दुस्तानी कबीरदास जी का समय —डा० रामप्रसाद त्रिपाठी प्रयाग सन १९३२ ई० पष्ठ २०७–२१०

है । ग्रंथ का प्रारम्भ इस प्रकार है—

थी रामजी सति ॥ श्री दादूदयाल जा सहाय ॥
सकल साध जी सहाइ ॥ स्वामी दादूदयाल जी
की वाणी लिप्यता ॥ प्रथम गुरुदव को अग ॥
दादू नमो नमो निरजन नमस्कार गुरु देवत ॥
वदन श्रब साधवा प्रणाम पारगत ॥'

ग्रन्थ के अन्त मे पुष्पिका इस प्रकार है—

इति पोथी सम्पूरण समापता। सवत १८५७ ॥ मीती भादुआ सुदी अष्टम ॥८॥ वार बीसपती वार तादीन पोथी सपूरण भवत ॥ नगर पूरी अजमर ता मधी पोथी लिपी ॥ सरब जोड ॥१०००॥ बाबाजी हरिदास जी का सिप ॥ बाबाजी जीवनदास जी का सिप, बाबाजी माऊदास जी का सिप, बाबाजी हरजी रामजी तीन्ह का गुलाम मैं पाना जाद दास (स) व साधा का गुलाम बालकदास तीन पोपी छापी । बाबाजी हरजी रामजी की हुजूरी ॥ जो बाच पढि बीचार जन सतराम ॥ दादू राम ॥ दादू राम ॥

इस ग्रन्थ की निम्नलिखित सूचनायें बडे महत्व की हैं । जिन्हे अविकल रूप से यहा दिया जा रहा है—

श्री स्वामी जी का वचन लिप्यते ॥ इष्ट का व्यौरा जादि जैमल जी की माता जमल को सिप करवान ल्यायी स्वामी जी पासि ॥ जब माता बोली स्वामी जी इस बालक को मुकुन्द भारथी सन्यासी पासि दष्या (दीक्षा) दवण ले गयी था । तब स यासी बोल्या माता यह आत्मा स्वामी दादू जी की है । हम सिप न करा । स्वामी दादू जी पासि ल दष्या (दीक्षा) माई । तब मैं वाग्या हु गुसाइ जी स्वामी दादू कोण है । उनका कौण अस्थान है । किस वरण म हैं । कौण भेप है । तब स्वामी जी सन्यासी यो बोल्या । स्वामी दादू प्रमगुर के साध हैं । गुणा अतीत हैं । सरब सौं रहत हैं । आतमा कितारथ निमति सरीर धर्या है । प्रमस्वर जी की अग्या सौं आया है । ससार का कल्याण करण वामन राम जी ने भेज्या है । अमदाबाद गुजरात म प्रगट हैं । सामरि आवेंगे पीछे अबरि आवेंगे ॥ तब माता तू उनका नाम सुनेगी । जरहा महिमा करहिंगे । तब इस बालक को लेकरि जाइय । किसी वरण म नही । कोऊ भेप पथ मैं नही । निरपप साध हैं । तीन कोडि आतमा उनके पीछे उतरेंगी । अस भजन के पुजह ॥ साइ अब स्वामी जी तुम्हारी महिमा सुणि करि तुम पासि इस बालक को ल्यायी हौं । इस बालक को गुर मत्र सिपावो । तब स्वामी जी बोल्या सुण माता जी तीन कोडि आत्मा क्या ल्पा ह ॥ आत्मा कई कोडि उधरगी । जौ लौं धरती अकास है तौ लौं निरगुन भगति का मेरा बाध्या है । इष्ट बिभचारी को मारग को नही । एक राम जी का आसरा राषण उस मम कम मैं अटकेंगे नहीं ।

ज्यू गुर साधु कहैगे त्यू ही मानि स्हिगे। गुर साधु की आग्या मैं चल्ग। उनको मुक्ति का मता कोई नहीं। हमारा राम जी का निह्चा एसा है। य प्रसग माता सुणी करि देह अवस्था भूल्ि गई। ब्रह्म दृष्टि भई। चम दृष्टि मिटि गई। अनिन भगति एक राम जी की रिदय आई। रोम रोम मैं गुप भया। तब माता सावधान होइ क बोली स्वामी जी धनि आज का दिन तुम्हार दरसन पाया। अब हम कितारय हुय। धनि है वह सन्यासी जो प्रथम तुम्हारा नाम सुणाया था। तो तुम्ह पासि हम आय। गुर मत्र दीया। माथा हाथ धरया स्वामी जी न। जमल तब बालक की अवस्था भूल्ि गया। उपदन सुणिक माता पुत्र शोक मुक्त भय ॥१॥ इति एक प्रसग सम्पूरण भया ॥ रामजा सति सवत ॥१६०१॥ श्री स्वामी दादू जी प्रगटे प्रमसवर जी की आग्या पायी। सवत् १६६० ॥ १ जेठ वदी ॥ ८ ॥ सनिवार चार पहर दिन चढ़। श्री स्वामी जी निज स्वरूप विष लीन हुय। तब कसरि की वरषा हुई। अर जन सबद आकास वाणी हुई। ताल मृदग, दुदुभि आसमान म बाजे। सो साध सेवग सुणी अचभ रह। धनि स्वामी जी धनि दादू दयाल ॥ सवत ॥१६ द॥ सावण मास गरीव दास जी प्रगटे ॥१॥ सवत् १६९२ ॥ २ ॥ पोहवदी ॥१३॥ कीरतन कर क धणि तौ धारि सबद गाइ आरती करिय सन बुलाई यह आग्या करि कि देषो बाई जी है। इनको तुम्ह स्वामी जी का अग जाणियो। अर तीरथ व्रत का भरम देषिओ। किही क उपज। अर किही स्वामी की सगति करिज नही स्वामी जी की दढ बिस वास राषिज्यो याको भलो हुवगा ॥ इति ॥ अथ सवत ॥१४०५॥ श्री कबीर जी उत्पन्ने ॥ सवत १५०५ ॥ समाये साहिब म। सवत ॥ १५२६ ॥ बसाष सुदी ॥पहर ॥ १ ॥ बनड नानक जी की जनम होया पिता कालू बदी माता तिपरा। बरष ॥ ६९ ॥ नानक जी देह म रह। सवत ॥ १५९५ ॥ पासु सुदी ॥ १० ॥'

इसके बाद क पन्ने नही है।

उपरोक्त दादू दयाल जी की वाणी मे चार स तो का जीवन काल दिया हुआ है जो निम्नलिखित है।

१ श्री दादूदयाल—सवत १६०१–१६६०

२ श्री गरीबदास—सवत् १६३२–१६९२

३ श्री कबीरदास—सवत १४०५–१५२५ ई० १३४८–१४६८ ई०

४ श्री नानक जी—सवत् १५२६–१५९५

इसम जो कबीर का मत्यु सवत दिया गया है उसमे सवत १५२५ का दो थोडा सन्देहात्मक है। लगता है कि यह पहले शू य था अर्थात सवत १५०५ था बाद म उसी शू य के स्थान पर उसी स्याही मे अक दो बना दिया गया है। सम्भव है कि लिपिकार न पहले शू य लिखा हो और बाद म उस दो बना दिया हो। यह शायद इसी विचार स कि कबीर की आयु लोगो ने १२० वष मानी है।

इस हस्तलिखित ग्रन्थ में चारों तिथियाँ जो दी गई हैं उनमें से दादू दयाल, गरीबदास तथा नानक जी की विवाद रहित हैं।[1] ऐसी स्थिति में कबीर की दी हुई तिथि मुझे ठीक लगती है। अगर हम कबीर का जीवन काल संवत १४०५ (सन १३४८ ई०) से संवत १५०५ (सन १४४८ ई०) तक या संवत १५२५ (सन १४६८ ई०) ही मान लें तो रामानन्द सम्बन्धी समस्या हल हो जाती है। फिर कबीर को रामानन्द का शिष्य प्रमाणित करने के लिए दोनों को आगे-पीछे सरकाना नहीं पड़ेगा। यह प्रश्न अवश्य ही विचारणीय है कि कबीर रामानन्द के शिष्य थे या नहीं? स्वयं कबीर ने कहीं इस बात का उल्लेख नहीं किया है। पर इसका उल्लेख १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अर्थात कबीर की मृत्यु के ५० वर्ष के अन्दर ही से मिलने लगता है। भक्त कवि व्यास जी (सन १५१०–१६११ ई०) ने पहली बार कबीर को रामानन्द का शिष्य कहा है।[2] संवत १६४५ (सन १५८८ ई०) के आस पास लिखी गई अनन्तदास की परिचयी में इसका स्पष्ट उल्लेख है—

रामानन्द का सिष कबीरा ।
भक्ति का साचा भगति का धीरा ॥

रामानन्द सुलझे हुए विचारों के व्यक्ति थे। वे जाति पाँति का विचार न करके भक्ति का प्रचार करने वाले महात्मा थे। उनके दरबार में भक्ति का द्वार सभी जातियों के लिए खुला था। इसीलिए पीपा, धना तथा रैदास आदि उनके शिष्य हो गए थे।[3] यदि रामानन्द के काल में कबीर हुए थे तो अवश्य ही उनसे प्रभावित हुए होंगे। कबीर उसी व्यक्ति को अपना गुरु मान सकते थे जो मूलतः क्रान्तिकारी विचारों का हो। उस समय रामानन्द के अतिरिक्त एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखायी पड़ता जिसने कबीर को प्रभावित किया हो। यदि रामानन्द को कबीर ने गुरु माना है तो केवल इसीलिए कि वे तत्कालीन अन्य साधु सन्तों की तरह संकुचित विचार धारा के व्यक्ति नहीं थे। अतः रामानन्द और कबीर में गुरु शिष्य का सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी जी सन १३६० ई० से १४०४ ई० तक उत्तर भारत में शान्ति का काल मानते हैं जिसके भीतर प्रथम क्रान्तिकारी विचारक थे रामानन्द

---

१ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृ० ४११, ७२१ और ३५८

२ परिचयी साहित्य—डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, पृष्ठ १०६

३ 'कबीरश्च रैदासः सेना पीपा धनास्तथा ।
पद्मावतीतदवद्घश्च पठत च जितेंद्रिय ॥१८॥
भक्ति सुधा बिन्दु स्वाद रूपकला जी पृ० २९४

समय वही संवत १४८५–१५०५ के ही लगभग सिद्ध न हो जाय।'[1]

आचार्य चतुर्वेदी जी के पास एसा कोई ठोस प्रमाण नहीं था जिसके आधार पर व कबीर का जीवन काल (संवत १४०५ संवत १ ०५) सन १३४८ ई० सन १४४८ ई० के लगभग नहीं कह सके। पर उन्हें लगने लगा था कि संवत् १४५५ से संवत १५७५ वाला काल पूर्णतः प्रामाणिक नहीं है। इसीलिये उन्होंने उपरोक्त स देह प्रकट किया है।

निष्कर्ष

मेरे विचार से कबीर का जीवनकाल संवत १४०५–१५०५ (सन् १३४८–१४४८ ई०) तक मानना अधिक समीचीन है। इस ओर विद्वान भी मानते हैं।[1] परिस्थितियों के अवलोकन से पता चलता है कि इस काल से जनता पीड़ित और विक्षुब्ध थी। हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों में अपने अपने धर्म और जातीयता का रंग गहरे रूप में चढ़ चुका था जिसका कि समर्थन कबीर का काव्य ही करता है। अतः कबीर पंथ में प्रचलित यह दोहा जो डा० एच एस विल्सन को किसी संत से प्राप्त हुआ था, कबीर की मृत्यु (संवत १५०५) के सम्बन्ध में अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है।

> संवत पंद्रह सौ औ पाँच में मगहर कियो गवन।
> अगहन सुदी एकादशी मिल्यो पवन में पवन॥"

---

१ उत्तरी भारत की संत परम्परा–परशुराम चतुर्वेदी पृ० १३७

२ 'कबीर और कबीर पंथ'–डॉ० केदारनाथ द्विवेदी पृ० ६४

द्वितीय अध्याय

कबीर कालीन परिस्थितियाँ

मध्यकाल भारतीय इतिहास का वह युग है जिसमे दो संस्कृतियो का सघर्ष बहुत दिनो तक चलता रहा । हिन्दुओ के प्रदेश मे मुसलमानो के बलात आक्रमण एव अत्याचार भारतीय जनता के विरोधी तत्व बन गए । इसीलिए दोनो का हृदय कभी एक न हो सका । इसका मुख्य कारण यह था कि दोनो जातियो के दो अलग अलग धर्म थे और दोनो धर्म की अलग अलग दो दिशाए थी । एक मूर्ति पूजक था तो दूसरा मूर्ति भजक । एक प्रेम से समझौता करना चाहता था तो दूसरा तलवार के बल पर भौतिक पदार्थों का सग्रह । एक अपने आन्तरिक द्वन्द्वो से विकल था तो दूसरा उससे लाभ उठाने के लिए तत्पर ।

भारतीय राजाओ के पास अपना गौरवशाली अतीत था जिसके नाम पर वे स्वय को श्रेष्ठ समझते थे । दूसरी तरफ मुसलमानो के पास सैनिक शक्ति थी जिसके आधार पर वे भारतीय राजाओ को नगण्य मानते थे । हिन्दू धर्मभीरु थे । जो पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के कारण शक्तिहीन हो गए थे । दूसरी तरफ मुसलमान सैनिको मे जातीयता का समान स्तर, नया उत्साह, राज्य पाने की उत्कट इच्छा और अन्त मे जन्नत की लालसा थी । उन्हें भारत मे अपने राज्य की स्थापना करनी थी । इसलिए उनके सैनिको मे अधिक साहस व कर्मण्यशीलता थी । इधर भारतीय शासक अपनी आन्तरिक कमजोरियो के कारण निर्बल हो चुके थे। इसीलिए मुसलमान शासको को भारतीय शासको की कमजोरी का लाभ उठाने का अवसर मिला । वस्तुत तत्कालीन सघर्षों का मूल कारण लोगो मे स्वय को श्रेष्ठ समझने की भावना तथा निजी अधिकार बढाने का प्रयत्न था । कोई सुख सम्पत्ति पाने के लिए प्रयत्नशील था तो कोई धार्मिक एव साहित्यिक ख्याति पाने के लिए । सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रो में होड थी । निर्बल पीछे रह जाता था और सबल आगे बढ जाता था । एक की प्रगति दूसरे के दुख का कारण थी । प्रगति स्वार्थ की थी । एक की आय दूसरे पर आधारित था । इसका भी कोई समुचित समझौता नहीं था । एक दूसरे को लोग धोखा देकर अपनी शक्ति और अर्थ का विस्तार करते थे । परिणामस्वरूप समाज मे अवसरवादी व्यवहार का बोलबाला था जिसके कारण मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध बिगड गया था । सामाजिक सगठन टूट गया था । हर एक जाति, धर्म और वर्ग के

लोग सकुचित वृत्ति के हो गये थे। राष्ट्रीय भावना का लोप हो गया था। मध्य कालीन सम्पूर्ण परिस्थितियों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वत्व को श्रेष्ठ समझने तथा अपने को समशाली बनाने की भावना ने ही जीवन के सभी क्षेत्रों में संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी थी। इसी लोलुपता के कारण राजनीति, धर्म तथा साहित्य आदि में यह संघर्ष समान रूप से बना रहा। इन विविध संघर्षों की झलक कबीर के काव्य में यत्र तत्र मिलती है।

(१) राजनीतिक संघर्ष---सम्पत्ति और सत्ता पर अधिकार बढ़ाने के कारण ही राजनीतिक संघर्षों का जन्म हुआ। इस संघर्ष का विकास सृष्टि विकास के साथ हुआ। समय समय पर देशी विदेशी राजाओं एवं भारत के प्रान्तीय राजाओं के साथ यह संघर्ष होता रहा। मौर्य एवं गुप्त काल के बाद भारतीय जनता का जीवन प्रायः स्थिर हो चुका था। पूरे भारत की आत्मा और संस्कृति एक हो गयी थी। कोई भी राजनीतिक वर्ग सत्ता या शासक ने उसके जीवन में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली थी पर जब से म्लेच्छों के आक्रमण भारत पर होने लगे भारतीय जनता के जीवन पर कठोर आघात हुआ। मुसलमानों के आक्रमण से एक तरफ धर्म पर चोट हुई और दूसरी तरफ आर्थिक व्यवस्था पर। मुहम्मदबिन कासिम के आक्रमण के काल (सन ७१२ ई०) तक भारत में विविध शासकों और विविध राज्यों का निर्माण हो चुका था। ये भारतीय शासक बाहरी आक्रमणों से निर्भय हो चुके थे और अपनी आर्थिक व सैनिक व्यवस्था से संतुष्ट थे जिसके परिणाम स्वरूप विदेशियों को अपनी शक्ति विस्तार का अवसर मिला। ठीक इन्हीं परिस्थिति में जब भारतीय शासक आपसी संघर्षों में व्यस्त थे मुहम्मदबिन कासिम ने भारत पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण से भारत की आर्थिक स्थिति का पता अरब वालों को चल गया और फिर वहाँ के शासक भारत से अधिकाधिक धन लूटने की चेष्टा करने लगे। जिस समय मुहम्मदबिन कासिम ने भारत पर आक्रमण किया उस समय यहाँ पर प्रतिहारों का राज्य था। प्रतिहारों का राज्य बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक चलता रहा। सन् ११९२ ई० में मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को पराजित कर भारत में मुस्लिम राज्य की नींव डाली।[1] उसके प्रमुख सामन्त कुतुबुद्दीन ऐबक ने एक स्वतन्त्र राज्य का निर्माण किया और इसी वंश के प्रसिद्ध शासक बलबन ने (सन् १२४०--१२८० ई०) चालीस वर्ष राज्य कर एक कुशल शासक का परिचय दिया। उसने हिंदुओं के विद्रोह को शान्त कर राज्य को व्यवस्थित रूप दिया। राज्य के आंतरिक विद्रोहों के कारण यह राज्य व्यवस्था अधिक दिन तक न चल सकी। अन्ततः गुलाम वंश का अन्त हो गया।

गुलाम वंश के पतन के बाद शासन सत्ता खिलजियों के हाथ लगी जिसका

१ मध्यदेश ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन--धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १६८

शासनकाल भारत में सन् १२९०–१३२० ई० तक रहा । इस वंश का प्रसिद्ध शासक अलाउद्दीन खिलजी हुआ जिसकी व्यवस्था सैनिक नीति पर आधारित थी ।[1] इसी सैनिक नीति पर उसने दक्षिण के राज्यों पर विजय पायी था और मंगोलों के आक्रमण को भी रोका था । शासन की कठोरता तथा धार्मिक अत्याचार के कारण राज्य के अन्दर हिन्दुओं के विद्रोह हुआ करते थे जिसको उसने कठोरता से दमन किया और विद्रोहियों को कठोर दंड दिया । उसने दोआब के अमीरों से भूमि की उपज का आधा भाग कर के रूप में लिया और जानवरों की चराई पर भी कर लगाया । कोई भी हिन्दू इस कर से मुक्त नहीं था । कर का अधिकाधिक भार हिन्दुओं पर इसलिए रखा गया था जिससे कि वे गरीब बने रहें और विद्रोह की क्षमता न रख सकें ।[2] अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में हिन्दुओं की दशा बहुत दयनीय थी । उन पर इतना प्रशासनिक नियंत्रण था कि वे न घोड़ा रख सकते थे और न कीमती वस्तुओं का उपभोग ही कर सकते थे । हिन्दुओं का शक्ति विस्तार मुसलमान शासकों के लिए असह्य था । राज्य द्वारा अनेक नियंत्रण एवं कर भार से वे दिन दिन गरीब होते गए । गरीबी के कारण हिन्दू स्त्रियों को मुसलमानों के घर मजदूरी करना पड़ती थी ।[3] मुसलमान शासकों द्वारा उनका आर्थिक शोषण हो रहा था जिससे उनकी सामाजिक शक्तियाँ कमजोर होती जा रही थीं । एक तरफ हिन्दू लोग अपनी नियंत्रित सीमा में विवश थे और दूसरी तरफ उससे छुटकारा पाने के लिए अवसर खोज रहे थे । इसी कारण राज्य में लुकछिप कर कभी कभी विद्रोह हुआ करते थे । राज्य के आन्तरिक विद्रोह एवं षड्यंत्रों के परिणामस्वरूप खिलजी वंश का अंत एवं तुगलक वंश का अभ्युदय हुआ ।

तुगलक वंश का शासनकाल सन १३२० ई० से १४१४ ई० तक रहा । इस वंश का प्रथम शासक गयासुद्दीन तुगलक हुआ जिसने अपनी कठोर शासन नीति के बल पर आन्तरिक विद्रोहों का दमन कर राज्य में शांति स्थापित की । उसने प्रजा को खुश करने के लिए कर भार कम किया । उपज का दसवां भाग कृषि उपज कर निर्धारित किया । गयासुद्दीन तुगलक ने सैनिक सुधार एवं सैनिक शक्ति का विस्तार कर राज्य के विभिन्न भागों पर नियंत्रण किया । उसने अमीरों तथा अलाउद्दीन के सम्बन्धियों को अपने पक्ष में मिलाया जिससे कि वे लोग फिर विद्रोह या षड्यंत्र न कर सकें और उसका पद सुरक्षित रहे । यह राजनीतिक संघर्षों का युग था इसलिए राजसत्ता की सुरक्षा के लिए राजनीतिक खेल खेले जा रहे थे । राजा अपनी और

१ द हिस्ट्री आव एरियन रूल इन इंडिया–ई० बी० हेवेल, पृ० २०
२ मध्यकालीन भारत–श्रीनिवासचारी–पृ० ७१
३ एलिएट और डासन–खण्ड ३ पृ० १८४
४ मध्यकालीन भारत–श्रीनिवासचारी–पृ० ८०

अपने अधिकार की सुरक्षा चाहता था । प्रजा की सुरक्षा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था इसलिए प्रजा हितार्थ कार्य करने की राज्य की तरफ से कोई व्यवस्था भी नहीं थी । अभी तक मुसलमानी जनता का आवास इतना अधिक नहीं हो पाया था जितना कि हिन्दू जनता का । मुसलमान वर्ग, जो शासकों के सम्पर्क में होकर आये थे प्रायः धनी थे और अधिकांश जनता हिन्दू थी जो कि विविध संकटों का सामना कर जीवित थी । इसलिए तुगलक शासकों के काल में हिन्दू जनता का जीवन संकट मय था । जनता के प ा में जो कुछ सुधार किया गया था वह केवल राज्य के आंतरिक विग्रहों को दबाने के लिए ।

गयासुद्दीन के लड़के उलूगखाँ (सन् १३२१ ई०) को दक्षिणी सूबा का शासक नियुक्त किया गया । उसके शासन काल में वहाँ की जनता विद्रोह करती रही । इधर (सन् १३२४ ई० में) बंगाल में भी विद्रोह शुरू हुआ और अनेक संघर्षों के बाद उलूग खाँ बंगाल के विद्रोह को शान्त कर सका । कुछ दिन तक वहाँ का सूबेदार नियुक्त रहने के बाद वह दिल्ली लौटा जहाँ उसके द्वारा बनवाए गए स्वागत महल के गिर जाने से गयासुद्दीन की मृत्यु हो गयी । यह उलूग खाँ के षडयन्त्रों का परिणाम बताया जाता है ।[1]

सन् १३२५ ई० उलूग खाँ मुहम्मद तुगलक के नाम से दिल्ली का शासक बना । अपनी प्रगति के लिए उसने चार योजनाएँ बनायीं पर अकुशल एवं स्वार्थी कर्मचारियों के कारण उसकी कोई भी योजना सफल न हो सकी । उसकी चार योजनाओं (१) राजधानी परिवर्तन (२) तांबे के सिक्कों का प्रचलन (३) कृषि व्यवस्था में सुधार (४) विश्व विजय योजना पर काफी धन खर्च हुआ जिससे राजकोष खाली हो गया और काफी धन जन की हानि हुई । उसकी सारी योजनाएँ यद्यपि बुद्धिमत्तापूर्ण थीं पर सफल न होने के कारण मूर्खता की द्योतक बन गईं ।

(१) राजधानी परिवर्तन—मुहम्मद तुगलक ने राजधानी दिल्ली को दौलताबाद लाना चाहा था क्योंकि दिल्ली से पूरे भारत वर्ष की व्यवस्था करना एवं सभी प्रदेशों में शान्ति स्थापित करना कठिन कार्य था । उस जमाने में आज जैसे आवागमन के साधन भी न थे और दिल्ली विदेशी आक्रमण की दृष्टि से सुरक्षित स्थान भी नहीं था । इसलिए मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली की जगह दौलताबाद राजधानी बनाने की सोचा । कठोर दंड की डर से दिल्ली निवासियों को दौलताबाद आना पड़ा और दौलताबाद में पूरी सुविधा न उपलब्ध होने के कारण उन्हें पुनः दिल्ली वापस जाना पड़ा । आने जाने के प्रबन्ध में राजकोष से काफी धन खर्च किया गया । वैसी दिल्ली उजड़ गयी और लोगों की पहले जैसी भावना भी मुहम्मद तुगलक के प्रति न रह गयी ।

---

१ मध्यकालीन भारत—श्रीनिवासचारी पृष्ठ ८०

(२) ताँबे के सिक्कों का प्रचलन—आर्थिक व्यवस्था में सुधार करने के लिए मुहम्मद तुगलक ने सोने चाँदी के सिक्कों की जगह ताँबे के सिक्के चलाने की व्यवस्था की। उसने जिस प्रकार के सिक्कों का निर्माण किया उस पर कोई सरकारी मुहर न थी। परिणाम स्वरूप जनता को नकली सिक्का निर्माण करने (ढालने) का अवसर मिला जिससे ताँबे के सिक्कों की भरमार हो गयी और सोने चाँदी के सिक्के लोगों के घर में ही रह गए। इससे समाज में आर्थिक असमानता और बढ़ गयी और लोगों में नैतिकता का पतन हुआ।

(३) कृषि व्यवस्था में सुधार—मुहम्मद तुगलक ने समझा था कि कृषि आय पर सारी व्यवस्था अवलंबित है। अतः कृषि में सुधार से राज्य की आय अच्छी रहेगी। उसने बड़े पैमाने पर यह कार्य शुरू किया और काफी धन खर्च किया पर यह व्यवस्था कागज तक ही सीमित रही। लोलुप कर्मचारियों के असहयोग से यह योजना भी असफल रही।

(४) विदेश विजय योजना—मुहम्मद तुगलक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था उसने इसी विचार से फारस विजय की योजना बनायी थी। उसकी सेना का उचित प्रबन्ध न होने के कारण उसे पराजित होना पड़ा और उसके हारे हुए सैनिक वापस भाग आए। अन्त में मुहम्मद तुगलक को निराश होना पड़ा। इससे उसकी काफी आर्थिक क्षति हुई।

इन चारों योजनाओं की असफलता पर इतिहासकारों ने उसे बुद्धिमान मूर्ख कहा है। इतिहासकार बरनी तथा इब्नबतूता के अनुसार वह अपने विरोधी गुणों के कारण किसी का प्रिय न हो सका।[१] हिन्दू मुसलमान दोनों वर्ग उससे असंतुष्ट थे क्योंकि वह न तो कभी मुल्ला मौलवियों की बात मानता था और न अमीर हिन्दुओं की ही। इसीलिए उसके प्रायः सभी कर्मचारी उसके विरुद्ध ही रहते थे। यद्यपि वह इस्लाम धर्म का पक्षपाती था और हिन्दू धर्म का विरोधी था फिर भी वह सर्वप्रिय न हो सका। उसके शासनकाल में हिन्दू धर्म को दबाने तथा इस्लाम धर्म को उठाने का प्रयास राज्य की तरफ से किया गया था। जिससे हिन्दू और मुसलमान धर्म का आपसी विरोध दोनों के पारस्परिक संघर्ष का कारण बना हुआ था। हिन्दू जनता राज्य के धार्मिक पक्षपात एवं राज्य की अन्य दुर्व्यवस्थाओं से असंतुष्ट थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुहम्मद तुगलक का शासन व्यवस्था से व्यापक हिन्दू जन समूह तथा अल्प मुसलमान समूह दोनों असंतुष्ट था। इससे संघर्ष की स्थिति दोनों के बीच अपने आप बन गयी था।

---

१ मध्यकालीन भारत—लेखक श्रीनिवासचारी पृष्ठ ८४

२ एलियट और डासन खण्ड ३, पृष्ठ ३८०

एक तरफ आन्तरिक संघर्षों व षडयन्त्रों से मुहम्मद तुगलक का राज्य खतरे मे था दूसरी तरफ निकटवर्ती सूबे उससे लाभ उठाने के लिए तत्पर थे। मालवा, गुजरात तथा जौनपुर आदि सूबे अब स्वतंत्र हो गए थे। ये सूबे अब दूसरे की सत्ता को हड़प कर अपनी शक्ति बढाना चाहते थे। सन १३९४ ई० म जौनपुर का शासक "ख्वाजा जहानने शर्की की उपाधि धारण कर अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। अब जौनपुर भी एक शक्तिशाली राज्य बन चुका था। इसके अन्तगत बिहार एव अवध के सूबे सम्मिलित थे। इस समय जौनपुर विद्या एव संस्कृति का केन्द्र था। शर्की राज्य की शक्ति विस्तार से दिल्ली को खतरा था। ख्वाजा जहान "शर्की' अब मुहमद तुगलक का प्रतिद्वन्द्वी था जो दिल्ली पर अधिकार करने के लिए प्रयत्नशील था। इस प्रकार सभी निकटवर्ती सूबे दिल्ली पर आँख लगाए हुए थे और वे एक दूसरे की शक्ति को दबाकर अपनी शक्ति का विस्तार करना चाहते थे।

भारतीय राजाओं मे इस प्रकार का आपसी संघर्ष देखकर तमूर लंग ने इस अवसर से लाभ उठाना चाहा। उसने सन् १३९८ ई० मे मुलतान पर आक्रमण कर दिया। मुलतान विजय के बाद उसका दूसरा आक्रमण दिल्ली पर हुआ। मुहमद तुगलक पराजित हुआ और उसने भाग कर गुजरात म शरण ली। तमूर के सैनिक लगातार पाँच दिनों तक दिल्ली को लूटते रहे। हजारो व्यक्ति मारे गए। कत्ल करते समय बच्चो तथा स्त्रियो तक पर दया न की गयी। तमूर लंग ने स्वय अपनी आत्मकथा "मलफूजाते तिमूरी' मे लिखा है कि उसने एक लाख हिन्दुओं को कैद कर अपने सैनिको द्वारा कत्ल करवाया था तथा उनकी लाशो को हिंसक पशुओ के खाने के लिए छोड दिया था।[1] इतिहासकार टिटस के अनुसार उसने इस्लाम धर्म प्रचार के लिए काफी हिंसात्मक कार्य किए थे। जबकि कुरान ने लिखा है कि विश्वास लाने के लिए किसी को मजबूर नहीं किया जा सकता।[2] फिर भी मुसलमान शासकों ने इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए तलवार की शक्ति का सहारा लिया।[3] उसके सैनिको ने एक एक दिन म पन्द्रह सौ हिन्दुओं को कत्ल किया था।[4] तमूर इस्लाम धर्म न मानने वालो को काफिर समझता था। उसने काफिरों को दंड देने के लिए तथा मूर्ति पूजा का अन्त करने के लिए भारत पर आक्रमण किया था।[5]

तमूर लंग के इस भयानक आक्रमण ने तत्कालीन जनता को आतंकित कर

---

१ भारत म मुस्लिम शासन का इतिहास — लेखक एस० आर० शर्मा, पृष्ठ १५९
२ उलकुरान (सेल) — डा० बडथ्वाल द्वारा उद्धृत पृष्ठ ५९६
३ संत साहित्य — लेखक-सुदर्शन सिंह मजीठिया पृष्ठ ५१
४ इंडियन इस्लाम टिटस — पृष्ठ ११-१२
५ इलियट एण्ड डासन तीसरी पुस्तक — पृष्ठ ३२४ वाल्यूम ३

तुगल्क वंश के पतन के बाद सयद वंश का राज्य हुआ जो सन् १४१४ ई० से सन १४५१ ई० तक रहा।[1] सयदो के शासनकाल म जन सुरक्षा तथा केन्द्रीय शासन की दृढता की दृष्टि से कोई प्रगति नही हुई। इस वंश का अन्तिम शासक अलाउद्दीन हुआ जिसका शासन काल सन १४४५ ई० से १४५१ ई० तक रहा। इसन अपनी सुरक्षा के लिए बदायूँ राजधानी बनायी पर वहा भी बहलोल लोदी से उसे हारना पडा। परिणामस्वरूप शासन सत्ता से इस वंश को मुक्त होना पडा।

सयद वंश का अन्त होने पर राज्य सत्ता लोदियो के हाथ लगी। बहलोल लोदी इस वंश का प्रथम शासक हुआ जिसका सघष पडोसी राज्यो से सतत चलता रहा। जौनपुर का शासक हुसेनशाह शर्की बहलोल लोदी के राज्य को हडपना चाहता था पर अततागत्वा वह पराजित हुआ और उसका राज्य दिल्ली सल्तनत म मिला लिया गया।

बहलोल लोदी न देश को एक बार सुधारने का प्रयास किया और उसने जनता को यथोचित सुविधाएँ दी परन्तु उसका उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी इतना उदार न हुआ। वह हिन्दू और हिन्दू धम का कट्टर विरोधी था। उसने ब्राह्मणो पर धम कर लगाया था। धम के नाम पर हिन्दुओ को अनेक यातनाएँ भुगतनी पडती थी। इस्लाम धम के प्रचार के लिए उसन एक एक दिन म पन्द्रह सौ हिन्दुओ की हत्या करवाई थी।[2] इस युग मे निर्दयी शासको ने धम के नाम पर मन्दिरो को तोड कर मस्जिदें एव सरायें बनवाई थी। शासको की तरफ से धार्मिक व आर्थिक पक्षपात होता था। धम प्रचार, धन प्राप्ति एव सुन्दरियो की प्राप्ति के लिए इस युग म अनक युद्ध हुए। राजनीतिक सघष के ये ही मल कारण थ। कबीर के काव्य म क्षत्रियो का युद्ध क्षेत्र म घोडे पर तल्वार लेकर लडना पुरजे पुरजे कट जाना फिर भी युद्ध क्षेत्र स न हटना, आदि राजनीतिक सघर्षो की तरफ सकेत मिलता है।[3]

---

१ मध्ययुगीन काव्य साधना-(पष्ठभूमि) पष्ठ ३-४, लेखक डॉ० रामचन्द्र तिवारी

२ इडियन इसलाम, टिटस-पष्ठ ११ १२

३ खत्री कर खत्रिया धरमो ॥ तिनकू होय सवाया करमो ॥
सत्री सो जो कुटुम्ब सो जूझ ॥ पचू मेटि एक कू बूझ ॥ — क० ग्र० पृष्ठ १८२
कबीर मरि मदान में करि इद्रिया सू झूझ ॥ — ,, ,, ५१
सत्री ह्व करि खडग समाल्ू जोग जुगति दोउ साधू ॥ — क० ग्र० पष्ठ १६४
कबीर घोडा प्रेम का चेतन चढि असवार।
ग्यान खडग गाई कालसिरि भली मचाई मार ॥ — क० ग्र० पष्ठ ५५
सूरा तबही परखिय लड धणा के हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्व पडे तऊ न छाड खेत ॥ — क० ग्र० पष्ठ ५४

हिन्दू मुसलमान दो वर्ग ऐसे थे जो धर्म, जाति आदि के नाम पर सर्वथा एक दूसरे से भिन्न थे। इसलिए दोनों वर्गों में संघर्ष होना स्वाभाविक था।

निष्कर्ष

इस प्रकार ११वीं शताब्दी से १९वीं शताब्दी तक का काल राजनीतिक संघर्षों का काल था जिसमें अनेक राजनीतिक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के कारण अनेक छोटे छोटे सूत्रों का निर्माण हुआ और उन सूत्रों का पारस्परिक संघर्ष और बढ़ता ही गया। विविध राजनीतिक उथल पुथल के परिणाम जनता को भोगने पड़े। राज्य विस्तार तथा धन प्राप्ति के लिए सर्वत्र संघर्ष चल रहा था। हिन्दू राजे महाराजे जो देश में छोटे छोटे राज्यों का निर्माण कर लिए थे आपसी फूट के कारण पराजित हुए। प्रायः मुसलमान शासक विजयी रहे। मन्दिरों एवं राजमहलों का संचित धन विदेशी आक्रमणकारियों के हाथ लगा। इस काल में मुसलमान शासकों ने जनता के शोषण से प्राप्त धन को सुन्दर महल बनवाने तथा अन्य शान शौकत के कार्यों पर खर्च किया। यद्यपि पहले अरब आक्रमणकारी भारत का बहुत साधन गजनी ले गए पर बाद के सुलतानों ने भारत में ही सारा धन खर्च किया। इस काल में सैन्य व्यवस्था पर अधिक धन खर्च किया गया जिससे कि शासन सत्ता सुदृढ़ एवं सुरक्षित रहे। मुसलमान शासकों की दृष्टि जितनी अपने राज्य विस्तार तथा धन प्राप्ति पर थी उतनी प्रजा हितार्थ काम करने पर नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि शासक वर्ग धनी होता गया और शासित वर्ग गरीब। पराजय के कारण हिन्दुओं का मनोबल भी हीन हो गया। राजनीतिक संघर्षों ने उनका जीवन संकटपूर्ण बना दिया था जिससे उनके जीवन में निस्सारता की भावना घर करती जा रही थी। वस्तुतः राजनीतिक संघर्षों ने हिन्दुओं को सभी तरह से तोड़ डाला था। अब उनकी केवल प्राचीन गौरव गाथा ही शेष रह गयी थी। अपने देश अपनी जाति एवं अपने धर्म के स्वाभिमान के कारण उन्हें भौतिक जगत की उपलब्धियों से वंचित रह जाना पड़ा। वे पराजित होकर साधारण जनता का सा जीवन व्यतीत करने लगे। भारतीय राजाओं की पराजय के अनेक कारण थे। उनमें सबसे प्रमुख कारण जातीयता का असमान स्तर था। राज्य करने तथा युद्धस्थल में लड़ने का भार केवल थोड़े से राजपूतों पर होने के कारण देश की सुरक्षा के लिए सारी जनता का योगदान न हो सका। अधिकांश हिन्दू जनता देश के राजनीतिक मामलों से उदास थी। देश में फल अनेक संघर्षों के बीच जनता के राष्ट्रीय विचार कुंठित हो गए थे। इस समय किसी भी एक ऐसी सबल शक्ति का उदय न हो सका जो देश के बिखरे सूबों को एक संगठित राज्य का रूप देती। अतः जनजीवन में फैली विभिन्न असमानता का कारण राजनीतिक शोषण एवं संघर्ष था।

में आर्थिक सम्पन्नता होते हुए भी वे निर्धन थे। ऊपर से उन पर अत्याचार हो रहा था। वे शासन के कठोर नियन्त्रण में इस प्रकार बंध गए थे कि उनकी स्वतन्त्रता छीन ली गयी थी। उनका धन एवं अधिकार सुरक्षित नहीं था। अत्याचारी शासकों व अधिकारियों द्वारा उनका धन लूटा जा रहा था। जिससे उनकी शक्ति कमजोर होती जा रही थी।

धार्मिक संघर्ष का अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव

हिन्दू मुस्लिम के धार्मिक संघर्ष से भी आर्थिक वातावरण प्रभावित था। धर्म का सम्बन्ध राजनीति से तो था ही पर अर्थ व्यवस्था से भी जुड़ा हुआ था। मध्यकालीन सारे कर्मकाण्डों के पीछे मौलवी मुल्ला और पंडे का व्यवसाय था। हिन्दुओं के सभी कार्य प्रायः धर्म से शुरू होते हैं। यह परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। मध्यकाल में यह परम्परा बहुजन मान्य थी। इसीलिए पाखंडियों एवं कर्मकाण्डियों का धंधा जोर में था। कृषि व्यवसाय तथा जीवन के अन्य व्यावहारिक कार्यों में धर्म और अर्थ कहीं न कहीं जुड़ा हुआ था। शुभ मुहूर्त में किसी कार्य का प्रारम्भ[1], जीवन में सुख प्राप्ति के लिए देवी देवताओं का पूजन तथा मन्त्र-तन्त्र टोटका आदि द्वारा कष्टों का निवारण इत्यादि कर्मकाण्डों के चक्कर में पड़कर जन जीवन दुर्गति में पड़ा हुआ था। इस धर्म की आड़ में धर्म के ठेकेदार लोग अपनी खास आय बनाए हुए थे। जिससे सामान्य जनता का शोषण हो रहा था। दूसरी तरफ मुसलमान धर्म राज धर्म था उसके प्रचार के लिए राज्य से आर्थिक सहायता मिलती थी और इस धर्म के अनुयायियों को अधिकाधिक सुविधा दी जाती थी। इस प्रकार धर्म के नाम पर जनता को अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था।

मध्यकालीन आर्थिक ढाँचा इस प्रकार शोषण के तन्तुओं से बना था कि प्रजा उसमें जकड़ कर बंध गयी थी। राजा निरंकुश होता था। वह प्रजा के धन का किसी भी तरह से उपयोग कर सकता था। कृषक कलाकार तथा अन्य लोगों की सेवायें राजा के लिए होती थीं। सैनिक व्यवस्था एवं कला पर अधिक खर्च किया जाता था। उस समय राजा की आय प्रायः भूमिकर से अधिक होती थी। इसलिए कृषकों पर कर अधिक लगाया जाता था। इस काल में कृषक सदैव शोषण के शिकार रहे।[2] फिरोज तुगलक ने ब्राह्मणों पर जजिया कर लगाया

---

१ नव ग्रिह ब्राह्मन भखना रासी।
निरखे न काटा जम की पासी ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ १०१ पद १८२

२ तुलना आधुनिक वातावरण से रमाकुमार मध्य-पृष्ठ १

था।[1] जिससे हिंदुओं की दशा और भी अच्छी न रह सकी ।

देश में धन विभाजन इस प्रकार असमान हो गया था कि एक तरफ लोग खाने का प्रबन्ध करने में असमर्थ थे। और दूसरी तरफ राज्य भवन में शासक वर्ग का विलासी जीवन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था।[2] राजा और जमींदारों की आय के अनेक साधन थे पर साधारण जनता की आय सीमित थी। साधारण लोग बड़ी कठिनाई से जीवन यापन कर रहे थे। प्रायः साधारण वर्ग आर्थिक अभावों से अधिकाधिक पीड़ित था। यद्यपि इतिहासकार बर्नी के वर्णनानुसार देश की आर्थिक स्थिति अच्छी थी तथा तत्कालीन प्रजा धन सम्पन्न एवं सुखी थी।[3] पर यह धन सम्पन्नता केवल मुसलमान घरों तथा कुछ जमींदारों तक ही सीमित थी। अधिकांश इतिहासकारों ने तत्कालीन प्रजा की दशा को दयनीय ही बताया है। यह बात पूर्णतया सत्य है कि मध्यकालीन जनता मुसलमानी अत्याचारों तथा राजनैतिक उथलपुथल के बीच सुखी एवं सुरक्षित न थी।[4] वास्तव में इस काल में शासन की तरफ से प्रजा के हित के लिए कोई अर्थव्यवस्था हुई ही न थी परिणाम स्वरूप साधारण लोग गरीब हो गए थे और शासक या सामंत वर्ग धनी। जिसके कारण राज्यवर्ग में विलासिता एवं फिजूल खर्च अधिक बढ़ गया था। राज परिवार में कीमती वस्तुओं का उपयोग होता था। हीरा जवाहरात का संग्रह राज्य की तरफ से किया जाता था। सामंतीय वातावरण इतना विलासी था कि साधारण काम के लिए भी आवश्यकता से अधिक नौकर रखे जाते थे। सुल्तान बल्बन की

---

१ मिडिवल इंडिया–ईश्वरी प्रसाद–पृष्ठ २९०–२९२

२ 'धन का विभाजन इस समय बहुत असमान था जागीरदार और अमीरों के पास सोना चाँदी एकत्रित हो गया था और साधारण जनता के पास बहुत कम धन रह गया था।

मध्यकालीन भारत—लेखक पी० डी० गुप्ता, पृष्ठ १४०

३ जरीदार तथा रेशमी वस्त्र और अन्य सामान जिसकी शाही परिवार को आवश्यकता पड़ती था बाजार भाव पर खरीदा जाता और उसका पूरा मूल्य चुकाया जाता था। प्रजा के घर अन्न सम्पत्ति घोड़े तथा फर्नीचर से भरे थे, प्रत्येक के पास खब सोना तथा चाँदी थे। ऐसी कोई स्त्री न थी जिसके पास कोई आभूषण न हो और न कोई ऐसा घर था जिसमें उत्तम पलंग तथा बिस्तर न हो। धन का भरमार थी और सभी सुख सुविधाएँ प्राप्त थीं।"
—भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, एस० आर० शर्मा

४ "मध्यकालीन भारत", पी० डी० गुप्ता, पृष्ठ ५१

पान की व्यवस्था के लिए पचास साठ नौकर रखे गये थे ।[1] इस युग में प्रसिद्ध गायक एवं कवि राजदरबार में आदर पाते थे और उन्हें अधिकाधिक धन पुरस्कृत किया जाता था। मुसलमान शासकों ने जनता से प्राप्त धन का उपयोग प्राय भवन निर्माण सड़क निर्माण आदि पर किया। यद्यपि मुहम्मद तुगलक ने अपनी योजनाओं पर काफी धन खर्च किया था और उससे काफी धन जन की हानि हुई थी फिर भी उसके दरबार में ४, ००० स्वर्णकार आभूषण बनाने के लिए रखे गए थे।[1] इन कर्मचारियों का खर्चा प्रजा से वसूल किया जाता था। प्रजा पर लगाए गए कर से ही राज्य की अधिक आय होती थी। अधिक मूल्यवान वस्तुओं का उपयोग प्राय राजघराने की स्त्रियाँ करती थी। कीमती वस्तुओं से बने आभूषण अमीर स्त्रियों को भेंट किये जाते थे। फिरोज तुगलक की विलासिता कुछ कम नहीं थी। उसका एक जोड़ी जूता ७०, ००० टके में खरीदा गया था।[2] इस प्रकार के अनेक खर्च राजघराने में हुआ करते थे। साधारण खुशियों के अवसर पर दिल खोल कर खर्च किया जाता था। सारा राजसी ठाटबाट विलासितापूर्ण होता था। जिसके परिणाम स्वरूप साधारण जनता एवं सामन्त वर्ग में काफी असमानता हो गयी थी।

जहाँ एक तरफ विलासिता पर इतना खर्चा हो रहा था वहीं साधारण जनता भूखों मर रही थी। समाज का अधिकांश भाग श्रमजीवी था। जुलाहे कपड़ा बुन कर अपनी जीविका चला रहे थे। धोबी लुहार सुनार, चमार कुम्हार तथा तेली आदि जातियों के व्यवसाय परम्परागत थे।[4] इस प्रकार गरीब लोग कोई न कोई व्यवसाय

---

१ लाइफ एण्ड कण्डीशन आफ द पीपुल आफ हिन्दुस्तान
 —लेखक कुंवर मुहम्मदअशरफ पृष्ठ २०६

२ कबीर और कबीरपंथ—लेखक डा० केशरनाथ द्विवेदी पृष्ठ १४८-४९

३ वही वही

४ आवधराम सब करम करिहूं ॥
सहज समाधि न जन यें डारिहूँ ॥
कुंभरा ह्वै करि बासन घरिहू धोबी ह्वै मल धोऊँ ॥
चमरा ह्वै करि रंगों अघौरी जाति पाँतिकुल खोऊँ ॥
तेली ह्वै तन कोल्हू करिहौं पाप पुनि दोउ पीरों ॥
पंच बल जब सूध चलाऊं राम जेवरिया जोरन ।
क्षत्री ह्वै करि खड़ग समालूं जोग जुगति दोउ साधू ॥
नउवा होइ करि मन कूं मूंडू बाढ़ी ह्वै कम बाटू ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १६४, पद ३८९

करके अपनी जीविका चलाते थे। बडी जाति के लोग गरीबो को ठगने म कुशल हस्त थ। कोई ब्याज पर पैसा देकर गरीबो का शोषण कर रहा था तो कोई ब्यात उट् लूट घसोट कर। एक तरफ लोभी ब्राह्मण समाज मे कर्मकाण्डो का जाल फला कर लोगो का धन लूट रह थ तो दूसरी तरफ ठाकुर लोग जबरदस्ती किसानों का खेत जोत लेने थे। पटवारी किसानों मे कलह पैदा कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रह थे। उनका हिसाब किताब कभी किसानों स साफ ही नहीं होता था।[1] कुछ बोलने पर वे लोग गरीबो को मारते भी थ।[2] उनसे बेगारि ली जाती थी।[3] निधनों का समाज म कोई आदर नहीं था। धनी लोग निधनों का अनादर करते थे।[4] व गरीबों का सदव नीचा दिखाने की सोचते थ। गरीबों को रोजी रोटी के लिए दर-दर भटकना पडता था।[5] मुसल्मानों की शासन व्यवस्था पक्षपातपूर्ण होने के कारण हिन्दुओ का आर्थिक स्तर गिरा हुआ था। साधारण कर्मचारियो की जगह हिन्दू नियुक्त किए जाते थ और उच्च पदो पर मुसलमानों की नियुक्ति होती थी। भार तीय व्यवसाय जो जातिगत बन गए थ उसे भी मुसल्मानों न अपना लिया था। जिसके कारण हिन्दुओ की स्थिति और भी खराब हो गयी थी। उच्च स्तर के व्यापारी वग हर चीज पर अधिक लाभ लेते थे। जिसस मँहगाइ आ गयी थी।[6]

---

१ अब न बसू इहि गाइ गुसाइ।
तेरे नेवगी खरे सयाने हो राम ॥
नगर एक तहाँ जीव धरम हुता बस जु पच किसाना ॥
ननू निकट श्रवनू रसनू इद्री कह्या न मानै हो राम ॥
गाइ कु ठाकुर खेत कु नप काइथ खरच न पार ॥
जोरि जवरी खेत पसार सब मिलि मोको मारै हो राम ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १२१, पद २२२

२ जोरि जवरी खति पसारे सब मिलि माको मारे हो राम ॥

३ जनम अनेक गया अरु आया। की बगारि न भाडा पाया ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ९४

४ निरधन आदर कोई न देई। लाख जतन करै ओहु चित न धरई।
जो निधन सरधन के जाई। दाया आदर लिया बुलाई ॥
क० ग्र०, पृष्ठ २३० (परिशिष्ट)

५ इही उदर के कारणै जग जाच्या निसि जाम ॥
क० ग्र०, पष्ठ २७। २

६ बहुत मोलि मँहगा गुड पावा। लै कसाव रस राम चुआवा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ८३, पद ७३

छल कपट से लोग धन संग्रह कर जमीन में गाड़ते थे।[1] कोई भी व्यक्ति सामाजिक कल्याण पर धन नहीं खर्च करता था जिसके कारण समाज में आर्थिक असमानता थी। इस पर विचार करते हुए कबीर ने कहा था कि यह समाज की कैसी दुर्व्यवस्था है? एक गरीब होता है और दूसरा उसे दान देता है एक भूखों मरता है दूसरा सुरापान करता है। एक हीरा मोती तथा अन्य खजानों से सम्पन्न है।[2] लोग दो दो दीपक घर में जलाते हैं पर मंदिर में सदा अँधेरा रहता।[3] कबीर की उलटवासियाँ कुछ इन्हीं अर्थों को लेकर अभिव्यक्ति हुई है। बैल का बियाना, गाय का बाँझ हो जाना बछड़े से तीनों वक्त दूध दुहना सियार का सिंह से जूझना आदि उलटवासियाँ सामाजिक संकटों एवं समस्याओं की तरफ संकेत करती हैं। छोटे बड़े वर्गों में सदा संघर्ष था। जो नहीं होना चाहिये था वही हो रहा था। धन संग्रह के लिए सर्वत्र कलह संघर्ष था। प्रजा से लेकर राजा तक धन संग्रह किया करते थे। एक संग्रह करता था दूसरा उसका अपहरण।[5] इस तरह समाज की आर्थिक स्थिति अव्यवस्थित थी।

निष्कर्ष

१ मुसलमानों के आक्रमण एवं राजनीतिक परिवर्तनों के कारण जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी न रह सकी।

२ धार्मिक अंधविश्वासों एवं पाखण्डों के कारण साधारण जनता ठगी गई और उसे आर्थिक क्षति उठानी पड़ी।

३ राज्य की तरफ से सामाजिक विकास के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। जो व्यवस्था थी भी वह राजा की आय के लिए थी।

४ मध्यकालीन शासकों में कनक, कामिनी की अधिक चाह थी। जिसके

---

१ खोट कपट कर यहु धन जोरयो लै धरती में गाड्यो।
क० ग्रं०, पृ० ९०, पद ९२

२ एकनि मै मुक्ताहल मानी एकनि व्याधि लगाई॥
एकनि दीनी गरं गूदरी एकनि सेज पसारा॥ क० ग्रं०, पृ० ९३, पद १०५

३ द्वै द्वै दीपक घरि घरि जोया, मंदिर सदा अंधारा॥
घर घेहर सब आप सवारथ बाहरि किया पसारा॥ क० ग्रं० पृ० ८८, पद ८१

४ बैल वियाइ गाइ भई बाँझ बछरा दूहै तीयूं साँझ॥ क० ग्रं०, पृ० ८८
नित उठि स्याल स्यंघ सूं झूझै, कहै कबीर कोई विरला बूझ॥
क० ग्रं० पृ० ८८, पद ८०

५ मधुमाषी धन संग्रहै मधुवा मधु लै जाइ रे॥
गयो गयो धन मूढ़ जना, फिरि पीछे पछिताई रे॥ क० ग्रं०, पृ० ९८, पद १२७

कारण अनेक राजनीतिक परिवर्तन हुये और समाज को उसका परिणाम भोगना पड़ा।

५ राज परिवार में फिजूल खर्च व विलासिता अधिक थी परिणामस्वरूप नैतिकता का पतन हुआ।

६ विविध संघर्षों के कारण धनी एवं गरीब वर्ग का अंतर और बढ़ गया था।

७ धन संग्रह की भावना राजा, प्रजा सब मे उग्र थी। इसी कारण तत्कालीन समाज मे नैतिकता का पतन एवं अत्याचारों का आधिक्य दिखायी देता है।

३ सामाजिक संघर्ष

प्राचीन वर्ण व्यवस्था

समाज शब्द का अर्थ किसी प्रदेश या भूखण्ड मे रहने वाले उस जन समूह से है जिसमे सांस्कृतिक एकता होती है।[1] पर मध्यकालीन समाज विभिन्न धर्म, विभिन्न जातियों, विभिन्न सम्प्रदायों और विभिन्न राज्यों के रूप में इस प्रकार बिखर गया था कि तत्कालीन संस्कृति के अनेक रूप बन गए थे। इस विभिन्नता का आंशिक रूप वैदिक काल से ही देखने को मिलता है। कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात वैदिक काल से ही आरम्भ हो गया था।[2] पर उस समय वर्ण का चुनाव ऐच्छिक था।[3] कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से किसी वर्ण या जाति का बन सकता था। आगे चलकर जाति एवं धर्म का सम्बन्ध इतना दृढ़ होता गया कि एक वर्ण से दूसरे वर्णों मे जाना बिल्कुल असम्भव हो गया। उस समय वर्ण व्यवस्था का अलगाव श्रम विभाजन के रूप में किया गया था जो सामाजिक प्रगति में सहायक था। पर मध्यकाल तक आते आते वही वर्ण व्यवस्था समाज के लिये घातक एवं भारतीय जनता की दुर्गति का कारण बन गया।

विभिन्न जातीय संघर्ष

वैदिककाल मे ब्राह्मण विद्या का, क्षत्रिय लड़ने का, वैश्य कृषि तथा व्यवसाय का, और शूद्र सबकी सेवा करने का अधिकारी माना गया था उसका आंशिक रूप मध्यकालीन भारत में भी जाति के रूप में विद्यमान था। इन जातियों मे और विभिन्न

---

१ समाज—बहुत से लोगों का गिरोह या गुट—समूह। जैसे सनसंग समाज एक जगह रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का काम करने वाले लोगों का वर्ग दल या समूह, समुदाय आदि— मानक हिन्दी कोश, पृ० २८४

२ प्राचीन भारत—लेखक डा० राधाकमल मुकर्जी, पृ० २६

३ मनु की समाज की व्यवस्था—वर्ण तथा जाति—लेखक सत्यमित्र, दुबे, पृ०

जातिया बन गयी थी जिनम छून अछूत तथा ऊँच नीच का भाव और भी बढ गया था। इसी कारण एक वण का दूसरे वण से ईर्ष्या और सघष चल रहा था। विभिन्न जातियो के सीमित कम और सीमित अधिकार होने के कारण उनका जीवन एकागी हो गया था। सभा लोग अपनी अपनी जाति मे थोथापन एव असतोष का अनुभव कर रहे थे। ब्राह्मण केवल पठन पाठन के अधिकारी होने के कारण धन हीन थ। क्षत्रिय अपने राज्य की रक्षा क लिये युद्ध क्षत्र मे कटत मरते थ पर य लोग सुरक्षित थे वैश्य लोग परिश्रम से खेती म काम करत थे औरउनकी आय का अधिकाश भाग राजस्व म चला जाता था। शूद्र सबकी सेवा करने पर भी भूख और वस्त्रहीन थ। चारो इन प्रमुख जातियो के कम एव अधिकार एक दूसरे से भिन्न होने के कारण पारस्परिक क्षोभ था। कोई उच्च वग का होने के लिय तरस रहा था तो कोई राज्य पाने क लिये। कोई पण्डित बनना चाहता था तो कोई पूजीपति या व्यवसायी बनना चाहता था। निचले स्तर म रहने के लिये तयार कोई नही था। यह जाति व्यवस्था एव सामाजिक मा यता सबक लिय कठोर बधन थी। य सामाजिक मा यताय सबके लिय गल की फासी बनी हुयी थी।[1] यह जाति व्यवस्था उन लोगा क लिये अधिक दुखदायी एव घातक थी जो बचारे निचले स्तर के थे। इसालये जाति व्यवस्था का सबल विरोध निचली जाति के साधु-सतो द्वारा अधिक हुआ। इन सारे विरोधो का मूल कारण उनक स्वाथ का आपस मे टकराना था। शूद्र लोग सबके परम्परागत सेवक थ। अतएव यह जाति व्यवस्था शूद्रो के लिए सामाजिक गुलामी थी। बडे वग क लाग स्वाथ सिद्धि के लिय इसे बनाये रखना चाहत थ। पण्डित गुणी, सूर तथा दान दने वाल पूँजीपति अपने को सबसे बडा कहत थ।[2] बडा जातियाँ छोटी जातियो का शोषण कर रही थी और वे निम्न वग के लोग समाज म अपमान की दष्टि स दख जाते थ। समाज म ब्राह्मण शूद्र का भेद बहुत था। कबीर को भी ऐसे कई अवसरों पर लागो से जूझना पडा था।[3] ब्राह्मण लोग शूद्रो की छाया से भी बचते थे कि कही छाया स्पश स व अपवित्र न हो जायँ। यह एक ऐसा वग था जिसे हरक जाति से तिरस्कार मिलता जिसके कारण

१ लोक वेद कुल की मयादा इहै गले म फांसी ॥ क० ग्र० प० १८९ पद १२९
२ पडित गुनी सूर कवि दाता ये जु कहै बढ हमही ॥ क० ग्र० पृ० ९९ पद १३३
३ एक जोति थें सब उतपना को बाम्हन कौन सूदा ॥
क० ग्र० प० ८२ पद ५७

जो तूं बामन बमनी जाया । आन बाट ह्वै काहे न आया ।
जो तू तुरक तुरकनी जाया तौ भीतर खतना क्यूं न कराया ॥
क० ग्र० पृ० ७६, पद ४१

पीया दूध रुध्र है आया । मुई गाइ तब दोष लगाया ॥
ल रुकरौनी बठे सगा । य देखौ पाडे क रगा ॥ पृ० १८६, रमणी

शूद्रो का क्षोभ और असतोष और बढता गया । अब वे अनेक प्रकार की दुर्व्यवस्थाओ एव लोगो के दुर्व्यवहारो से मुक्त होने के लिय प्रयत्नशील थे । इनके ऊपर दुहरी गुलामी थी । एक तो ये पहले से ही इन (हिन्दू) उच्च जातियो के गुलाम थे और बाद मे उन्हे मुसलमानो का भी गुलाम बनना पडा ।

हिन्दुओ का पराधीन होना

अपनी कमजोरियो के कारण हिन्दू शासक पराजित हुये और उन्हे पराधीन होना पडा । इस पराधीनता म प्रजा को भी अनेक कष्ट झेलने पडे । हिन्दू जनता के रीति रिवाज पर काफी ठेस पहुँची । अब तक जो राजकीय सुविधायें उन्हें हिन्दू शासको क काल मे प्राप्त थी व सुविधायें मुसलमानी शासन से न प्राप्त न हो सकी । इस प्रकार वे अपने अधिकारों म भी सीमित हो गये थ । जिससे उन्हें अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा । देश म अधिक संख्या हिन्दुओ की थी । पर वे अब आपसी फूट के कारण कमजोर हो चुके थ जिसके कारण उन्हें पराजित होना पडा । पराजित जन समूह परतन्त्र था जो कि अपनी परतन्त्र सत्ता प्राप्त करने के लिये अवसर खोज रहा था । अतएव पराधीनता म मुक्ति पाने के लिए हिन्दुओ के क्रान्तिकारी विवशता म दब हुय थ । उस समय प्रादेशिक राज्यो म जो छिट-पुट विद्रोह हुआ करते थे वे हिन्दुओ के क्रान्तिकारी विचार थे जो कि मुसलमानी शासन व्यवस्था के विरोध म उमड जाया करते थे ।

हिन्दू मुसलमान का जातिगत संघर्ष

जैसा कि हम देखते हैं कि कबीर कालीन समाज म हिन्दू मुसलमान का जातिगत भेद भाव बहुत था । हिन्दू मुसलमान क दो अलग अलग समाज थे और दोनों की अलग अलग व्यवस्थायें थी । दोनो वर्गों के दो धार्मिक संस्कार थ । दोनो अपने-अपने धर्मों म चिपके हुए थे । हिन्दू समाज अपनी परम्परागत मान्यताओ म बह रहा था और मुसलमान समाज भी लकीर का फकीर बना हुआ था । कोई वर्ग सही रास्ते पर नहा था ।[1] सब पथभ्रष्ट थे । मुसलमानी शासन मे जातिगत पक्षपात भी होना था । मुसलमान धर्म को प्रचार एव प्रसार के लिए राजकीय सुविधायें प्राप्त थी । अच्छे पदो पर मुसलमानो की नियुक्ति होती थी और साधारण पदो पर हिन्दुओं की ।[2] इन्ही कारणो से हिन्दू निर्धन होत गय और मुसलमान धनी । इसी लिय हिन्दू मुसलमान दोनो वर्गों म काफी असमानता हो गई और इस असमानता के कारण दोनो मे संघर्ष के भाव और बढते गये ।

---

१ बाबा पेड छाडि सब डाली लाग । क० ग्र० प० ११६, पद १९७

२ रामानन्द सम्प्रदाय—लेखक बदरीनारायण श्रीवास्तव, पृ० २९

हिन्दू-मुसलमान का धर्मगत संघर्ष

कबीर कालीन समाज में धर्म की समस्या जीवन की मूल समस्या थी। दोनों वर्गों को एक धर्म से जोड़ना बड़ी कठिन बात थी। इस दिशा में मध्यकालीन संतों के प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। इसका मुख्य कारण यह था कि मुसलमान हिन्दुओं के विरोधी बनकर भारत आये थे और दोनों धर्म की मान्यताएँ दो भौगोलिक परिस्थितियों में बनी थीं। इसलिए दोनों के रीति रिवाज खान पान सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न थे। दोनों अपनी अपनी धार्मिक मान्यताओं को सहज रूप से अपनाये हुए थे। इसलिए दोनों वर्ग धर्मच्युत होना पसंद नहीं करते थे। अपने धर्म और जाति की रक्षा के लिए वे कुछ भी बलिदान कर सकते थे। दोनों का अपने अपने धर्म से मोह था और साथ ही दोनों का एक दूसरे के धर्म से बहुत बड़ा विरोध भी था। उस समय धर्म के नाम पर तरह-तरह के अत्याचार हो रहे थे। धर्म के नाम पर कहीं किसी को जलाया जा रहा था तो कहीं कर भार से उन्हें पीड़ित किया जा रहा था। इन विविध अत्याचारों के कारण दोनों वर्गों में संघर्ष होना स्वाभाविक था।

सामाजिक दुर्बलतायें

मध्यकालीन भारतीय समाज का सारा वातावरण दुर्गुणों से दूषित था। बड़े वर्ग से लेकर छोटे वर्ग तक नैतिकता का पतन हो गया था। इन दुर्बलताओं की भूमिका पहले से ही बन चुकी थी। उचित राजनीतिक व्यवस्था न होने के कारण लोगों का आर्थिक स्तर बहुत असमान हो चुका था। इसलिए एक दूसरे को धोखा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे। समाज में चोर, ठग और लुटेरे भी थे जो दूसरों की कमाई पर जीवित थे। तत्कालीन समाज के काजी, मुल्ला व पांडे भी समाज के ठग ही थे जो लोगों को भ्रम में डाल कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे।

जहाँ एक तरफ मनुष्य एक दूसरे के शोषण का शिकार बना हुआ था वहीं दूसरी तरफ वह माया के मधुर आकर्षण का भी शिकार बना हुआ था। कनक कामिनी पूरे समाज को पग पग पर उलझाये हुये थी। यद्यपि यह भक्ति का युग था पर उसमें इतने शृंगारिक भाव आ गये थे कि समाज में विलासी वातावरण पैदा हो गया था। मुसलमानों की देखा देखी हिन्दू समाज का भी वातावरण विलासी हो गया था। सुन्दरियों का बलात अपहरण तथा राज दरबार में बहुनारी संग्रह विलासिता के प्रतीक थे। फिरोज तुगलक के मंत्री खानेजहाँ ने अपने अन्तःपुर में (२०००) दो हजार से अधिक स्त्रियाँ रखी थीं।[१] राजमहल में इस तरह के विलासितापूर्ण कृत्य हो रहे थे। साधारण जनजीवन भी अंशतः इस प्रकार के वातावरण से प्रभावित था। काम वासना में अनुरक्त होकर समाज के नर नारी नारकीय जीवन

---

१ कबीर की विचारधारा—लेखक गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ७३।

भाग रहे थे ।[1] एक विवाह की जगह बहु विवाह होने लगा था । इसके लिए न कोई नियम था और न कोई सामाजिक बन्धन । इसीलिये इस काल में रूपवती स्त्रियों का बलात अपहरण होता था ।[2] तथा उन्ही के लिये युद्ध भी लड़ा जाता था । स्त्रियों का समाज में रूपगत महत्त्व अधिक था । इसीलिए वे केवल सुख भोग की ही वस्तु बन गयी थी और उनका स्थान समाज में प्रतिष्ठापूर्ण नही था । मुसलमानो के अत्याचार एवं उनके सामाजिक रीति रिवाजो के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दू समाज मे परदा प्रथा का प्रचलन हुआ ।[3] इस काल में परदा प्रथा तथा सती प्रथा का प्रचलन था ।[4] पुरुषो की भांति स्त्रियों को स्वतन्त्रता नही थी । वे पराश्रित थी । इसलिये उनका मानसिक विकास अवरुद्ध था । कबीर ने रूपवती स्त्रियों को तत्कालीन समाज के पतन का कारण माना है ।[5] वास्तव में तत्कालीन समाज में प्रचलित विलासिता ही सामूहिक प्रगति मे बाधक थी ।

कबीर कालीन समाज में वेश्यागमन तथा मद्यपान का भी प्रचलन था । चोरी बेईमानी, घूसखोरी आदि कुकृत्यो से समाज में भ्रष्टाचार फैल रहा था[6] लालची, लोभी मसखरा का समाज मे आदर होता था ।[7] और सज्जन लोग निरादर

---

१ नरनारी सब नरक है जब लग देह सकाम ॥
कहै कबीर ते राम के जे सुमिरै निहकाम ॥ पृष्ठ ३१/७

२ भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास—लेखक ए० आर० शर्मा

३ मध्यकालीन भारत—लेखक श्रीनिवासचारी तथा रामस्वामी आयंगर, पृष्ठ १५७

४ रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव
—लेखक डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव पृष्ठ ३०

५ रज को बीरज की कली तापर राजा रूप ।
राम नाम बिन बूडि हैं कनक कामिनी कूप ॥ पृष्ठ २६/१६
माया की झल जग जला कनक कामिनी लागि ॥ पृ० २७

६ गनिका के घरि बेटा जाया पिता नाव किस कहिये ॥ पद १६८, पृ० ११६
परनारी राता फिरै चोरी बिढ़ता खाहि ॥
दिवस चारि सरसा रहै अंति समूला जाहि ॥ पृ० ३०
पापी पूजा बसि करि भखै मांस मद दोइ ।
तिनकी दया मुकुति नही कोटि नरक फल होइ ॥

७ कबीर कलि खोटी भई मुनियर मिलै न कोइ ।
लालच लोभी मसखरा तिनकूं आदर होइ ॥ क० ग्र०, पृ० २८

पाते थे । मूर्खों का बहुसंख्यक वर्ग था मतिहीन लोगो की कमी समाज मे नही थी ।[1] जागरूक व्यक्ति समाज मे विरले ही थे । इस प्रकार वचारिक दृष्टि स समाज मे ज्ञानी एव अज्ञानी दो वग थे । ज्ञानियो के भी प्राय दो वग थे । एक वे थे जो शास्त्रीय एव परम्परावादी विचारधारा मे जीवित थे दूसरे वे थे जो भौतिक वाद या प्रत्यक्ष जावन को ही सब कुछ मानते थे । परम्परा के प्रवाह मे जीवित रहने वाले पण्डित मुल्ला एव पाड थ और प्रत्यक्ष जीवन को अत्यधिक महत्त्व देने वाले तत्कालीन सत थ । इस प्रकार के लोग हिन्दू मुसल्मान दोनो वर्गों मे थ । प्राचीन वेदात मे विश्वास करन वाल परम्परावादी थे और नये वेदात मे आस्था रखने वाल जीवन दशन को ही सब कुछ मानते थे । इस प्रकार वचारिक विभि न्नता के फलस्वरूप समाज मे दो गस वग बन गए थ जो एक दूसरे से हट कर अलग समाज की स्थापना किय थे । फलस्वरूप मतभद के कारण दोनो म सघष था ।

कबीर कालीन समाज म थोथे अभिमान की भावना लोगो म बडी उग्र दिखायी देती है । पण्डित योगी, स यासी, तपस्वी सभी अपने अपन क्षत्र मे माते हुए थे ।[2] कोई किसी का सहयागी नही था । सब अपनी-अपनी विचारधारा मे जीवित थ । साधारण जन जीवन लोकानुयायी था । बहुजन लोग एक दूसरे की देखादखी क्र्म करने वाल थे । जिन बाता का उन्ह ज्ञान नही था वहां व शून्य थ ।[3] इस प्रकार साधारण जन जीवन विविध मतो स प्रभावित होकर वण व्यव स्था की सीमाओ म बध कर लोक धम का निर्वाह कर रहा था । तत्कालीन लोक धम अधानुकरण था । जा कि लोगो का सही माग से विचलित किये हुए था । इन्ही अविवकी लोगो से साधारण जनता का समाज बना था । जिसम हिन्दू मुसल्मान सभी थे । इनम जाति धम तथा आर्थिक असमानता के कारण वचारिक विषमता थी जो कही न कही एक दूसरे स टूटे हुए थ । राजनीतिक अत्याचारा

१ कबीर यहि ससार म धाय मानिष मति हीन ।
राम नाम जाने नही आय टापा दीन ॥ क० ग्र० पृष्ठ १८

२ पडित मात पढि पुरान जागी मात धरि धियान ॥
स यासी मात अहमव तपा जु मात तप क भेव ॥ पद ३८१

३ दसा दसी पाखड जाइ अमरधा छूटि ॥ पृष्ठ ३७
बिरला कोइ ठाहर सतगुर सामी मूठि ॥ पृष्ठ ३७

४ जाका गुर भी अधला चला खरा निरध ॥
अधा अधा ठलिया दूयू कूप पडत ॥ क० ग्र० पृष्ठ २

तथा धार्मिक संघर्षों से समाज की नींव हिल गई थी जिससे लोगों में राष्ट्रीय एकता के भाव समाप्त हो गये थे ।

संतो का क्रान्तिकारी वर्ग

साधारण जनता का सा सादगी से जीवन व्यतीत करने वाला संतों का एक ऐसा क्रांतिकारी वर्ग था जिसने सभी अत्याचारों एवं दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में अपना सिर ऊँचा किया । इन सन्तों में अधिकतर निम्न जाति के लोग थे जो समाज और राज्य की तरफ से तिरस्कृत थे ।[1] फलस्वरूप समाज द्वारा अपमानित जातियों का एक अलग वर्ग बना जो संत समाज के नाम से जाना गया । संत समाज ने कभी जाति, धर्म अथवा सम्प्रदाय को विशेष महत्त्व नहीं दिया क्योंकि मानव जीवन का उद्देश्य जाति धर्म अथवा सम्प्रदाय का निर्माण करना नहीं है बल्कि इन सीमाओं की स्थापना से मानव का रूप विकृत होता है । मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध क्षीण होता है । अतएव इन संतों ने सभी संकुचित सीमाओं को नकार कर मानव के मूल रूप को स्वीकार किया । इन संतों ने सारे मनुष्यों को एक जाति का माना और मानव धर्म को एक मूल धर्म के रूप में स्वीकार किया ।[2] इन संतों ने सत्य को व्यावहारिक जीवन में उतारा । इनका गुरु (सतगुरु) सत्य था । इनका ईश्वर सत्पुरुष सत्य था । संक्षेप में सत्य इनके जीवन का सार था । इसीलिए तत्कालीन जनता ने संतों के इस अनुभूत सत्य को स्वीकार किया और आज भी लोग स्वीकार कर रहे हैं ।

संतों की आवाज तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक दुर्व्यवस्था के विरोध में मुखरित हुई थी क्योंकि तत्कालीन सारी व्यवस्थायें सत्य या न्याय रहित थीं ।[3] यह संतों का असंतोष था या उनके माध्यम से की जाने वाली सबल क्रान्ति थी जो कि उन्हें विविध सामाजिक अभावों के रूप में अनुभूत हो रहा था । इस प्रकार तत्कालीन संतों द्वारा की गई क्रान्ति भी सामाजिक संघर्ष की एक सबल कड़ी था ।

---

१ मध्यकालीन धर्म साधना—लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ २१६

२ सो हिन्दू सो मुसलमान, जिसका दुरस रहै ईमान ॥

पृष्ठ १५, पद ३५५

३ यह विविध संतों के उस असंतोष का फल है जो उन्हें सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनुभूत हो रहा था। उनके चित्त में कहीं न कहीं और किसी न किसी प्रकार की सामाजिक त्रुटियों से उत्पन्न व्याकुलता की आवश्यकता रहती है ।

"मध्यकालीन धर्म साधना", लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ—४

निष्कर्ष

राजनीतिक सघर्षो एव धार्मिक क्रातियो के परिणाम स्वरूप जन जीवन तितर बितर हो गया था। उनके जीवन म अब कोई स्थायी मा यता नही रह गयी अपनी रोजी रोटी के लिए वह अब कोई भी श्रम तथा कोई भी व्यवसाय अपनाने के लिए तयार थी। जीवन निर्वाह के लिए आर्थिक समस्या जीवन की मूल समस्या बन गयी थी। जाति धम एव राज्यो के पारस्परिक सघष से समाज मे एक दूसरे के विरोधी वग बन गये थ। परिणामस्वरूप एकता के विचार सब म टूट गए थे। वास्तव म तत्कालीन समाज म निहित जाति धम के भेद भाव जनता की दुगति के कारण थे। इसी कारण जनता म विविध जातीय वग बने और जिससे उन्ह पराधीन भी होना पडा। पराधीनता के कारण हिन्दुओ की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी थी। अब उनकी केवल गौरवगाथा ही शेष रह गयी थी।[1] गरीबी के कारण हिन्दू स्त्रियाँ मुसलमानो क घर मजदूरी करती थी।[2] परिस्थितिवश हिन्दू जनता मुसलमान बनता जा रही थी। अब ऐसा धम सकट का काल आ गया था कि उस किसी एक धम का बन जाना आवश्यक था।[3] परिणामस्वरूप समाज म विभिन्न धम एव विभिन्न विचार धारा की स्थापना हुई।

सामाजिक सघर्षो के परिणाम

१ समाज म विभिन्न वर्ग बन गए।

२ हिन्दू मुसल्मान म धार्मिक एव जातिगत मतभद बढा।

३ मुसल्मानो अत्याचारो के कारण समाज म पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ।

४ कोई उचित सामाजिक व्यवस्था न होन के कारण लोगो का चारित्रिक पतन हुआ।

५ सभी दुव्यवस्थाओ क विरोध म क्रातिकारी विचारको का आविर्भाव हुआ।

धार्मिक सघष

मध्यकालीन जनता एस धार्मिक वातावरण म जी रही थी जो कि उस परम्परा से प्राप्त हुआ था। यह परम्परा बहुत पुरानी थी। वदिक काल से मध्य काल तक जितन भी धम भारतवष म हुय थ। प्राय सभी धर्मो का अस्तित्व यहाँ

---

१ मिडिवल इण्डिया—लेखक डॉ० ईश्वरी प्रसाद पृष्ठ ९९

२ वही पृष्ठ २८८

३ मध्यकालीन धम साधना—लेखक डॉ० हजारी प्रसाद द्विवदी पृष्ठ ९९

विद्यमान था और सभी धर्मों के मानने वाले लोग भी थे। देश का हरेक व्यक्ति किसी न किसी धर्म से जुड़ा हुआ था। शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन आदि धर्म समाज के प्रचलित धर्म थे। इन धर्मों का संघर्ष तो पहले से ही चला आ रहा था अब एक और नया धर्म हिंदू समाज का विरोधी बन कर भारत में प्रचलित हो गया था जिसकी मान्यतायें सभी भारतीय धर्मों के विपरीत थी। वह इस्लाम धर्म था। इस्लाम धर्म का विरोध सभी हिंदुओं ने किया पर इस्लाम धर्म राजनीतिक शक्ति का सहारा पाने से स्वस्थ बना रहा और साथ ही साथ सभी भारतीय धर्मों का अस्तित्व भी अलग रूप बना रहा।

प्राचीन काल में ऋषि मनीषियों ने धर्म के नाम पर जितने मत एवं विचार प्रकट किए थे सब सामाजिक सर्वोदय के लिए थे। धर्म एवं वर्ण की सभी व्यवस्थायें मानव विकास के लिए थी। हरेक मनुष्य अपनी अपनी योग्यता के अनुसार अपने-अपने क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करता था। हरेक वर्ण की कुशलता उत्पादक थी और सारे देश का उत्पादन सामाजिक कल्याण के लिये होता था। पर बाद के कालों में धर्म एवं वर्ण का स्वरूप बहुत विकृत हो गया। उसमें नाना प्रकार के मिथ्याचार जुड़ते गये। मध्यकाल में धर्म एवं जाति की विविध असमानता थी। सभी धर्मों में पाखण्ड भ्रष्टाचार एवं विविध ढकोसले प्रचलित थे। वैदिक काल में जो देवी देवताओं की विविध उपासना समाज में प्रचलित थी वह मध्यकाल में भी विद्यमान थी। पुराण, उपनिषद तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों की कथायें समाज में प्रचलित थी। पूरा समाज लोक रस पान में मुग्ध था। पण्डित और पाँडे उसके प्रचारक थे।[1] ईश्वर के अनेक अवतारों में सबकी गहन आस्था थी और उसी के आधार पर विविध भारतीय धर्म भी बने हुये थे। शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन आदि धर्मों के साथ जनता अब भी अपना गहन सम्बन्ध बनाये हुये थी।

शैव धर्म

शैव धर्म का आविर्भाव वैदिक काल से ही माना गया है। शिव की उपासना आदिकाल से पशुपति तथा महादेव के रूप में होती चली आ रही है। मध्यकाल में शैव धर्मानुयायी विद्यमान थे जिनकी संख्या उत्तरभारत में अधिक थी। इस काल में अनेक शिव मंदिर बनाये गये थे और उनमें शिवमूर्ति रखी गई थी। सोमनाथ के मंदिर में शंकर की मूर्ति कलापूर्ण ढंग से रखी गयी थी। मुहम्मद गोरी ने जब इस मंदिर पर आक्रमण किया तो देश के सारे शैव मतावलम्बी उसकी रक्षा के लिये एकत्रित हुये थे पर इस धर्म में भी अनेक कर्मकाण्ड जुड़ गये थे।

---

१ कबीर ग्रंथावली पृष्ठ ६९ पद १

२ कबीर ग्रंथावली--श्याम सुन्दरदास पृष्ठ १६८, पद ३९०

शाक्त मत

शाक्त मतावलम्बी आद्या देवी की शक्ति में पूर्ण आस्था रखते थे। इस मत में तंत्र मंत्र तथा योग साधना को अधिक महत्व दिया गया था। शाक्तों ने समाज में जादू टोटका जैसी कुरीतियों का प्रचार कर लोगों को भ्रम में डाल रखा था। ये लोग आद्या देवी को खुश करने के लिए अनेक प्रकार के हिंसात्मक काम कर रहे थे। सन्तों ने इस धर्म की बहुत निन्दा की है।[1] इस मत के मानने वाले अन्धविश्वासी थे और इनकी संख्या भी देश में अधिक नहीं थी। बंगाल में इस धर्म का अधिक प्रचलन था। वैष्णव, शैव आदि धर्मों से इसका विरोध था जिसके कारण संघर्ष की स्थिति सभी धर्मों के साथ बनी हुई थी।

बौद्ध धर्म

वैदिककाल से ही समाज में दो विचार की दो धारायें चली आ रही हैं। एक विचारधारा वेद सम्मत मान्यताओं में विकसित हुई और दूसरी विचारधारा उसकी प्रतिक्रिया के रूप में। बौद्ध और जैन धर्म वेद विरोधी स्वर हैं जो वैदिक कर्मकाण्डों की प्रतिक्रिया के रूप में पैदा हुए। बौद्ध धर्म का आविर्भाव उस काल में हुआ जब समाज में अनेक प्रकार की हिंसायें और कर्मकाण्ड प्रचलित थे और हर एक व्यक्ति को एच्छिक कर्म करने का अधिकार नहीं था।[2] अतः बौद्ध धर्म अपनी समकालीन परिस्थितियों में वैदिक धर्म का विरोधी था। पर बाद के युगों में इस धर्म को अन्य धर्मों से भी संघर्ष करना पड़ा। जैन धर्म इस धर्म का निकटतम प्रतिद्वन्द्वी था। दोनों धर्मों के अनुयायियों में पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के कारण सदैव संघर्ष की स्थिति बनी हुई थी। स्वयं बौद्ध धर्म के अन्दर ही हीनयान और महायान दो शाखायें बन गयी थीं। हीनयान सम्प्रदाय वाले सिद्धान्तवादी थे और बुद्ध द्वारा बताये गये उपदेशों में पूर्ण आस्था रखते थे। महायानियों का विचार उनसे कुछ भिन्न था। वे लोग धार्मिक नियमों की कठोरता पर अधिक जोर नहीं देते थे। भक्ति तथा तंत्र मंत्र में इनका पूर्ण विश्वास था। ये लोग हीनयानियों को तुच्छ समझते थे जिससे बौद्ध धर्म की दोनों शाखाओं में पारस्परिक संघर्ष बना हुआ था।

बौद्ध धर्म ज्यों ज्यों प्राचीन होता गया उसमें कर्मकाण्ड तथा लोकाचार बढ़ता गया। महायान शाखा वाले वाममार्गी थे। इसमें तंत्र मंत्र की साधना द्वारा जो सिद्धि प्राप्त करता था—सिद्ध कहलाता था। इन सिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ (मछेन्दरनाथ) तथा गुरू गोरखनाथ अधिक प्रसिद्ध हुए। सिद्धों की ही परम्परा में वज्रयान और सहजयान

---

१ कबीर ग्रंथावली, श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ ४१ दोहा ९

२ भारतीय दर्शन—वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ ३८

सम्प्रदाय का विकास हुआ। सहजयान सम्प्रदाय वज्रयान का परिवर्तित रूप था।[1] जो मध्यकालीन समाज में विद्यमान था। इस सम्प्रदाय में सहज साधना तथा गुरु को अधिक महत्व दिया गया है जिसका वर्णन मध्यकालीन संतों ने किया है।[2]

सिद्ध योगियों की परम्परा में नाथपंथ का विकास हुआ जिसके मूलप्रवर्तक गुरू गोरखनाथ माने जाते हैं।[3] मध्यकालीन संत समाज गुरू गोरखनाथ के नाथ पंथ से प्रभावित था।[4] और पिछड़ी जातियों के लोग इस पंथ के अनुयायी बन गये थे। उत्तर भारत में इस मत का अधिक प्रचलन था और इस मत के मानने वालों की संख्या भी अधिक थी। इस प्रकार बौद्ध धर्म सन् ५२८ ई० पूर्व से लेकर १५वीं शताब्दी तक अपने विविध रूपों में परिवर्तित होकर समाज में प्रचलित था। महायान, हीनयान, वज्रयान सहजयान तथा नाथ पंथ आदि सम्प्रदाय एवं मतों का विकास बौद्ध धर्म से हुआ था। इनमें आपस में एक दूसरे के प्रति स्पर्द्धा तथा ईर्ष्या द्वेष का भाव बराबर चलता रहता था। सनातन धर्मियों तथा परम्परागत मान्यताओं में विश्वास रखने वालों से बौद्ध धर्म का वैचारिक अलगाव बना हुआ था जो संघर्ष का बहुत बड़ा कारण था।

जैन धर्म

जैन धर्म का आविर्भाव लगभग ५०० ई० पूर्व में हुआ। यह धर्म भी वैदिक धर्म तथा उसमें निहित कर्मकाण्डों के विरोध में विकसित हुआ। इस धर्म के प्रणेता स्वामी महावीर थे जिन्होंने हिंसात्मक कार्यों के विरोध में अपने मत का प्रचार किया। इस धर्म के अनुयायी भी पक्के अहिंसावादी थे। इन लोगों ने सत्य अहिंसा अस्तेय, अपरिग्रह और अक्रोध (शान्ति) को मूल सिद्धान्त रूप में अपनाया। आचरण और आवास की पवित्रता जैन धर्म का मुख्य रूप था। आगे चलकर इस धर्म की दो शाखायें (श्वेताम्बर और दिगम्बर) हो गयीं और दोनों के विचार तथा रहन सहन में काफी अन्तर आ गया। मध्यकाल में दोनों शाखाओं का दो अलग-अलग रूप विद्यमान था। श्वेत वस्त्रधारी श्वेताम्बर और नग्न वेश में रहने वाले दिगम्बर कहे जाते थे। वैसे ये पूरे भारत में फैले हुए थे पर राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र

---

१ नाथ सम्प्रदाय हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास लेखक हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १४५

२ कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १, दोहा १ तथा सहज का अंग पृष्ठ ३२-३३ दोहा १-४

३ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा–आ० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ५४

४ कबीर ग्रन्थावली–श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ ४०/१२ तथा २२/१०

में इनकी संख्या अधिक थी ।[1] जैनी स ता ने म यकाल मे अनेक भाषा तथा जीवनोपयोगी ग्र थ लिखे । नीति तथा दशन शास्त्र का प्रणयन इन लोगो ने किया जो व्यावहारिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूण हैं । इस धम म परम्परागत रूढियाँ प्रचलित थी । य लोग कवल शुद्ध अहिंसावादी बनने का ढोग करते थे पर परोक्ष रूप से हिंसात्मक कार्यों से वचित नही थ ।[2] इस प्रकार जन धमानुयायियो की भी अपनी कुछ कमियाँ थी जिसके कारण यह धम सवप्रिय न हो सका । हि दू और इस्लाम दोनो धम इस धम के विरोधी थे । यह धम भी अपनी सघषमयी परिस्थितियो मे जी रहा था ।

सूफी धम

यह अत्य त प्राचीन धम माना गया है और सूफीयो का कहना है कि इसके मूल प्रवतक आदम (आदि पुरुष) थे। कुछ भी हो पर मध्यकाल मे इसका प्रभाव दिखायी देता है । सूफी विचारधारा और मध्यकालीन भारतीय विचारधारा में बहुत कुछ साम्य है । इस धम की सरसता प्रेम के क्षेत्र मे भी है जो भारतीय विचारधारा के निकट पड़ती है । इस काल म सूफी धम स प्रभावित भारतीय काव्य लिखे गय पर उनका काव्य विकास भी भारतीय शैली म हुआ । इस्लाम धम क सामने सूफी धम अधिक प्रसिद्ध न हो सका क्योकि इस धम म उतनी कट्टरता नही थी जितनी कि इस्लाम धम म और इसको शासक वग से कोई सहायता भी नही मिली । यद्यपि सूफी लोग विशिष्टाद्वतवादी थे । इनमे भी भक्ति का व्यावहारिक रूप अधिक मान्य था पर य सब विशषतायें भारतीय धर्मों क मूल मे भी थी और यह इतरजातीय धम था जिसस भारतीय जनता इससे प्रभावित नही हुई । हि दुओ म इस धम के प्रति घृणा और ईर्ष्या के भाव थ जिसस सघष होना दोनो म स्वाभाविक था ।

इस्लाम धम

१४वी १५वी शता दी म इस्लाम का प्रचार भारत म हो चुका था । शासन सत्ता मुसलमान शासको के हाथ म होने के कारण इस धम का कलेवर शक्तिशाली

---

१ कबीर एक विवेचन—सरनाम सिंह, पृष्ठ १८

२ मध्यकालीन भारत—श्रीनिवासचारी पृष्ठ २३४

३ अरु भूले षट दरसन भाई पाखड भेस रहे लपटाई ॥
जन बोध अरु सावत सना, चारवाक चतुरग बिहूणा ॥
जन जीवकी सुधि न जान, पाती तारि देहुर आन ॥
अरु प्रिथमा का राम सपारें, देखत जीव कोटि सघार ॥
कबीर ग्र थावली, पृष्ठ १८२

४ उत्तरी भारत की स त परम्परा—आचाय परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ६३ (भूमिका)

हो चुका था और अन्य भारतीय धर्मों की शक्ति छिन्न पड़ गयी थी। इस काल में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच सबसे बड़ा संघर्ष का कारण धर्म था जिससे अर्थ राजनीति और पूरा समाज प्रभावित हुआ था। परिणामतः पीर मुल्ला काजी सूत, मठन आदि जातियाँ धर्म की विस्तारक विनाशकारियाँ थी जिसमें पूरा समाज मुग्ध रहा था। जिसके कारण समाज में एक ऐसा असन्तुष्ट वर्ग विरोधी बन गया था जो सारी दुर्व्यवस्थाओं से ऊब गया था। इस्लाम का प्रचार हिन्दू धर्म के विरोध में होने के कारण सारी भारतीय जनता इसके विरुद्ध हो गया और सबल क्रान्ति करने का अवसर ढूँढने लगी। हिन्दुओं के मन्दिर को तोड़ना तथा अनेक प्रकार के उन पर अत्याचार करना आदि उनके अमानवीय व्यवहार संघर्ष की भयानक स्थिति पैदा कर दिये थे। जिसके कारण सारे भारतीय धर्म इस्लाम धर्म के विरोधी बने रहे।

निष्कर्ष

इस प्रकार मध्यकाल में हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों का संघर्ष बहुत तेजी से चल रहा था। हिन्दू धर्म बहुत पुराना धर्म था जो अपने देश के रीति रिवाज तथा संस्कारों में घुल मिल गया था जिसके कारण जनता अपार मोह से उसमें चिपकी हुई थी। दूसरी तरफ इस्लाम धर्म तलवार के बल पर मनाया जाने वाला धर्म था। मुसलमानों के लिए धर्म युद्ध के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन था और हिन्दुओं के लिए दुर्गति का कारण था। इसके साथ धर्म जीवन मूल्य लपेटे था। क्योंकि धर्म का सम्बन्ध रोजी रोटी तथा जीवन के सारे व्यवहारों से जुड़ा हुआ था। समाज में अनेक पंथ व धर्म प्रचलित थे जिसमें मिथ्याचार व पाखण्ड समाया हुआ था।[1] शाक्त वैष्णव श्वेताम्बर दिगम्बर हीनयान महायान सिद्ध शाक्त वैरागी तथा बनखण्डी आदि साधुओं के पंथ तथा सम्प्रदाय समाज में वर्तमान थे।[2] इस काल में तीर्थयात्रा तथा धर्म स्थान का अधिक महत्त्व था।[3] हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों में कुछ-न कुछ कमियाँ थी जिसके कारण दोनों धर्म सर्वप्रिय न हो सके। इस्लाम धर्म को राज्य की तरफ से सहायता मिलने के कारण अधिक शक्ति मिली और उसका काफी प्रचार हुआ।

---

१ *छह दरसन छ्यानबे पाषंड आकुल किनहूँ न जाना ॥* क० ग्र०
जप तप संजम पूजा अरचा जोतिग जग बौराना ॥ पृ० ७७, पद ३४

२ जैन बोध अरु साक्त सैना । चारवाक चतुरंग बिहूना ॥ पृ० १८२ (रमैणी)
साषत बाभण मति मिलै वैसनौ मिलै चंडाल ॥ पृ० ४१।९
स्वांग जती का पहरि करि घर घर मांगै भीष ॥ पृ० ३।२७
जोगी गोरख गोरख करै हिन्दू राम नाम उच्चरै ॥ पृ० १५०।२३०

३ क० ग्र० पृ० १७४ (रमणी)

दूसरी तरफ हिन्दू धर्म अनेक प्रांतधर्मों में संकुचित हो गया । इन विविध सामाजिक बुराइयों एवं धार्मिक कर्मकाण्डों के विरुद्ध मध्यकालीन संतों ने आवाज उठायी जिसके परिणामस्वरूप धार्मिक क्रांति को और बल मिला ।

धार्मिक संघर्ष के परिणाम

१ हिन्दू मुसलमान दो जातियों का अलगाव सदैव के लिए हो गया ।
२ धर्म के नाम पर साधारण जनता को अधिक कष्ट झेलने पड़े ।
३ धार्मिक प्रभाव के कारण हिन्दू समाज राजनीतिक छल प्रपञ्चों से दूर रहा ।
४ हिन्दुओं की धार्मिक मनोवृत्ति के कारण मुसलमान शासकों को भारत से अधिक धन लूटने का अवसर मिला ।
५ धार्मिक बुराइयों एवं सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं की प्रतिक्रिया में संतों ने धार्मिक क्रांति की ।

साहित्यिक संघर्ष

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है । मध्यकालीन समाज विविध संघर्षों में टूट गया था । उस समय अनेक धार्मिक आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांतियाँ हो रही थीं । इन्हीं क्रांतियों के बीच मध्यकालीन साहित्य का भी विकास हुआ । उस समय भारतवर्ष में कई भाषाओं का प्रचलन था । अरबी फारसी, उर्दू, संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं में साहित्य विकसित हो रहा था । गुलाम वंश के प्रसिद्ध शासक बलबन के शासनकाल में अमीर खुसरो का साहित्य रचा गया । उसने अरबी, फारसी तथा खड़ी बोली में भी काव्य रचा । मुहम्मद तुगलक के राज्य में अरबी, फारसी तथा भारतीय भाषाओं के १००० कवि थे ।[1] जौनपुर उस समय अरबी, फारसी सीखने का (विद्या) केन्द्र था । संस्कृत का प्राय पतन हो चुका था । यद्यपि राज भाषा को अधिक महत्व दिया गया था पर अन्य भाषाएँ भी समाज में जीवित थीं । साहित्य के क्षेत्र में वैचारिक विभिन्नता थी । तत्कालीन समाज में ईश्वर के प्रति मुख्य रूप से दो प्रकार की धारणाएँ प्रचलित थी । एक ईश्वर की उपासना सगुण या साकार रूप में करता था और दूसरा निर्गुण या निराकार रूप में । इन सारी मान्यताओं से तत्कालीन साहित्य भी प्रभावित था । सगुण साहित्य का विकास कथानक के माध्यम से हुआ और निर्गुण साहित्य का स्वतन्त्र रूप से । पहले प्रकार का साहित्य परम्परागत काव्य विधाओं में रचा गया तथा दूसरे प्रकार

---

१ मध्ययुगीन काव्य साधना—लेखक डॉ० रामचन्द्र तिवारी ।
पृ० ४ ।

का साहित्य सहज रूप म अनुभव के आधार लिखा गया । यह अनुभववाद पर आधारित साहित्य सतकाव्य था जिसने परपरागत साहित्य क विरोध म अपने मतो का प्रचार किया, सीधी सादी तथा प्रभ वपूण भाषा म लिखा गया सतकाव्य अ यत लोकप्रिय रहा । सतकाव्य वणव्यवस्था तथा धार्मिक कमकाण्डो का विरोधी बनकर समाज म प्रतिष्ठित हुआ । मध्यकालीन स तो म स्वामी रामान द कबीर, रदास आदि अधिक प्रसिद्ध हुए,जिन लोगो न निगु ण स हित्य का प्रचार एव प्रसार किया । य स त पिछडी जाति के थ । इसलिए स त साहित्य म जाति पाति को कोई महत्व नहा दिया गया । परिणाम स्वरूप भक्तो का एक सगठन बना । जिसने निगु ण साहित्य को बहुत आगे बढ़ाया ।

स त साहित्य निगु ण विचारधारा को लकर चला और दूसर प्रकार का साहित्य ईश्वर के विविध अवतार तथा अ य लीलागान को लकर लिखा गया । दूसरी तरफ इस्लाम साहित्य अद्वतवादी एव प्रममार्गी था । सभी धर्मों के साहित्य भी भिन्न भिन्न मतो से प्रभावित थ । धार्मिक अलगाव क साथ साथ साहित्य के क्षत्र म भी अलगाव था । अरबी फारसी उदू तथा हिन्दी आदि भाषाओ म लिखे गये साहि य एक दूसरे क विरोधी एव साहित्यिक सघष क कारण थ ।

साहित्यिक सघष के परिणाम

१ धार्मिक मतभे ो के कारण साहित्य के क्षेत्र मे भी विविध विचारधारा स प्रभावित काव्य लिख गय ।

२ सभी धार्मिक सामाजिक एव राजनीतिक दुव्यवस्थाओ के विरोध म स त साहित्य लिखा गया ।

३ मुख्य रूप से समाज म उदू और हि दी साहित्य का प्रचार एव प्रसार हुआ ।

४ निगु ण एव सगुण साहित्य के माध्यम से भक्ति आन्दोलन एव जनता मे पुनर्जागरण शुरू हुआ ।

५ सतकाव्य के विकास से हिन्दी साहित्य अधिक सम्पन्न हुआ ।

तृतीय अध्याय

कबीर का व्यक्तित्व और समाज

व्यक्तित्व का शाब्दिक अर्थ है व्यक्त होने की अवस्था या भाव।[1] मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसके गुण, स्वभाव तथा अन्य प्रकार के कार्यों की अभिव्यक्ति समाज मे होती है। और समाज ही उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी करता है। कोई भी व्यक्ति जिस प्रकार का सामाजिक कार्य करता है समाज उसी रूप मे उसके व्यक्तित्व को असमनाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व और समाज का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर हर एक तरह के व्यक्तित्व को समाज नहीं अपनाता। समाज उसी व्यक्तित्व को महत्त्व देता है जिसमे समाजोपयोगी तत्त्व पाये जाते हैं अथवा जो व्यक्तित्व समाज को किसी न किसी तरह प्रभावित कर लेता है। प्राय परोपकारी कार्यों से जुड़ा हुआ व्यक्तित्व समाज के लिए अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय होता है। अतएव जिन कार्यों मे किसी व्यक्ति का सामाजिक स्वरूप स्थिर होता है—वही व्यक्तित्व है।[2]

मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्येक व्यक्तित्व के दो भाग होते हैं। पहला आन्तरिक दूसरा बाह्य। आन्तरिक व्यक्तित्व मूलत प्राकृत व स्वभावगत होता है और बाह्य व्यक्तित्व इसी का प्रत्याभास मात्र होता है। लोक या समाज के लिए वही दृश्य व्यक्तित्व होता है। इसी के आधार पर हम यह जान पाते हैं कि कोई व्यक्ति अपनी आन्तरिक प्रवृत्तियो एवं शक्तियो को कहाँ तक कार्यान्वित तथा विकसित कर सका है।[3] मनुष्य की यही क्रियाशीलता एवं सफलता उसके व्यक्तित्व का रूप निर्धारित करती है। समाज मे कर्मों के भी कई पहलू हैं। जिस प्रकार समाज मे विविध व्यवसाय हैं उसी प्रकार समाज में विविध व्यक्तित्व भी हैं। हर व्यक्तित्व की अपनी अलग-अलग विशेषतायें होती हैं समाज मे कोई अपनी शारीरिक वीरता अथवा लोक सेवा के कारण प्रसिद्ध हो जाता है तो कोई अपनी आन्तरिक साधनाओं के कारण। पर समाजोपयोगी तत्त्व सभी प्रकार के व्यक्तित्व मे विद्यमान रहते हैं। इसी का प्रभाव समाज पर पड़ता है और समाज उसी को ग्रहण भी करता है।

---

१ मानक हिन्दी कोश, पृष्ठ १२८

२ ,, ,,

३ ,, ,,

कबीर अपनी आंतरिक साधना व गहन चिन्तन के कारण समाज में प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध हुए हैं। उनका गंभीर विचारक एवं कवि आदि रूप उनके काव्य के प्रभाव के माध्यम से जाना गया है। कबीर के व्यक्तित्व का प्रभाव केवल उन्हीं कुछ संकलित पदों के आधार पर समाज पर नहीं पड़ा है जिन्हें प्रामाणिकता की सीमा में बांधा गया है बल्कि उन सारे कबीर के नाम से प्रचलित पदों, दोहों, साखियों एवं कृतियों का समष्टिगत प्रभाव है जिसे पक्के आग्रह सभी ने स्वीकार किया है। अतः जनता पर समष्टिगत प्रभाव ही कबीर के व्यक्तित्व का मौलिक रूप है।

कबीर के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जानकारी हम दो स्रोतों से प्राप्त हो सकती है–

१ बाह्य साक्ष्य।
२ अंतःसाक्ष्य।

१ बाह्य साक्ष्य

यद्यपि कबीर के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में प्रामाणिक बाह्य साक्ष्य का अभाव है पर अनंतदास की परिचयी में उनके शारीरिक रूप का वर्णन मिलता है कि कबीर सांवले रंग के बड़े सुंदर रूप वाले थे। वे माला पहनते थे और तिलक धारण करते थे। उनका अंग बड़ा निर्मल था। वे प्रिय एवं मधुरवचन बोलने वाले पंडित थे।[1] अनंतदास एवं कबीर रामानंद के शिष्य बताये जाते हैं।[2] इस आधार पर कबीर का यह रूप वर्णन सही माना जा सकता है।

नाभादासकृत भक्तमाल में कबीर के व्यक्तित्व सम्बन्धी एक अध्याय पाया जाता है जिसमें यह कहा गया है कि कबीर पक्षपात रहित होकर सबके हित की बात कहने वाले भक्ति विमुख धर्म तथा वर्णाश्रम एवं षट्-दर्शन का विरोध करने वाले व्यक्ति थे।[3] इस पद में उनके व्यक्तित्व के विषय में सबसे महत्वपूर्ण

---

१ देह सांवली मनमथलाज ॥ तापरि माला तिलक विराज ॥
मुदितवचन असि निर्मल नना ॥ मुख ते निकले अतिसीतल बना ॥
अनंतदास की परिचयी–(हस्तलिखित प्रति)पूना जयकर ग्रंथालय

२ कबीर दर्शन–रामजी लाल सहायक–पृष्ठ ८

३ कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो ॥
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ।
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी सबदी साखी ।
पच्छपात नहिं बचन सबहि के हित की भाखी ।
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी ॥
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥ भक्तमाल–पृष्ठ ४६१

बात यह है कि वे सबके हित की बात कहने वाले समाज के पक्षपात रहित (तटस्थ) मार्गदर्शक थे। उनके इस व्यापक विचार से तत्कालीन समाज ही नहीं प्रभावित हुआ था बल्कि बाद के युगों में भी उनके व्यापक विचार की आभा फलती गई है। कबीर अपने इस प्रभावशाली व्यक्तित्व के लिए उत्तर भारत में ही नहीं प्रसिद्ध हुए बल्कि समस्त भारतवर्ष में उनके उदात्त विचारों की सराहना होने वाली थी। समकालीन सन्तों से लेकर परवर्ती सन्तों पर सब कबीर के व्यक्तित्व का प्रभाव दिखायी देता है।[1] कबीर के समसामयिक सन्त रैदास, सेन नाई पीपा धन्ना तथा बाद के सन्त धर्मदास सुन्दरदास दादू एवं गरीबदास आदि कबीर के स्वर में कबीर की बोली बोलते हैं। परवर्ती सन्तों के काव्य में यत्र तत्र कबीर के व्यक्तित्व का उल्लेख मिलता है। सभी ने कबीर की भक्ति एवं सामाजिक जीवन के अनुभव को श्रेष्ठ बताया है।

२ अन्तःसाक्ष्य

कबीर के नाम से जितने दोहा साखी, पद एवं रमैनियाँ पायी जाती हैं उनमें जहाँ-जहाँ उनके व्यक्तित्व से सम्बन्धित वर्णन मिलता है वही अन्तःसाक्ष्य है। कबीर के पदों का प्रकाशन कई पुस्तकों में हुआ है पर मैंने श्याम सुन्दरदास द्वारा सम्पादित कबीर ग्रन्थावली को ही आधार (कबीर के व्यक्तित्व का समर्थन के लिए) बनाया है। इस ग्रन्थ में जो गुरुदेव को अंग' 'ग्यान विरह को अंग' 'बिनावाणी को अंग', 'साँच को अंग' 'भ्रम को अंग' 'विचार को अंग', 'सूरातन को अंग-आदि अंगों का वर्णन हुआ है वहाँ कबीर के व्यक्तित्व का मर्म रूप है। कबीर के पदों और रमैनियों में जिन सूक्ष्मतम भावों एवं तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की समस्याओं पर विचार हुआ है उसके द्वारा भी मैंने कबीर के व्यक्तित्व का समर्थन का प्रयास किया। सम्पूर्ण कबीर काव्य का अध्ययन करने पर व्यक्तित्व के तीन प्रमुख पहलू दिखाई पड़ते हैं। सर्वप्रथम वे सन्त हैं फिर विचारक और अन्त में कवि।

१ कबीर का सन्त रूप

सन्त शब्द का अर्थ प्रायः बुद्धिमान पवित्रात्मा, सज्जन परोपकारी एवं सदाचारी व्यक्ति से लिया जाता है। कभी कभी परम धार्मिक साधु महात्मा को भी सन्त कहा जाता है।[2] साधुओं की परिभाषा में वह सम्प्रदाय मुक्त साधु जो विवाह कर के साधु बन गया हो सन्त कहलाता है।[3] वैसे तो सन्त शब्द अंग्रेजी के सेंट

---

१ देखिए 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' परशुराम चतुर्वेदी
पृष्ठ २२४-८२०

२ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—लेखक परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ ३ (भूमिका)

३ मानक हिन्दी कोश-भाग ५, सं० रामचन्द्र वर्मा पृष्ठ २१८

(Saint) शब्द का समानार्थी है जिसका अर्थ पवित्रात्मा या पवित्र व्यक्ति से लिया जाता है।[1] इस प्रकार सन्त शब्द अपने बहुत व्यापक अर्थ रखता है जो भक्त ज्ञानी एवं विचारक के सारे गुणों से परिपूर्ण है। कबीर का व्यक्तित्व भी इन सारे गुणों को लेकर प्रभावशाली बन गया है। अतएव कबीर व्यक्तित्व का मुख्य रूप संत का है।

कबीर ने अपनी एक साखी में संतों का लक्षण बताते हुए कहा है कि सन्त वही है जो निवैरी निष्काम प्रभु का प्रेमी एवं सांसारिक विषयों से विरक्त हो।[2] संत संकीर्ण विचारधारा के न होकर व्यापक विचारधारा के होते हैं। वे किसी जाति धर्म या सम्प्रदाय विशेष के पक्षपाती नहीं होते। उनमें स्वार्थी भाव नहीं रहते। वे पूरे विश्व को सम दृष्टि से देखते हैं। उनका चिन्तन मनन एवं कल्याण के लिए होता है। वे केवल अपने लिए नहीं जीते बल्कि वे सारे समाज के लिए जीते हैं। वे हम तुम के ऊपर उठकर सबके हित की बात कहते हैं। राम ही उनका परमेश्वर होता है। उन्हें सब में एक राम की झलक दिखायी देती है।[3] उनकी दुनिया में सब अपनी अपनी जगह समान है। न कोई छोटा है और न कोई बड़ा है न कोई ऊंचा है और न कोई नीचा है। सभी तात्त्विक दृष्टि से एक रूप हैं। सृष्टि की अनेकता में उन्हें मानव के भीतर की एकता आभासित होने लगती है। वे मानव समाज को संगठित रूप देते हैं। उनकी भावना एवं विचारधारा जन जीवन के साथ होती है।[4] ऐसे संतों के प्रति समाज भी अपनी गहन आस्था रखता है।

सन्त किसी लोभवश सामाजिक कार्य नहीं करते बल्कि निष्काम भाव से वे सभी कार्य करते हैं। इसीलिए वे किसी वाद या सम्प्रदाय में संयुक्त नहीं रहते। संत कबीर भी ऐसी ही तटस्थ सीमा पर खड़े थे जहाँ न किसी से अधिक लगाव था और न बैर ही। उनमें घर फूँक मस्ती थी जो अपना घर जला कर दूसरा का भी घर जलाने को तैयार थे। अर्थात दैनिक जीवन की संकुचित आर्थिक सीमाओं में वे न तो

---

१ उत्तरी भारत की संत परम्परा—लेखक प० रा० चतुर्वेदी पृष्ठ ४

२ निरवैरी निहकामता साइं सेती नेह।
विषया सूँ न्यारा रहै संतन का अंग यह॥

क० ग्र०, पृष्ठ ५९ दोहा १२

३ एक राम देखा सबहिन में कहै कबीर मन माना॥

क० ग्र०, पृष्ठ ८२, पद ५२

४ होत सन्त जनन के संगी॥ क० ग्र०, पृष्ठ १०९ पद १७३

५ हम घर जाल्या आपना लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का जे चलै हमारे साथि॥ क० ग्र० पृष्ठ ५३

स्वय बँधना चाहते थे और न दूसरा को ही उसम बाधना चाहते थे । उनकी धारणा थी कि घर जलाने वाला अमर हो जाता है और घर बनाने वाला मर जाता है । यह कितने आश्चय की बात है कि एक को काल खा जाता है और दूसरा मरा हुआ व्यक्ति काल को खाता है । अर्थात त्यागी एव परोपकारी पुरुष ससार में अमरत्व पा लेता है ।[1] कबीर अपने उदात्त विचारो के कारण समाज म इतने प्रतिष्ठित हुए हैं । उन्हें जीते ही अपने अमरत्व का भरोसा हो गया था कि "हम नही मरेंगे ससार भले ही मर जाय ।[2] उनके विचार की मत्यु नही होती बल्कि उसके रूप वाद एव अहकार की मत्यु होती है ।[3] क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व तो सदव है । समाज म बालक, युवा एव वद्ध सदैव हैं । नर-नारी सब वही हैं । केवल मनुष्य की समस्याएँ मरती हैं । कबीर ने प्रकृति मे निहित सारे विनान को समझा था और उसे व्यवहार मे उतारा था । उनके लिए सुख-दुख गाना रोना तथा गह वराग समान था ।[4] वे ससार सरोवर म रह कर भी कमल की तरह जल (माया) मुक्त थ । सतपना उनके स्वभाव मे ही था । पार्थिव माता या माया के न चाहते हुए भी कबीर सन्त सरिता की धारा में बह गए थे ।[5] सन्त सगीत उन्हे अधिक प्रिय थी । कबीर ने स्पष्ट रूप मे यह स्वीकार किया है कि व सन्त के चेले थे ।[6]

कबीर के व्यक्तित्व की सबसे बडी विशेषता यह है कि व मानवमात्र के प्रेमी थे । एक तरफ मनुष्य के हित की बात सोचते सोचते उनके मन की करुणा अत्यन्त द्रवीभूत हो गयी थी और दूसरी तरफ सामाजिक भ्रष्टाचारो एव धार्मिक पाखण्डों को देख कर उनका मन तिलमिला उठा था । इन्ही दोनों भावो के प्रकाश म उनका

---

१ घर जालो घर उबर घर राखों घर जाइ ॥
  एक अचम्भा देखिया मडा काल को खाइ ॥ क० ग्र०, पष्ठ ५०

२ हम न मरव मरि हैं ससारा ॥
  हमका मिला जियावन हारा ॥ क० ग्र० पष्ठ ८०

३ मुई मुरति बाद अहकार ॥
  वह न मुवा जो बोलनहार ॥ क० ग्र०, पष्ठ ८०

४ गावण म ही रोवणा रोवण ही म राग ॥
  एक वरागी ग्रिह म इक गही में वराग ॥ क० ग्र० पष्ठ ४६

५ कबिरो सन्त नदी गयो बहिरे ।
  ठाढी माइ कराडे टर है कोई ल्याव गहि र ।

क० ग्र०, पष्ठ १०३ पद १५१

६ कबीर चेरा सन्त का दासन का परदास । क० ग्र०, पष्ठ $\frac{५१}{१३}$

काव्य लिखा गया । उनका समूचा काव्य सामाजिक चेतना को उभारने वाला है । वे निष्कर्मियों को कर्म करने की प्रेरणा देते हैं और सोने वालों को जाग्रत करते हैं ।[1] उनका कहना था कि कर्म करने वाले को कभी न कभी सफलता अवश्य मिलती है ।[2] वे स्वयं श्रमजीवी थे । वे अपनी जीविका स्वयं चलाते थे । वे समाज के आत्मनिर्भर व्यक्ति थे । दूसरों की आशा पर जीने वाले व्यक्ति नहीं थे । उनके विचार से कर्म करने वाले पुरुष की ही समस्याएं (गरीबी) दूर हो सकती हैं । जो कर्म नहीं करता वह पूर्णतया विनष्ट हो जाता है ।[3] कबीर के काव्य में इस प्रकार के अनेक पद मिलते हैं जिसमें मनुष्य को सत्कर्म करने की बात कही गयी है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक कर्मशील पुरुष थे और सत्कर्म में उनकी गहन आस्था थी ।

कई विद्वानों ने कबीर को संत न समझकर उन्हें अक्खड़ फक्कड़ बेपरवाह तथा सिर से पैर तक मौला समझा है । जो कि उचित नहीं है । यह केवल ऊपरी परख है । अथवा विरोधी भाव की प्रतिक्रिया है । वास्तव में जिन परिस्थितियों में कबीर पैदा हुए थे समाज में धर्म के नाम पर बड़ा आडम्बर एवं पाखण्ड फैला हुआ था । जो कि मानव समाज के लिए बहुत घातक था । प्रश्न यह उठता है कि क्या कबीर ही सबके विरोध में ससाहस बोलने वाले व्यक्ति थे । क्या उस जमाने में कबीर जैसा व्यक्ति कोई था ही नहीं ? कबीर जैसी विचारधारा वाले व्यक्ति उस जमाने में थे पर कबीर जैसी प्रतिभा सबमें नहीं थी । कबीर का दर्शन जिन संतों द्वारा विकसित हुआ है वह कबीर की ही मत विचारधारा है पर उसमें कबीर का व्यक्तित्व नहीं है इसलिए वह इतना प्रभावशाली नहीं हो पाया है । अतः कबीर का ही व्यक्तित्व ऐसा है जो पण्डित मुल्ला के कट्टरों पर चोट कर सकता है ।

वास्तव में कबीर का किसी जाति विशेष में अथवा वैदिक धर्म से कोई विरोध नहीं था ।[4] उनका विरोध उन लोगों से था जो समाज में कर्मकाण्ड फैला कर लोगों को धोखा दे रहे थे । कबीर के अनुसार काजी व मुल्ला का ईश्वर के प्रति भेद भाव

---

१ कबीर सूता क्या करै काहे न देखै जागि ॥ क ग्र पृष्ठ ४ ।
२ कसी कहि कहि कूकिये ना सोइये असरार ॥
राति दिवस के कूकणे कबहू लगै पुकार ॥ पृष्ठ ५ ।
३ कबीर जे धंधै तो धूलि बिन धंधै धूल नहीं ।
ते जन बिनठभूल जिन धंधै ध्याया नहीं ॥ क ग्र पृष्ठ १७–२१ ।
४ कबीर (व्यक्तित्व विश्लेषण) पृष्ठ १९६ —लेखक हजारीप्रसाद द्विवेदी
कबीर की विचारधारा—लेखक गोविन्द त्रिगुणायत पृष्ठ ९९, ९७ ।
५ वेद कुरान कहौ क्या झूठा । झूठा जो न विचारै क ग्र पृष्ठ ८४

झूठा है पण्डिता का बगवाद झूठा है ।[1]

लोगों का कहना है कि कबीर शब्दा के माध्यम से काजी, मुल्ला पर लूटमार चोट करते हैं जो कि उनकी सतई पर दाग लगा देता है। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि हित चाहने वाला व्यक्ति ही गलत काम करने पर फटकारता है और अच्छा काम करने के लिए उपदेश देता है। एक स्थान पर व पाडे को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि पाडे ! तुम्ह कौन कुमति लगी है जो तुम हरि भजन नही करते हो। तुम वद, पुरान इस प्रकार पढत हो जस कि चन्दन के भार को गधा ढोता है। अथात वद, पुरान म निहित ज्ञान चन्दन के सदगुणा के समान है पर पण्डित, मुल्ला उसके सही अथ को नहा समझ पाते। उस ज्ञान का अपन व्यावहारिक जीवन म नहीं उतार पात। इसलिए वह ज्ञान भार के समान है। फिर वे कहत हैं, वद पढने का अभिप्राय यह है कि सब घट म ईश्वर का दशन करना चाहिए। अर्थात् सभी जीवों क प्रति दया एव सहानुभूति होनी चाहिए।[2] दूसर पद म व काजी को सम्बोधित करते हुए कहत हैं कि काजी ! तुम किस कुरान की प्रशसा करते हो। कुरान पढते-पढत इतना दिन बीत गया पर उस एक का गति उस एक की महिमा को नहीं समझ पाय। य काजी शक्तिपूवक बालक का खतना करात हैं, यह इनका आदश है। यदि ईश्वर की तरफ स हिन्दू मुसल्मान म कोइ भेद हाता ता तुक बनने क लिए मा के पट से हा खतना करा क आत। मुसलमान लाग अपन को तुरक बनाते हैं पर औरतो का क्या करेंग ? अपन ता मुसलमान बन जाते हैं पर औरत तो हिन्दू हा रह जाती हैं। अरे काजी, कुरान को छोडकर एक राम की भजन करो।

---

१ पंडित वाद वदत झूठा।
राम कह्या दुनिया गति पाव पाड कह्या मुख मीठा ॥ क ग्र पृष्ठ ७९, पद ४०
कहैं कबीर यह भुल्ना झूठा। रामरहीम सबनि म दीठा ॥
क ग्र, पृष्ठ ८३, पद ६०

२ पाडे कौन कुमति तोहि लागी,
तू राम न जपहि अभागी ॥
वद पुरान पढत अस पाड खरचदन जस भारा ॥
राम नाम तत समझत नाही अति पड मुखि छारा ॥
वद पढ्या का यहुफल पाडे सब घटि देख रामा ॥
जन्म मरन थ तो तूं छूट सुफल हूहि सब कामा ॥
क ग्र, पृष्ठ ७८-७०, पद ३९

न्यथ में खून मत करो।[1] यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कबीर पांडे एवं काजी के निकृष्ट कर्म पर चोट कर रहे हैं। यदि ये लोग समाज में इस प्रकार का गन्दा वातावरण न पैदा करते तो कबीर उन पर इतने चोटीले वार न करते। उनके हरेक आक्रोश के बाद गम्भीरता के साथ काजी मुल्ला और पांडे को समझाना भी हुआ है। इसीलिए उनके व्यक्तित्व में कुसुमादपि कोमल और वज्रादपि कठोर वाले गुण पाये जाते हैं।[2]

कबीर के सन्तपन में उनका ज्ञान उभरा हुआ है। उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का पूर्ण विवेक था। उन्होंने ज्ञान को अन्य किसी चीज को जान लेने से नहीं लिया है बल्कि उसे व्यवहार में सफल बनाने में लिया है। जीवन में सारे भ्रम अज्ञान के कारण होते हैं। ज्ञान होने पर सारे भ्रम दूर हो जाते हैं। सारे सांसारिक मोह माया के बन्धन टूट जाते हैं।[3] कबीर का ज्ञान शुष्क ज्ञान मात्र नहीं है बल्कि उसमें व्यावहारिक जीवन की सरसता भी है। इसीलिए वह जन ग्राह्य है।

कबीर काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि वे अत्यन्त करुण पद्धति के व्यक्ति थे। वे सभी जीवों के प्रति आत्मभावना रखते हैं। वे धार्मिक हैं और अहिंसा उनका परम धर्म है। कबीर कालीन समाज में धर्म के नाम पर बड़ी हिंसा होती थी। यह हिंसा हिन्दू मुसलमान पांडे और काजी दोनों के घर की जाती थी। ये पांडे कसाई से कम नहीं थे[4] और मुल्ला तो पूरे अन्यायी थे। जो मुर्गी, बकरा आदि

---

१ काजी कौन कतेब बखाने।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते गति एकै नहिं जाने।
सकति से नेह पकरि करि सुनति यहु नबदू रे भाई।
जो रे खुदाइ तुरक मोहि करता तो आप कटि किन जाई।
हौ तौ तुरक किया करि सुनति औरति सौ का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छूटै आधा हिन्दू रहिये।
छाडि कतेब राम कहि काजी खून करत हो भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की काजी रहे झख मारी॥ क ग्र पृष्ठ ८३ पद ५९

२ कबीर—लेखक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी। पृष्ठ १६९।

३ संतो भाई आई ज्ञान की आंधी।
भ्रम की टाटी सब उडाणी माया रहै न बांधी।
हित चित की है थूनी गिरानी मोह बलीडा टूटा।
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि कुबधि का भांडा फूटा। क ग्र, पृष्ठ ७३, पद १६

४ पांडे कौन कुमति तोहि लागी।
जीव बधत अरु धरम कहत हौ अधरम कहां है भाई।
आपन तौ मुनिजन है बैठे कासनि कहौ कसाई॥ क ग्र पृष्ठ ७८, पद ७९

जीवो की हिंसा करते थे।[1] उनके पदो म बार बार इस बात की पुनरावृत्ति हुई है कि हिंसा नही करना चाहिए चाहे वह हिंसा मन से हो कर्म से हो अथवा वाणी स हो। तत्कालीन समाज मे प्रचलित हिंसा को देखकर वे बहुत ही बेचन थ क्योकि मनुष्य अपने मनुष्यत्व को भूल कर पशुत्व का कम कर रहा था। ऐसे दुष्कर्मो के प्रति कबीर के मन मे बडा दुख था। वे कभी यह नही चाहते थ कि मनुष्य का मनुष्य के साथ ऐसा दुर्व्यवहार हो। सभी जीवो के प्रति उनम बडी आत्मीयता थी।

कबीर ने सार रूप म कहा है कि कनक और कामिनी की ज्वाला म सारा ससार भस्म हो गया।[2] बडे स बडे लोग इसके फेर में पडकर अपना ग तव्य भूल जाते हैं। यहा दोनो सबके सुख दुख के कारण भी हैं। इसलिए कबीर ने विचार कर दोनो का त्याग कर दिया।[3] वे कभी धन सचय पर जोर नही दिय। क्योकि कोइ धन की गठरी मरने पर लेकर नही जाता। धन सचय करने वाला सचयन म ही मर जाता है और खाने वाला उबर जाता है अर्थात वह सुख भोग कर आत्मतप्त हो लेता है।[4] इस प्रकार यह कनक कामिनी की माया सबको खा जाती है पर सन्तो पर उसका कुछ बस नही चलता। कबीर ने माया को चुनौती देते हुए कहा है कि माया उनका कुछ भी बिगाड नही सकती।[5] वे अपने मे दृढ प्रतिज्ञ थे कि व किसी भी सासारिक आकर्षण म नहा आसक्त हो सकते। कबीर ने सन्तो की आर्थिक आवश्यकता, सामाजिक एव सन्तत्वपरायणता बताते हुए कहा है कि स त को उतना ही धन चाहिए जितने से कि उनका जीवन निर्वाह हो जाय।[6] इस प्रकार कबीर के व्यक्तित्व

---

१ मुल्ला करि ल्यो न्याय खुदाई।
इहि विधि जीव का भरम न जाई।
कुकटी मार बकरी मार हम हक हक करि बोले।
सब जीव साई के प्यारे उबरहुगे किस बोले ॥ क ग्र पष्ठ ८४ पद ६२

२ माया की झल जग जरया कनक कामिनी लागि ॥ पष्ठ २७

३ कबीर त्यागा ज्ञान करि कनक कामिनी दोइ ॥ क ग्र पष्ठ ८७–४

४ कबीर सो धन सचिये जो आगे कूँ होइ।
सीस चढाय पोटली ले जात न देख्या कोइ ॥ क ग्र, पृष्ठ २६

५ खाइ मुये धन सचत सो उबरे जे खाइ ॥ क ग्र पष्ठ २६– १२

६ कबीर माया डाकिनी सब किन्हू को खाइ।
दाँत उपाडो डाकिनी जो सतौ ढिंग जाइ ॥ क ग्र पष्ठ २६––२१

७ सत न बाधै गाठडी पट समाना लेइ।
साइ सू सनमुख रहै जहा माग तहाँ देइ ॥ क ग्र पृष्ठ ४५–१०

में एक यह महानता देखने को मिलती है कि वे संसार के आर्थिक आकर्षणों से मुक्त थे।

संतों का दूसरा गुण यह है कि वे अपने स्वभाव के पक्के होते हैं। उन पर कुसंगति का प्रभाव नहीं पड़ता।[1] चारित्रिक पवित्रता के साथ-साथ उनका आत्म पौरुष इतना सबल होता है कि सांसारिक मोह माया का रंग उन पर नहीं चढ़ पाता। वास्तव में संतों का अपना एक अलग जीवन दर्शन होता है जो कि साधारण कोटि के लोगों में नहीं पाया जाता। उनकी कथनी और करनी में कोई भेद नहीं होता। उनका व्यवहार और जीवन अलग। भिन्न नहीं होता। कबीर का संत रूप उनका वास्तविक रूप है जो उनके स्वभाव एवं प्रतिभा से विकसित हुआ है।

कबीर साधु संगति प्रेमी थे। वे संतों से ही अपने मन की बात कहते थे। असंत या दुर्जनों के सामने वे मौन रहते थे।[2] उनकी यह धारणा थी कि अज्ञानी अधिक बकवास करता है और पूर्ण ज्ञानी अधिक नहीं बोलता।[3] वे मौन साधना वाले भक्त थे। वे पूजा नहीं करते थे पर एक निराकार को हृदय से नमस्कार करते थे। वे न तो व्रत रहते थे और न रोजा रखते। न मंदिर जाते थे न मस्जिद ही। वे हिन्दू-तुर्क किसी के नहीं थे। वे देवी-देवता किसी की उपासना नहीं करते थे।[4] उनका विश्वास था कि बिना आंतरिक पवित्रता से हरि नहीं मिल सकता। यही आंतरिक पवित्रता और संत-जीवन के साथ सद्व्यवहार कबीर की भक्ति का मूल रूप है। सारा संसार बिना इस भक्ति के अनेक कष्ट झेलता है और अंत में इसी सांसारिक भव सागर में डूब मरता है।[5] भक्ति के बिना मानव जीवन कोई जीवन नहीं है। भक्ति सबके लिए अनिवार्य है। ज्ञानी अज्ञानी धनी निर्धन राजा रंक सभी को भक्ति करनी चाहिए। भक्ति के क्षेत्र में सभी समान हैं। सभी अभेद हैं और सभी एक हैं। भक्ति जीवन का साध्य है। भक्ति या नाम की साधना जीवन की

---

१ संत न छाडइ संतई कोटिक मिलें असंत ॥ क ग्र पृष्ठ ४५-१०

२ संत मिलै कुछ कहिये कहिये। मिलैं असंत मुष्टि करि रहिये ॥ क ग्र पृष्ठ ८५

३ कहैं कबीर आधाघट डोले। भरया होइ तौ मुषा न बोले ॥
क ग्र, पृष्ठ ८५ पद ६७

४ *एक निरंजन अलह मेरा ॥ हिंदू तुरक दुहूँ नहिं मेरा ॥*
राखू व्रत न महरम जाना। तिसही सुमिरूं जो रहै निदाना ॥
पूजा करूं न निमाज गुजारूं ॥ एक निराकार हिरदै नमस्कारूं ॥
ना हज जाऊं ना तीरथ पूजा ॥ एक पिछण्या तौ का दूजा ॥
क ग्र पृष्ठ १५२ पद ३३८

५ भगति बिन भौ जलि डूबत है रे ॥ क ग्र पृष्ठ १४४-४५ पद ३१०

यथार्थ साधना है । इस ससार मे आकर बिना भक्ति किए जाना खाली हाथों जाना है । भक्ति का महत्त्व अनाडी नही समझ सकता । ज्ञान भक्ति का सहायक है । कबीर की भाव भगति में ज्ञान और भक्ति दोनो का समन्वय हुआ है । कबीर कहते हैं कि भाव भक्ति और विश्वास के बिना सासारिक कष्ट एव भ्रम दूर नही होता । हरि भक्ति के बिना मुक्ति भी असम्भव है ।[1] कबीर तो यहाँ तक कहते हैं कि साधु सगति ही बैकुठ या मोक्ष है ।[2]

इस प्रकार उपरोक्त बातो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कबीर के व्यक्तित्व का मूल रूप सन्त का है । उसी सन्त रूप से उनके व्यक्तित्व का और रूप विकसित हुआ है ।

२ कबीर का विचारक रूप

विचारक का अर्थ होता है (वि+चर=चलना) वह जो किसी विषय पर अच्छी तरह से विचार करता हो ।[3] इस दृष्टि से कबीर एक ऐसे विचारक हैं जिन्होने जीवन और जगत की कई समस्याओ पर विचार किया है । उन्होने मनुष्य मनुष्य के कर्म और अधिकार, मनुष्य के धर्म और व्यवहार मनुष्य की सृष्टि और मनुष्य का विनाश तथा ससार की असारता आदि पर बडी सूक्ष्मता से विचार किया है ।[4] कबीर तात्त्विक दृष्टि से सब पर विचार करते थे । उन्होंने अपने दैनिक जीवन मे जो कुछ देखा तथा जो कुछ अनुभव किया था सब पर पक्षपात रहित भावना से विचार किया है ।

मानव जीवन पर विचार

कबीर अच्छी तरह जानते थे कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो अपनी बुद्धि के कारण सभी जीवो मे श्रेष्ठ है ।[5] फिर भी कबीर कालीन समाज मे मनुष्य

१ भाव भगति विसवास बिनु कटै न सम मूल ।
कहैं कबीर हरि भगति बिनु मुकति नही रे मूल ॥ क ग्र, पृष्ठ १८६

२ चलन चलन सब को कहत है ।
ना जानो वकुठ कहा है ।
कहैं कबीर यहु कहिये काहि । साध सगति वकुठहि आहि ॥
क ग्र, पृष्ठ ७५, पद २४

३ मानक हिन्दी कोष, भाग ५, पृष्ठ ५२

४ पानी केरा बुदबुदा इसि मानव की जात ।
एक दिना छिपि जाहि ये तारे ज्यू परभाति ॥ क ग्र पृष्ठ ५७

५ मानिषा जनम दुर्लभ है देह न बारम्बार ।
तरवर थें फल झरि पडया बहुरि न लागै डार ॥
बार-बार नहिं पाइय मनिषा जनम की मौज ॥ क ग्र पृष्ठ ११

की दशा अत्यन्त सोचनीय थी। छल कपट तथा अनेक दुर्व्यवहारों से वह अपना आदर्श खो चुका था।[१] उनके समाज में कई प्रकार की समस्यायें थी जिनमें हरेक व्यक्ति उलझा हुआ था। राजनीति, धर्म साहित्य आदि के पारस्परिक संघर्ष से समाज में बड़ी हलचल थी। कबीर ने देखा कि समाज में मनुष्य एक दूसरे से अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा है जिससे उसका संगठन टूट गया है। वह अपने को भूल गया है इस लिये मनुष्य मनुष्य को पहचान नहीं पा रहा है। धनी निर्धन को आदर नहीं देता।[२] ज्ञानी भूखों मरता है। अज्ञानियों का सत्कार होता है।[३] माया के अधीन जीव को लोग राजा कहते है।[४] धन संग्रही स्वामी बनते हैं। गरीबों को पैसा देकर लोग ब्याज लेते है।[५] समाज में इस तरह की अनेक असमानताओं पर कबीर ने विचार किया और पाया कि ये सारे अमानवीय दुर्व्यवहार मनुष्य ने अपनी भूल से बनाये हैं। अपने को न पहचानने के कारण ही मनुष्य आत्मघाती हो गया है। मनुष्य अपनी गल्तियों से अपने पर ही चोट करता है और दूसरों पर दोषारोपण करता है। इसीलिये कबीर ने इस बात को बार बार कहा है कि अपनी आत्मा को चीन्हो अपने को पहचानो[६] तथा बुराइयों को अपने आप में खोजो और उससे मुक्त होने का प्रयत्न करो। करता में बहुत गुण हैं अवगुण कोई नहीं है। यदि अवगुण देखा जाय तो अपने में ही मिलता है।[७] वास्तव में मध्य कालीन समाज अपनी कमजोरियों के कारण ही विविध संकटों में पड़ा था। इसलिए कबीर उन बुराइयों पर चोट करते है न कि किसी जाति या सम्प्रदाय पर। सामाजिक लोकाचार पर विचार करते हुये उन्होंने कहा है कि लोग मरने के बाद पितृ स्नेह प्रदर्शित करते हैं। जीते जी पिता को डंडा से मारते हैं और मरने पर गंगाजल से श्रद्धांजलि देते है। जीवित अवस्था में पिता को अन्न नहीं खिलाते पर मरने के बाद पिंड भराते

---

१ कबीर यहि संसार में घणी मानिष मतिहीन।
राम नाम जाणे नहीं आये टापा दीन॥ — क० ग्र० पृ० १८

२ निर्धन आदर कोई न देई। — क० ग्र० पृ० २३० रमणी

३ लालच लोभी मसखरा तिनकूँ आदर होई। — क० ग्र०, पृ० २८

४ जीवा को राजा कहे माया के आधीन॥ — क० पृ० पृ० २६

५ कलि का स्वामी लोभिया मनसा धरी बधाइ।
दैंहि पईसा ब्याज को लेखा करता जाइ॥ — क० ग्र० पृ० २६

६ कहै कबीर जे आप विचारै मिटि गया आवन जाना। — क० ग्र० पृ० ७०

७ करता केरे बहुत गुण अवगुण कोई नाहिं।
जे दिल खोजौं आपणा तौ सब औगुण मुझमाहिं। — क० ग्र०, पृ० ६७

हैं। जीवित रहने पर पिता को अपराधी कहते है। और मरने के बाद श्राद्ध पक्ष म कौवा को खाना खिलाते हैं। यह कितने आश्चय की बात है कि कौवा को खिलाया हुआ खाना मतक पिता कस पा सकता है।[1] दूसरी जगह पर कबीर ने मूर्ति पूजा पर विचार करते हुए कहा है कि मनुष्य कितना नादान है कितना अज्ञानी है जो कि मनुष्य की सेवा न करके पाषाण निर्मित मूर्ति की उपासना करता है। जीवित पेड़ स पत्ते और फूल तोड़कर जड़ पत्थर की मूर्ति पर चढ़ाता है। मूर्ति बनाने वाला स्वय मनुष्य है जो मूर्ति की छाती पर पाव दे कर उसे गढ़ता है। यदि यह मानव कृत पाषाण मूर्ति सब कुछ है या ईश्वर का रूप है तो गढने वाले को क्यो नही खा जाती ? लड्डू लपसी आदि जो मूर्ति पर लोग चढ़ाते हैं सब पूजा करने वाले पुजारी हा खाते हैं। मूर्ति ता जहाँ का तहाँ ही रह जाती है।[2] यह सभी जानते हैं कि मूर्ति पत्थर की है फिर भी लोग उस देवी देवता म लकर उपासना करत हैं पर मनुष्य, जो चेतन है सुख दुख म सहायक बन सकता है उससे रूठते हैं[3] उससे घृणा ईर्ष्या द्वेषादि करत हैं। इ हा दु र्व्यवहारो के कारण समाज मे इतनी असमानतायें हैं।

---

१ ताथे कहिये लोकाचार । बद कथेबक थ यवहार ।
जारिवारि करि आवें देहा । मूवा पीछें प्रीति सनहा ॥
जीवित पित्रहिं मारहि डडा ॥ मूवा पित्र ले घाले गगा ॥
जीविन पित्र कूं अन न ख्वावें । मूवा पीछे प्यड भराव ॥
जीवित पित्र कूं बालें अपराध । मूवा पीछे दहि सराध ॥
कहि कबीर मोहि अचरज आवै । कउआ खाइ पित्र क्यूं पाव ॥
क० ग्र०, पष्ठ १५६, पद ३५६

२ भूली मालिनी ॥
भूली मालिनी पाती ताड पाती पाती जाव ॥
जा मूरति कौं पाती तोडै सो मूरति नर जीव ।
टाचणहार टाचिया दै छाती ऊपरि पाव ।
जे तू मूरति सकल है तो घडणहार कौं खाव ।
लाडू लावण लापसी पूजा चढ़ अपार ।
पूजि पुजारा ले गया दे मूरति क मुहि छार ॥
क० ग्र०, पष्ठ ११६ पद १६८

३ पडोसी सू रूठणा पल पल सुख की हाणि ।
पंडित भये सरावगी पानी पाव छाणि ॥
क० ग्र० पृष्ठ २८

कबीर कालीन समाज में धर्म के नाम पर अनेक पाखंड फैला हुआ था। इस धर्माडम्बर की आड़ में पीर, मुल्ला और काजी का व्यवसाय चल रहा था। ऐसे समय में कबीर ने धर्म के मूल तत्व को समझा और कहा कि समाज में प्रचलित ये सारे पाखंड और ये भ्रम हैं असार हैं जिसके कारण वह इतना अनुचित कार्य कर रहा है।[1] इसीलिए कबीर ने पंडित मुल्ला के लिखे हुए ज्ञान को बिलकुल नहीं स्वीकार किया।[2]

कबीरकालीन समाज में धर्म के नाम पर हिन्दू मुसलमान दोनों में बड़ा झगड़ा चल रहा था। जिसके कारण समाज में बड़ी अशान्ति थी। कबीर ने इस पर विचार किया और दोनों को समझाया कि जाति या धर्म के नाम पर कलह करना व्यर्थ है।[3] कबीर की राह हिन्दू मुसलमान दोनों से न्यारी थी। पर उस राह पर दोनों चल सकते थे और उसमें दोनों का हित हो सकता था। कबीर स्वतन्त्र विचारक थे। इसी के फलस्वरूप उन्होंने जो कुछ कहा है वह प्रायः सभी धर्मों में मिलता है। वे किसी धर्म विशेष को नहीं मानते पर सभी धर्म के तत्व उनके विचारों में पाये जाते हैं। यही उनका व्यापक दृष्टिकोण मानवधर्म का सन्देश देता है। वे किसी धर्म का नेता होकर समाज को बिगाड़ना नहीं चाहते थे बल्कि विरोधी वर्गों को समन्वित करना चाहते थे। उनके अद्वैतवाद का यही एक उद्देश्य था। उनके निराकार ब्रह्म का यही एक सार्वभौम उपासना थी जहाँ सब एकता में जुड़ सकते थे। हिन्दुओं के राम श्याम अवतारी थे उनका रूप साँवला था और मुसलमानों के खुदा पैगम्बर रूपधारी थे। दोनों धर्मों के ईश्वर एक दूसरे के विरोधी गुण वाले थे। इसीलिए कबीर ने लोगों को निराकार ब्रह्म का भजन

---

१ ये पाखंड जीव के भरमा ॥ मानि अमानि जीव के करमा ॥
क० ग्र० पृ० १८६ रमणी

२ पंडित मुल्ला जो लिखी दीया ॥ छाडि चले हम कछु नहिं लीया ॥
क० ग्र०, (परिशिष्ट) पृ० २०६

३ भूले भरमि परै जिन कोई ॥ हिंदू तुरक झूठ कुल दोई ॥
क० ग्र० पृ० १८३

ना हिंदू ना मुसलमान ॥ जिसका दुरस रहे ईमान ॥
क० ग्र०, पृ० १५५

कहै कबीर चेत रे भोंदू । बोलन हारा तुरक न हिंदू ॥
क० ग्र०, पृ० ८२/५६

४ कहै कबीर मैं हरि गुन गाऊँ ॥ हिंदू तुरक दोउ समझाऊँ ॥
क० ग्र०, पृ० १३०/२५६

सासारिकता म प्रवत्तमन जब अन्तरमुखी हो जाता है तो आगम निगम झठ प्रतीत होने लगन हैं।[१] इस प्रकार मन की स्थिति बहुत व्यापक है। कबीर का व्यक्तित्व इसलिए और सबल है कि उनम मन पर नियत्रण आचरण की पवित्रता आदि गुण थे।

ईश्वर के प्रति विचार

कबीर कालीन समाज मे ईश्वर के प्रति अनेक धारणाए प्रचलित थी। प्राय ईश्वर के प्रति साकार एव निराकार दो मुख्य भावनायें थी। हिन्दुओ मे सगुणोपासना तथा मुसलमानो म एकेश्वरवाद का अधिक प्रचलन था। कबीर न समाज म प्रचलित सभी धारणाओ पर विचार किया और लोगो को समझाया कि ईश्वर के नाम पर य सब बाहरी व्यासक्त व्यर्थ है। ईश्वर एक है। उसे बाहर की अपेक्षा अपने म ही खोजना अधिक उपयुक्त है। क्योकि ससार की सारी प्रतीति अपने म ही होती है।[२] जब मनुष्य स्वय नही रहता तो दूसरे का आभास उसमे कैस होगा ? इसलिए ईश्वर की सत्ता अपन म ही है।[३] आत्मा म ही परमात्मा है। कबीर आत्मा और परमात्मा को एक ही मानते हैं। व खोजत खोजत इस प्रकार ब्रह्म म लीन हो गये थे। जस कि जल की एक बूद समुद्र म मिल जाती है। फिर पूरे समुद्र का अस्तित्व उस बूद म समा जाता है।[४] अतएव जब मनुष्य अपन आपको पहचान लेता है तो उसे सब कुछ समान दिखाई देने लगता है।[५] सभी जीवो के प्रति वह आत्मीयता रखने लगता है। उसके हृदय म पूरी सृष्टि के प्रति करुणा के भाव हो जाते हैं। उस अभेद दृष्टि मिल जाती है जिसस वह सबको समान रूप स देखन लगता है।

ऐसा कहा जाता है कि हरि भजन स मनुष्य निर्वाण या मोक्ष पाता है। कबीर न हरि भजन को आत्मा का भजन माना है। आत्मा का भजन सत्यानुभूति स

१ कहु कबीर मन मनहि समाना । आगम निगम झूठ करि जाना ॥
क० ग्र० प० ७८ प० १७

२ हम सब माहि सकल हम माहा । हम ते और कोउ दूसर नाहा ॥
क० ग्र० पृ० १५०

३ कहु कबीर म मेरी खोई । तबहा राम अवर नहि कोई ॥
क० ग्र० प० ८६

४ हेरत हेरत ह सखी रह्या कबीर हिराइ ॥
बूद समानी समद म सो कत हेरी जाइ ॥
हेरत हेरत ह सखी रह्या कबीर हिराइ ।
समद समाना बूद म सो कत हेरया जाइ ॥ क० ग्र० पृ० १३

५ आपा पर सब चीन्हि हय दास सरब समान ॥ क० ग्र०, पृ० ७०

होता है। सत्य के द्वारा ही मनुष्य उस निर्वाण पद को पा सकता है।[1] जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में ईश्वर निवास करता है। कबीर कालीन समाज में सत्य का हनन हो रहा था और झूठ का प्रचार हो रहा था। झूठ को लोग सत्य समझ रहे थे और उसी असत्य में सत्य तिरोहित हो गया था।[3] कबीर को सत्य की वास्तविक अनुभूति हुई थी। उसी सत्य के बल पर वे बड़े बड़े पण्डितों को पछाड़ देते थे, काजी मुल्ला को फटकार देते थे और राजा-महाराजा को धिक्कार देते थे। सत्य के बल पर उन्होंने समाज में अपना धाक जमा ली थी। सत्य की पूजा होती है। जो सत्य अपने आप में प्रकट होता है उसी सत्य की दुनिया पूजा भी करती है।[4] इसी शरीर में उपास्य और उपासक दोनों हैं। उपासक के रहने पर उपास्य की स्थिति है। अतएव उपासक या आत्मा की स्थिति मुख्य है। कबीर आत्मा के बाहर ईश्वर की स्थिति नहीं मानते।[5] क्योंकि जो ईश्वर बाहर नहीं देखा जा सकता उस पर कैसे विश्वास किया जा सकता है? कबीर ने स्वयं कहा है कि मैं राम को क्या जानूं जिसको कि कभी अपनी आँखों से देखा ही नहीं।[6]

जीव पर विचार

कबीर सभी जीवों में चेतना की मौलिक शक्ति एक मानते हैं। इस चेतना की स्थिति जल के समान है जो जल में रहकर भी वही है बाहर भी वही है। यह जीव जल प्रसूत कमल के समान है जिसका प्राण जल ही है।[7] जैसे जल निर्विकार है वैसे आत्मा या जीव भी निर्विकार है। विकार तो यहाँ आकर स्वार्थी भावों के कारण हो जाते हैं। उस पर अज्ञान के आवरण चढ़ जाते हैं। कबीर कालीन समाज अज्ञान के

---

१ कहैं कबीर बिचारि करि जो है पद निरबान ॥
सत ले मन में राखिये जहाँ न दूजी आन ॥ क० ग्र० पृ० १८५

२ साच मारि झूठ पढ़ि काजी करै अकाज ॥ क० ग्र० पृ० ३३

३ झूठनि झूठ साँच करि जाना ॥ झूठनि में सब साँच लुकाना ॥
क० ग्र० पृ० १७४

४ आपे पूज आप पुजारा ॥ क० ग्र०, पृ० १८५

५ देवल माहै देहुरी तिल जेहै बिस्तार ।
माहै पाती माहै जल माहै पूजन हार ॥ क० ग्र०, पृ० १२

६ मारी कहौं तो बहु डरूँ हलका कहूँ तो झूठ ।
मैं का जानूं राम कूं नैनूं कबहूं न दीठ ॥ क० ग्र०, पृ० १३

७ काहे रे नलिनी तूं कुम्हिलानी ॥
जल में उतपति जल में बास ॥ जल में नलिनी तोर निवास ॥
क० ग्र०, पृ० ८४ पद ६८

अंधकार से आवृत था। इसलिए वे सोये हुये लोगों को जगाते हैं और उनमे धर्म और ज्ञान की चेतना भरना चाहते है।[1] अज्ञान के कारण सभी आत्मायें अतृप्त रहती हैं। यहाँ जीव के लिए कोई सुख साधन नही। उसके सामने अनेक प्रपञ्च एवं बाधायें हैं जिससे जीव रूपी चातक प्यासा का प्यासा ही चला जाता है। कबीर कहते हैं ऐसे संसार पर वज्र पड़े जहाँ जीव प्यासा आता है और प्यासा चला भी जाता है।[2]

माया पर विचार

वैसे तो माया शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों मे वेद, उपनिषद गीता तथा सांख्य दर्शन आदि में हुआ है।[3] उपनिषद माया को प्रकृति बताता है। गीता के अनुसार माया अज्ञान है। आचार्य शंकर के अनुसार माया भ्रम है जो सत्य पर परदा डाल देती है। पर कबीर ने माया का अर्थ सांसारिक प्रलोभन से लिया है जिसके कारण मनुष्य विविध दुख सहता है एक दूसरे को धोखा देता है एक दूसरे पर अत्याचार करता है एक दूसरे का शोषण करता है तथा स्वयं उसी के बन्धन में पड़ कर नष्ट हो जाता है। ईश्वर एक है। आत्मा ही परमात्मा है। मनुष्य की एकता अद्वैतवाद है। माया के कारण मनुष्य परमात्मा को नही पहचान पाता। अर्थात प्रलोभन के कारण मनुष्य एक दूसरे से छूट गया है। एक दूसरे को भेद की दृष्टि से देखता है। जिसमे मानवता के व्यापक रूप पर माया (प्रलोभन) का परदा पड़ गया है। यही ब्रह्म और जीव के बीच का व्यवधान है यही भ्रम है यही रज्जु मे सर्प की सदभावना है। यही सत्य में असत्य की प्रतीति है। कबीर कालीन सारा समाज ही इसी प्रकार की माया से आसक्त था। माया के ऊपर माया के महल बने थे। लोभ पर लोभ बढ़ता जा रहे थे यद्यपि इन लोभियों के साथ कुछ जाने वाला नही था। फिर भी लोग इतने लोभी थे। जैसे गीले गुड़ के रस स्वादन में गड़ी हुई मक्खी अपने अस्तित्व को खो देती है उसी प्रकार सारा समाज मीठी माया में आसक्त था। कबीर जैसे विचारक मक्खी रूपी मानव समाज को ताली पीटकर उस नश्वरता से

---

१ जागिरे जीव जागिरे॥ क० ग्र० पृ० १५५ पद ३१०
जागहु रे नर सोवहु कहा।
जन बटपारे रूध पहा॥ क० ग्र० पृ० १५५, पद ३५१

२ ककर कूई पताल पनिया सून बूंद बिकाई रे।
बजरा पर नहि मथुरा नगरी चातक पियासा जाई रे॥
क० ग्र०, पृ० ८७, पद ७१

३ कबीर दर्शन, रामजीलाल सहायक पृ० १८६–१८८

४ माया ऊपरि माया माडी। साथ न चलै पोतरी हाडी।
क० ग्र०, पृ० ९८

बचाना चाहते थे पर कोई सुनता नहीं था ।[१] कोई कनक के आकर्षण में खिंचा हुआ था तो कोई कामिनी के सौन्दर्य पर विमुग्ध था । मानव जीवन के केन्द्र में कनक और कामिनी का आकर्षण आग के समान था और उनके जीवन का सारा व्यवहार उस आग पर लपटी हुई रुई के समान था । इसलिए सारा संसार उस अग्नि से जलता जा रहा था ।[२] कबीर ने इस पर पूरा विचार किया था कि संसार के सारे प्रलोभन एवं सारे स्वार्थ का कारण कनक और कामिनी है इसलिए उन्होंने दोनों में घृणा किया और दोनों का त्याग भी किया है ।[३] माया का अधिकतर आकर्षण कनक या धन सम्पत्ति पर था जिसके कारण कबीर कालीन समाज में संघर्ष मचा हुआ था । कहीं कोई राजा बड़ी सेना का संगठन करके दूसरे राजा का गढ़ तोड़ता था[४] और उस पर अधिकार करता था तो कहीं कोई अत्याचार और नरसंहार । साधारण लोगों में भी इसी आर्थिक प्रलोभन के कारण चोरी डकैती हो रही थी । यह संसार बाजार के समान था आर्थिक प्रलोभन माया के समान था ।[५] इस प्रलोभन के जाल में सारा समाज फँसा हुआ था पर कबीर उस माया जाल को काटकर आगे निकल गये ।[६] इस लोभ की मिठाई की लालच में वे अपने गन्तव्य को न भूल सके । वे इस लोभ रूपी मिठाई का त्याग करके अपने प्यारे पिता से मिल गये ।[७] चिन्तन के बल पर

---

१ मायी गुड़ में गड़ि रही पंख रही लपटाइ ।
ताली पीटै सिरि धुनै मीठे बोइ माइ ॥ क० ग्र०, पृ० ३७

२ माया का झल जग जरया कनक कामिनी लागि ।
कहुधौं कहि विधि राखिए रुई पलटी आगि ॥ क० ग्र०, पृ० २७ पद ३२

३ कबीर त्यागा ग्यान करि कनक कामिनी दोष ॥
क० ग्र०, पृ० ८७, दोहा ८

४ जोरत कटक जु घरत सब गढ़ करतब झली झेला ।
जोरि कटक गढ़ तोरि पातिसाह खलि चल्या एक ठेला ॥
क० ग्र०, पृ० १४७, पद ३११

५ जग हटवाड़ा स्वाद ठग माया बेसा लाइ ॥
क० ग्र० माया को अंग पृ० २५

६ कबीर माया पापिनी फंध ले बैठी हाटि ।
सब जग तो फंधे पड़या गया कबीरा काटि ॥ क० ग्र० पृ० २५

७ पूत पियारो पिता कौं गौहनि लागा धाइ ।
लोभ मिठाई हाथि दे आपन गया भुलाइ ॥
डारी खांड पटकि करि अंतरि रोस उपाइ ।
रोवत रोवत मिलि गया पिता पियारे जाइ ॥ क० ग्र०, पृ० ८

अमर हो गये। उनका विश्वास था कि काम, क्रोध और तृष्णा का त्याग ही भगवान का मिलन है।[1] पर सारा संसार तो इसी में संलग्न था। इसी स्वार्थमय 'मोर तोर' की जवडी (रस्सी) से कसकर बँधा हुआ था।[2] जिससे सामाजिक एकता खो गयी थी और समाज का प्रगतिशील मार्ग अवरुद्ध हो गया था।

माया का दूसरा रूप कामिनी के सौन्दर्य में था जिस पर सारा समाज मुग्ध था। राजा प्रजा सभी कामिनी के सौन्दर्याकर्षण पर व्यामोहित थे।[3] सम्पत्ति के पीछे सभी भागते थे स्त्री के शारीरिक सौन्दर्य में सुख पाते थे पर साधु संगति में कभी नहीं आते थे।[4] इसीलिए कबीर ने जोर देकर नारी निन्दा की है।[5] वास्तव में तत्कालीन समाज में भ्रष्टाचार फैलाने वाली स्त्रियाँ ही थीं। जिसके कारण सारा का सारा समाज अवनति के गर्त में पड़ा हुआ था। स्त्रियों से समाज में सर्वत्र विलासिता थी। इसी विलासिता के कारण सब भक्ति और मुक्ति से दूर थे। वास्तव में कबीर नारी विरोधी इसलिए नहीं थे कि वे नारी थी बल्कि उस समाज में स्त्रियों का चरित्र गिरा हुआ था और काम वासना में स्त्री पुरुष दोनों मदान्ध थे।[6] उस समय ज्ञानी भी इन्द्रियों के वश में पड़ कर निरंकुश हो गये थे। कबीर ने कहा है कि ऐसे ज्ञानियों से सांसारिक लोग अच्छे हैं जो कि गलत काम करने से मन में डरते हैं। कबीर ने काम का नहीं बल्कि काम वासना की अनिवार्यता का विरोध किया है। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि काम राम का भी मिला सकता है यदि कोई उसे सुरक्षित रखना

१ काम क्रोध तिष्णा तजै ताहि मिलै भगवान ॥ क० ग्र० पृ० ८
२ मोर तोर की जवडी बलि बंध्या संसार ॥ क० ग्र० प० २९
३ विष विकार बहुत रुचि मानी, मायामोह चित दीन्हा ॥
क० ग्र०, पृ० १२७
४ तथा का यत्न दगि सुख पावै साध की संगति कबहूँ न आवै ॥
क० ग्र० पृ० १०६
५ नारी कुण्ड नरक का बिरला थमै बाग ॥ क० ग्र० पृ० ३१
६ नर नारी सब नरक है जब लग देह सकाम ॥
कहै कबीर ते राम के जे सुमिरै निहकाम ॥
क० ग्र० पृ० ३१ कामी नर को अंग
७ नानी तो नीदर भया मान नाहीं सर।
इन्द्री केरि यामि पडया भूव रिग निमर ॥
नानी मन गवाइया आपण मय करता।
ताथै ममारी भला मन मैं रहै डरता ॥
क० ग्र०, पृ० ३२ कामी नर को अंग

जान ले । इस विषय में कबीर विचारा अधिक क्या कह सकता है इसके साक्षी तो सुखदेव (शुकदेव) ही है।[1] इसीलिए कबीर ने राम की शरण होकर झूठी माया का त्याग कर दिया था।[2] क्योंकि यही सब दुर्गुण भक्ति या भजन में बाधक हैं। कबीर के व्यक्तित्व में यही चरित्र की प्रधानता तथा सम्पत्ति के प्रति अधिक न लगाव वाली भावना ही प्रमुख है जिसके कारण वे समाज को इतना बलपूर्वक प्रभावित कर सके हैं।

कबीर का सृष्टि एवं संसार के प्रति विचार

कबीर अनुभव एवं विचार के क्षेत्र में बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने सृष्टि के मूल रहस्य को समझने का प्रयास किया था। उनमें बड़ी प्रश्नाकुलता थी कि यह सृष्टि कैसे बनी? सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रह नक्षत्र किसके आधार पर आसमान में लटके हुए हैं? पृथ्वी, पहाड़, नदी, पेड़ पौधे तथा अन्य जीवों का मूल निर्माता कौन है? वे अपने ही लोगों से सरल भाव से पूछते हैं कि कहो भाई! यह अम्बर किससे लगा हुआ है? इसे कोई ज्ञानी तथा सौभाग्यशाली पुरुष ही जान सकता है। आसमान में कितने तारे दिखायी पड़ते हैं? यह किस चित्रकार की चित्रकला है? दृश्य जगत में तुम जो कुछ देखते हो वही वास्तविक नहीं है बल्कि उसके पीछे भी कोई रहस्यमयी सत्ता है। जिस तक व्यक्ति पहुंच नहीं सकता जिसे कोई देख नहीं सकता। वह पद उसी में है। उस पद को इस साढ़े तीन हाथ की शरीर में जो देखने का प्रयास करता है उसी से मेरा मन मानता है।[3] वही ज्ञानी है तथा वही विचारक है। फिर वे कहते हैं—हे राम! तुम्हारी अविगत गति को मैं कैसे जानूँ?

---

१ काम मिलाय राम कूं जे कोइ जाने राषि।
कबीर बिचारा क्या करै जाकी सुखदेव बोलै साषि॥
क० ग्र०, पृष्ठ ८०

२ दास कबीर राम की सरण छाडी झूठी माया॥
गुर प्रसाद साध की संगति तहाँ परम पद पाया॥
क० ग्र०, पृष्ठ १३४

३ कहौ भइया अम्बर कासूं लागा।
कोई जाणैगा जाननहार सभागा।
अम्बर दीसै केता तारा। कौन चतुर ऐसा चितरन हारा।
जे तुम देखौ सो यहु नाहीं। यहु पद अगम अगोचर माहीं।
तीनि हाथ एक अरधाई। ऐसा अम्बर चीन्हौ रे भाई।
कहै कबीर जे अम्बर जानै, ताही सूं मेरा मन मानै।
क० ग्र० पृष्ठ १०१, पद १४१

अमर हो गये। उनका विश्वास था कि काम, क्रोध और तृष्णा का त्याग ही भगवान का मिलन है।[1] पर सारा संसार तो इसी में मग्न था। इसी स्वार्थमय 'मोर तोर' की जेवडी (रस्सी) से कसकर बँधा हुआ था।[2] जिसमे सामाजिक एकता खो गयी थी और समाज का प्रगतिशील भाग अवरुद्ध हो गया था।

माया का दूसरा रूप कामिनी के सौन्दर्य मे था जिस पर सारा समाज मुग्ध था। राजा प्रजा सभी कामिनी के सौन्दर्याकर्षण पर व्यामोहित थे।[3] सम्पत्ति के पीछे सभी भागते थे स्त्री के शारीरिक सौन्दर्य मे सुख पाते थे पर साधु संगति में कभी नही आते थे।[4] इसीलिए कबीर ने जोर देकर नारी निन्दा की है।[5] वास्तव मे तत्कालीन समाज मे भ्रष्टाचार फैलाने वाली स्त्रियाँ ही थी। जिसके कारण सारा का सारा समाज अवनति के गर्त मे पड़ा हुआ था। स्त्रियो से समाज में सर्वत्र विलासिता थी। इसी विलासिता के कारण सब भक्ति और मुक्ति से दूर थे। वास्तव मे कबीर नारी विरोधी इसलिए नहीं थे कि वे नारी की बल्कि उस समाज मे स्त्रियो का चरित्र गिरा हुआ था और काम वासना मे स्त्री पुरुष दोनो मदान्ध थे।[6] उस समय ज्ञानी भी इन्द्रियो के वश मे पड कर निडर हो गये थे। कबीर ने कहा है कि ऐसे ज्ञानियो से सासारिक लोग अच्छे है जो कि गलत काम करने से मन मे डरते हैं। कबीर ने काम का नही बल्कि काम वासना की अतिशयता का विरोध किया है। उन्होने तो यहाँ तक कहा है कि काम राम को भी मिला सकता है यदि कोई उसे सुरक्षित रखना

---

१ काम क्रोध त्रिष्णा तजै ताहि मिलै भगवान ॥ क० ग्र० पृ० ८

२ मोर तोर की जेवडी, बलि बध्या ससार ॥ क० ग्र०, प० २९

३ विष विकार बहुत रुचि मानी मायामोह चित दीन्हा ॥
क० ग्र०, पृ० १२७

४ तथा का वदन देखि सुख पावै साध की संगति कबहूँ न आवै ॥
क० ग्र० प० १२६

५ नारी कुण्ड नरक का बिरला थमै बाग ॥ क० ग्र० प० ३१

६ नर नारी सब नरक है जब लग देह सकाम ॥
कहै कबीर ते राम के जे सुमिरै निहकाम ॥
क० ग्र०, प० ३१ कामी नर को अंग

७ ग्यानी तो नीडर भया माने नाही संक ।
इन्द्री केरि बासि पडया भूचै विष निसंक ॥
ग्यानी मूल गँवाइया आपण भये करता ।
ताथै ससारी भला मन मैं रहै डरता ॥
क० ग्र०, पृ० ३२ कामी नर को अंग

जान ल । इस विषय मे कबीर विचारा अधिक क्या कह सकता है, इसके साक्षी तो सुखदव (शुकदेव) ही है।[1] इसीलिए कबीर ने राम की शरण होकर झूठी माया का त्याग कर दिया था।[2] क्योकि यह सब दुगुण भक्ति या भजन मे बाधक हैं। कबीर के व्यक्तित्व म यही चरित्र की प्रधानता तथा सम्पत्ति क प्रति अविरक्त लगाव वाली भावना ही प्रमुख है जिसके कारण व समाज को इतने बलपूर्वक प्रभावित कर सके हैं।

कबीर का सष्टि एव ससार के प्रति विचार

कबीर अनुभव एव विचार के क्षेत्र म बहुमुखी प्रतिभा क व्यक्ति थ। उन्होने सष्टि के मूल रहस्य को समझने का प्रयास किया था। उनम बडी प्रश्नाकुलता थी कि यह सष्टि कसे बनी ? सूय, चद्र तथा अय ग्रह नक्षत्र किसके आधार पर आसमान मे लटक हुए हैं ? पथ्वी, पहाड, नदी, पड पौधे तथा अय जावो का मूल निर्माता कौन है ? व अपने ही लोगो स सरल भाव मे पूछते है कि कहो भाइ ! यह अम्बर किसस लगा हुआ है ? इस कोई ज्ञानी तथा सौभाग्यशाली पुरुष ही जान सकता है। आसमान म कितने तार दिखायी पडते हैं ? यह किस चित्रकार की चित्रकला है ? दृश्य जगत म तुम जो कुछ देखते हो वही वास्तविक नही है बल्कि उसके पीछे भी कोई रहस्यमयी सत्ता है। जिस तक व्यक्ति पहुच नही सकता जिसे कोई देख नही सकता। वह पद उमी म है। उस पद को इस साढे तीन हाथ की शरीर मे जो देखने का प्रयास करता है उसी स मेरा मन मानता है।[3] वही ज्ञानी है तथा वही विचारक है। फिर वे कहते हैं—ह राम ! तुम्हारी अविगत गति को मैं कसे जानूँ ?

---

१ काम मिलावै राम कू जे कोइ जाणै राखि।
कबीर बिचारा क्या कहै जाकी सुखदेव बोलै साखि ॥

क० ग्र०, पष्ठ ६०

२ दास कबीर राम की सरण छाडी झूठी माया ॥
गुर प्रसाद साध की सगति तहाँ परम पद पाया ॥

क० ग्र० पृष्ठ १३८

३ कहौ भइया अम्बर कासू लागा।
कोई जाणै गा जाननहार सभागा।
अम्बर दीसै केता तारा। कौन चतुर ऐसा चितरन हारा।
जे तुम देखौ सो यहु नाही। यहु पद अगम अगोचर माही।
तीनि हाथ एक अरधाइ। ऐसा अम्बरची ही रे भाई।
कहै कबीर जे अम्बर जानै ताही सूँ मेरा मन मानै।

क० ग्र० पष्ठ १०१, पद १४१

किस रूप म तुम्हारा वणन करें ? यदि तुम्हारा रूप इस दृश्य जगत म व्याप्त है तो कसे और किस रूप म है ? यदि तुम पथवी गगन, जल, सूय, चद्र, अखण्ड ब्रह्माण्ड आदि के निर्माता हो तो तुम्हे किसने बनाया ? पहले गगन पृथ्वी पवन, पानी का निर्माण हुआ कि प्रभु ! पहले तुम्हारा निर्माण हुआ ? पहले सूय हुआ कि पहले चद्र हुआ ? पहल पुरुष हुआ कि पहले नारी हुई ? पहले बीज हुआ कि पहले खेत हुआ ? पहले दिन हुआ कि रात हुई ? पहले पाप हुआ कि पहले पुण्य हुआ ? कबीर कहते हैं कि अरे निरजन ! जहाँ तुम रहते हो वहा कुछ है कि एक दम शून्य ही है।[1] वास्तव म कबीर के ये पद बड़े ही तकपूण एव सगत हैं। जिन प्रश्नो को कबीर ने रहस्यमयी सत्ता के प्रति इतने दिन पहले उठाया था वे आज भी वसे के वसे बने हैं। सष्टि का अंतिम सत्य क्या है ? काय और कारण का भेद अब भी अज्ञात है।

कबीर सष्टि को अव्यक्त शक्ति द्वारा की गयी कला मानते हैं।[2] पाँच तत्त्व से इस सष्टि का विकास हुआ है।[3] इस सष्टि का मुख्य तत्त्व पानी (वातावरण) है जिससे कि सभी जीवो म चेतना स्थिर है।[4] पानी से ही रज वीय की उत्पत्ति है

---

१ राम राइ अविगत विगति न जान,
कहि किम तोहि रूप बखान ॥
प्रथम गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभू प्रथमें पवन कि पाणी।
प्रथमे चन्द कि सूर प्रथमें प्रभ प्रथमे कौन बिनाणी।
प्रथम प्राण कि प्यड प्रथमे प्रभू प्रथम रक्त किरेत ॥
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथम प्रभू प्रथमे बीज कि खेत ॥
प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे प्रभू प्रथम पाप कि पुन्य।
कहैं कबीर जहा बसहु निरजन तहाँ कुछ आहि कि सुन्य ॥
क० ग्र पृष्ठ १०७ पद १६४

२ सतरज तमसे की ही माया। आपन माझ आप छिपाया।
क० ग्र० पष्ठ १७० पद २

३ पाँच तत ले कीन्ह बधान, पाप पुनि मान अभिमान ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १७४ (रमैणी)

४ पाणी थ प्रगट भई चतुराई, गुर प्रसादि परम निधि पाई ॥
० ० ०
पाणी ऊचा पाणी नीचा ता पाणी का लीज सीचा ॥
इक पाणी थें प्यड उपाया, दास कबीर राम गुण गाया ॥
क० ग्र० पष्ठ १५४

और मनुष्य भी उसी रज वीर्य की कली है।[1] अड पिंड, ब्रह्माण्ड, खण्ड सब मिटटी है।[2] सब प्रकृति के नश्वर उपकरण हैं। मनुष्य का शरीर भी 'माटी' का चित्र है उस पवन का खम्भा खडा किए है। कुछ बिन्दुओ के संयोग से उसम चेतना बह रही है।[3] वास्तव मे यदि ज्ञान से, विचार करके देखा जाय तो यह शरीर जीते भी मिटटी है और मरने पर भी मिटटी है।[4] एक दिन सबको इस मिटटी म मिल जाना है। कबीर ने इसी मिटटी के शरीर म इसी मिटटी के मंदिर मे ज्ञान का दीपक रोशन किया था।[5] शब्द ब्रह्म मे उनकी आस्था थी। उनके अनुसार केवल शब्द अमर है और सब कुछ नश्वर है। इसलिए हे ससार के प्राणियो ! वाणी रूपी ब्रह्म को सभालो।[6]

इस प्रकार हम देखत हैं कि कबीर सष्टि के सभी तत्वो को बडी सूक्ष्मता स दखे थे और ससार की असारता तथा प्रकृति के मूल पच तत्त्व का बडी बारीकी से निरीक्षण किय थ। उनका आखे खुली थी जिसके कारण वे इतनी सूक्ष्मता से पूरे ब्रह्माण्ड का दख सके हैं।

(३) कबीर का कवि रूप

कबीर कवि थ। इस पर लोगो ने बडा सन्देह प्रकट किया है। कबीर के नाम पर जो कुछ भी काव्य मिलता है उस लोग कविता मानने से हिचकत हैं। पर उनकी कविता का आस्वादन काव्य रूप म होता है। इसका कारण यही है कि

---

१ रज वीरज की कली, तापरि साज्या रूप ॥
क० ग्र० पृष्ठ २९

२ अड ब्रह्मड खड भी माटी माटी नवनिध काया ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १२८, पद २४९

३ माटी का चित्र पवन का थभा, ब्यद सजोगि उपाया ॥
क० ग्र०, पष्ठ १२८ पद २४९

४ जीवत माटी मूवा भी माटी, दखो ग्यान बिचारी ॥
क० ग्र० पष्ठ १२८, पद २४९

५ माटी का मदिर ग्यान का दीपक पवन बाति उजियारा ।
तिहि उजियार सब जग सूझ, कबीर ग्यान बिचारा ॥
क० ग्र०, पष्ठ १२८, पद २४९

६ मर नीसाणी मीच की कुसगति ही काल ।
कबीर कहै रे प्राणिया, वाणी ब्रह्म सभाल ।
क० ग्र० पष्ठ ३७

७ 'कबीर' लेखक हजारीप्रसाद द्विवेदी (प्रस्तावना), पष्ठ २१७

उनका व्यक्तित्व जन-जीवन के साथ आत्मीयता का भाव लेकर चलता है । इस आत्मीयता के भाव से जनता प्रभावित हुई है ।

कबीर हिन्दी साहित्य में एक ऐसे अक्खड़ कवि हैं जिनकी भावधारा शास्त्रीय काव्य की परम्परागत भूमि में न बहकर जन जीवन में स्वतन्त्र रूप से बही है । उनकी कविता पर परम्परा की छाया नहीं है बल्कि तत्कालीन समाज की छाया है उनकी कविता का विषय तत्कालीन परिस्थितियों में फैला हुआ धार्मिक आडम्बर' अनस्थिरता' सार्वभौमिक सत्य' एवं संसार की असारता है ।[1] जिसमें सर्व भवन्तु सुखिन जैसे कल्याणकारी विचार निहित हैं । यद्यपि ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि कबीर ने समाज में कोई क्रियात्मक सुधार किया था पर उनकी कविता में अनेक जगह समाज सुधारक विचार मिलते हैं जिससे लगता है कि उनके भीतर समाज सुधार की भावना अवश्य थी और वे एक समाज सुधारक भी थे । उनके व्यक्तित्व का और रूप उनके कवि रूप से ही प्रस्फुटित हुआ है । उनका काव्य न होता तो उनका कोई व्यक्तित्व भी न होता । अतएव उनके व्यक्तित्व का प्रमुख रूप कवि का है जिसके प्रकाश में उनके व्यक्तित्व के अन्य रूप दृष्टिगत होते हैं ।

कबीर के काव्य से ऐसा भी पता चलता है कि वे पढ़े लिखे नहीं थे । मसि कागज और लेखनी को छुए तक नहीं थे ।[5] वे न तो स्वयं पुस्तक लेकर पढ़ते थे और न दूसरों को पुस्तक लेकर पढ़ाते ही थे ।[6] वे विद्या पढ़कर किसी वाद या सम्प्रदाय का व्यक्ति नहीं बनना चाहते थे ।[7] पढ़ने, लिखने तथा वेद पुरान सुनने से क्या होता है ? जिस ज्ञान को लोग पढ़ लिखकर प्राप्त करते हैं उसे कबीर ने

---

१ गाफिल गरब करै अधिकाई । स्वारथ अरथिबधे ए गाई । पृष्ठ १८२
ए पाखंड जीव के भरमा । मानि अमानि जीव के करमा ॥ पृष्ठ १८६

२ कलि का स्वामी लोभिया मनसा धरी बधाई ।
देहि पईसा ब्याज कौं लेखा करता जाइ ॥ पृष्ठ २८

३ जब नहिं होते पवन न पानी । जब नहिं होती सिष्टि उपानी ।
क० ग्र० पृष्ठ १८१ (रमैंणी)

४ प्राणी प्रीति न कीजिये इहि झूठ संसार रे ॥
धूवाँ केरा धौल्हर जात न लागै वार रे ॥ क० ग्र०, पृष्ठ १६६

५ मसि कागद छूयो नहो कलम गह्यो नहिं हाथ ।

६ जपौ न जाप हनौ नहिं गूगल पुस्तक लै न पढाऊँ ।
क० ग्र०, पृ० ११६ पद १६६

७ बिद्या न पढउ बाद नहिं जानउ ॥
क० ग्र०, पृ० १०२, पद १४७

सहज ही पा लिया था।[1] कबीर का ज्ञान स्वानुभूतिमूलक था, इसीलिए वे सबसे न्यारे थे। पण्डित मुल्ला ने जो कुछ लिख छोड़ा था उसे उन्होंने बिलकुल नहीं ग्रहण किया था।[2] वे पुस्तकी ज्ञान को बिलकुल थोथा समझते थे क्योंकि वेद पढ़कर पण्डित मरते जा रहे थे और पुरान पढ़कर काजी।[3] इन लोगों के ज्ञान से कोई सामाजिक समस्या हल नहीं हो रही थी। इन लोगों का वेद कुरान व्यर्थ का प्रलाप था जो व्यर्थ ही सबको उलझाए हुए था। कबीर वेद पुरान की बात सुन कर व्यर्थ ही समय नहीं खोते थे। वे कर्म की आशा करते थे।[4]

कबीर कविता के लिए कविता नहीं करते थे। उनका कहना था कि जो व्यक्ति कविता के लिए कविता करता है उसकी कविता में दम नहीं होता बल्कि वह निकृष्ट कोटि का कवि है।[5] कबीर ने काव्य के माध्यम से अपनी बात लोगों तक पहुँचाने के लिए कविता की है। वे सामाजिक रूढ़ियों के विरोधी थे। समाज में जितने प्रकार के भ्रष्टाचार फैले थे सबसे उन्हें रोष थी। वे क्रान्तिकारी पुरुष थे और काव्य के माध्यम से सामाजिक क्रान्ति कर रहे थे। इसीलिए उनकी भाषा में इतना तेज है।

यद्यपि कबीर ने परम्परा से भिन्न होकर अपनी बात कही है फिर भी परम्परागत विशेषताओं का प्रभाव उनके काव्य में दिखायी देता है। पर वह प्रभाव काव्य के बाह्य रूप पर है भजन दोहा चौपाई की शैली पर है, काव्य के मर्म पर नहीं। कबीर ने अपने काव्य में समाज में प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। उन शब्दों का रूढ़िगत अर्थ वह नहीं है जैसा कि अन्य परम्परावादी कवियों ने किया है। शब्द वही हैं पर अर्थ भिन्न है। कबीर के धर्म का स्वरूप कबीर के राम का स्वरूप कबीर के गुरु का स्वरूप तथा स्वर्ग नरक आदि शब्दों का अर्थगत रूप सबसे भिन्न

---

१ का पढ़िये का गुनिये। का वेद पुरान सुनिये।
पढ़ें गुने मति होई। मैं सहजे पाया सोई॥
क० ग्र०, पृ० १३३

२ पंडित मुल्ला जो लिखि दीया।
छाड़ि चले हम कछू नहिं लीया। क० ग्र०, पृष्ठ २०६ (परिशिष्ट)

३ वेद पढ़ि पढ़ि पंडित मुए, रूप भूले मुई नारी॥
क० ग्र०, पृ० ३१७

४ वेद पुरान सबै मत सुनि कै करी करम की आसा॥
क० ग्र०, पृष्ठ २४८

५ कवी कबीन कविता मूये कापड़ी केदारी जाइ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १४६, पद ३१७

है। कबीर ने अपनी बात वेद कतेब दोनों से अलग होकर कही है।[1] पण्डित लोग वेद पढ़कर पत्थर और पोथी के बोझ को गधे के समान ढो रहे थे। राम नाम के यथार्थ अर्थ को समझते नहीं थे।[2] काजी कुरान पढ़ पढ़ कर भी अज्ञानी थे।[3] इसलिए कबीर वेद ईश्वर एवं कुरान के अल्लाह दोनों में आस्था रखते हुए नहीं दिखाई देते। उनका काव्य जातिगत भेद को मिटाने के लिए लिखा गया है। उनके सामने मात्र जाति की समस्या नहीं थी बल्कि मनुष्य जाति के आन्तरिक गुणों के विकास की समस्या प्रधान थी। इसलिए वे कहते हैं—हिन्दू वही है, मुसलमान वही है जिसका ईमान ठीक हो।[4] पर दोनों जातियों में नैतिकता का पतन हो गया था। दोनों धर्म के बाह्य रूप अपनाए हुए थे। इसलिए कबीर ने दोनों के धार्मिक कृत्य को झूठा कहा।[5] वास्तव में कबीर का काव्य मानवता की कड़ियों का संयोजक है।

कबीर का हर एक कथन आत्मविश्वास के साथ हुआ है। वे अपने विचारों में दृढ़ थे। वे अपने तर्क के धनी थे। उन्हें कोई भी धर्म झुका नहीं सकता था। कोई भी विचार पथ भ्रान्त नहीं कर सकता था और कोई भी काव्य उन्हें अपने शब्दों के वाग्जाल में उलझा नहीं सकता था। वे सभी बाह्य आकर्षणों से उदास थे।

---

१ जन कबीर ऐसा असवारा। वेद कतेब दुहू से न्यारा॥
क० ग्र० पृष्ठ ७५ पद २५

२ वेद पुरान पढ़त अस पाँडे खर चंदन जैसे भारा।
राम नाम तत समझत नाही अंति पड़े मुखि छारा॥
वेद पढ़्या का यहु फल पांडे सब घटि देखै रामा।
जन्म मरण थैं तौ तूं छूटै सुफल हूँहि सब कामा॥
क० ग्र० पृ० ७४ पद २१

३ काजी कौन कतेब बषानै।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते गति एकै नहिं जानै॥
क० ग्र० पृ० ८३ पद ५९

४ सो हिन्दू सो मुसलमान। जिसका दुरस रहै ईमान॥
क० ग्र० पृ० १५५ पद ३५५

५ पंडित वाद वदन्ते झूठा।
राम कह्या दुनिया गति पावै खांड कह्या मुख मीठा॥
क० ग्र० पृ० ६९, पद ४०
कहै कबीर यहु मुलना झूठा राम रहीम सबनि मैं दीठा॥
क० ग्र०, पृ० ८३ पद ६०

वे अपने ही अन्दर प्रसूत विचारों पर टिके हुए थे । उन्हे उन पर पूरा भरोसा था । इसलिए उन्होंने अपनी तरफ से जो कुछ कहा है निःशंक भाव से कहा है । वे देश काल तथा परिस्थिति की सीमा से बहुत ऊपर उठे हुये थे । समकालीन परिस्थितियां उनका कुछ बिगाड नहीं सकती थी । काल उन्हें खा नहीं सकता था । माया उन्हें जीत नहीं सकती थी । वे सर्वजयी थे । व्यक्तित्व की इसी ऊँचाई पर खडे होकर उन्होंने आत्मविश्वास के साथ कहा था "हम नही मरेंगे, ससार भले मर जाय । मुझ तो जिलाने वाला मिल गया है ।[1] उन्हे पूरा विश्वास था कि विचारों को काव्य रूप मे ढालने वाला व्यक्ति नहीं मरता । भले ही उसके पार्थिव रूप का विनाश हो जाय ।[2] बोलने वाला (कवि) व्यक्ति शब्द ब्रह्म मे तदाकार हो जाता है । इसीलिए वे कहते हैं कि हे ससार के प्राणियो ! वाणी रूपी ब्रह्म की सृजना करो ।[3] वाणी ही जीव ब्रह्म का साक्षात्कार है । आत्मा परमात्मा का मधुर सम्बन्ध है । लौकिक एवं अलौकिक सुख का साधन है । इसलिए मनुष्य को अभिमान रहित ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिसमें अपने को सुख हो और दूसरों को भी सुख हो ।[4] सदवाणी से वक्ता श्रोता दोनों को हार्दिक सुख होता है । हृदय में स्थित प्रेम के प्रकाश को दूसरों तक पहुँचाने वाली वाणी ही है । कबीर का कहना है कि जब इस शरीर में प्रेम का उद्भव होता है तो अन्त मानस मे प्रेम का प्रकाश फैल जाता है और उस आनन्द की सुगन्ध वाणी (काव्य) के रूप में व्यक्त होकर अपने आस पास के वातावरण को भी सरस और सुरभिमय बना देता है ।[5] वाणी सच्चिदानन्द स्वरूपा है। वाणी चित्त का सत्य है जो आनन्दमय है । वाणी मे व्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध जुडता है । मनुष्य मनुष्य से सत्संग करता है, सामाजिक सगठन बनाता है और उसके द्वारा वह स्वर्गीय सुख पाता है ।[6] कबीर के अनुसार कविता वही है जिसे प्रत्येक लोग

---

१ हम न मरब मरिहैं ससारा । हमका मिला जियावन हारा ।
क० ग्र० पृ० ८० पद ६३

२ देहा माटी बोले पवना । बुझि रे पानी मुवा सा कवना ।।
मई सुरति वाद अहंकार । वह न मुवा जो बोलन हार ।।
क० ग्र० पृ० ८० पद ४२

३ कहै कबीर रे प्राणिया वाणी ब्रह्म समाज । क० ग्र० पृ० ३७

४ एसी वाणी बोलिय मन का आपा खोइ ।
अपना मन सीतल करै औरन को सुख होइ ।। क० ग्र०, पृ० ४८

५ प्यंतर प्रेम प्रकासिया अन्तर भया उजास ।
मुख कस्तूरी महं महीं वाणी फूटी बास ।। क० ग्र० पृ० १०, दोहा १४

६ कहै कबीर सो कहिए ताहि साध संगति बैकुंठहि आहि ।

प्रेम से पढ़ें। पर ऐसा लावण्य काव्य म कोई कोई ही (कवि) भर पाता है।[1]

कबीर के काव्य म वाणी का चढ़ाव उतार कई रूपो म अभिव्यक्त हुआ है। कही वे अपने दैन्य एव विनम्र भाव के कारण अत्यन्त करुण प्रकृति के मालूम होत हैं और कही काजी मुल्ला के बाह्याचारो पर चोट करते हुय कठोर। वास्तव म यह कठोरता पण्डित, मुल्ला एव काजी के कर्मों की प्रतिक्रिया है। कठोरता या कटु वाक्यता कबीर का स्थायी गुण नही है। जब व मियाँ को कहत हैं कि मियाँ! तुमको बोलना नही आता।[2] तुम खुदा को नही जानते। मुल्ला तुम किस कुरान की बात करते हो?[3] कहाँ अल्लाह को दूर समझकर बुला रह हो? राम रहीम तो सब मे व्याप्त है।[4] सभी साई के प्यारे जीव हैं फिर मुर्गी मुर्गा तथा बकरी-बकरा क्यो मारते हो?[5] बाद म बडी विनम्रता से समझात भी हैं। पण्डितो के झूठे व्यवहार तथा बाह्याचार पर जब व व्यग्य करते हैं तो उन्हे भी समझाते हैं भाई! मूल तत्त्व एक है। सभी समान हैं। वण भेद तथा धम भेद सब व्यथ है। वे दोनो स पूछते हैं अरे भाई! दो (ईश्वर) कहाँ से और कसे हैं? मुझे स्पष्ट बताओ। बीच म भ्रम एव भेद का परदा क्यो लगाते हो? एक माला लेकर राम का भजन करता है और दूसरा तसबी लेकर रहीम की। इसी म जिन्दगी बीत जाती है।[6] माला और तसबी जहाँ की तहाँ रह जाती है। भेद करने वाले जहाँ के तहाँ चले जाते हैं। दोनो के बीच भेद ज्यो का त्यो बना रह जाता है। यह कितने अज्ञान की बात है कि मनुष्य अपनी नश्वरता को जानते हुए भी पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष तथा धार्मिक मत भेद लेकर जीता है। सामाजिक सगठन को बिगाड कर जीता है। दुनिया भर की अशान्ति लेकर जीता है। कबीर का कहना है कि एक राम का भजन करो। यहाँ हिन्दू

---

१ सोई आखर सोई बयन जन जू जू वाचवत ॥
कोई एक मेल लवण अमी रसाइण हुत ॥ क० ग्र०, पृ० ४३ पद ७

२ मीया तुम्ह सौ बोल्या बनि नही आव ॥ क० ग्र० प० १३०

३ काजी कौन कतेब बखानें ॥ क० ग्र० पृ० ८३

४ मुल्ला कहाँ पुकारै दूरि। राम रहीम रह्या भर पूरि ॥
क० ग्र०, पृ० ८३, पद ६०

५ कुकडी मार बकरी मार हक हक हक करि बोले ॥
सब जीव साई के प्यारे ऊबरहुग किस बोले॥
क० ग्र०, पृ० ८४, पद ६२

६ अरे भाई दोइ कहाँ सो माहि बतावो, बिचिही भरम का भेद लगावो ॥
राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई ॥
क० ग्र०, पृ० ८२ पद ५६

तुरुक कोई नही है ।[1] जो इस प्रकार का भेद मानता है उसमे बडा मोदू कोई नही है ।[2] लोकाचारी पण्डित मुल्ला तथा काजी को कबीर लगने वाली बात कहते है । इस प्रकार कबीर की भाषा देखने म तो बडी सीधी सादी है पर व्यग्य बडा तेज है । जिस पर एसा व्यग्य किया जाता है, उस पर क्या बीतती है वही जानता है । साधारण प्रतिभा का कवि इस प्रकार का काव्य सजन नही कर सकता । यही कारण है कि कबीर अपन व्यक्तित्व से पूरे युग को प्रभावित किय हैं । उनकी भावाभिव्यक्ति इतने स्पष्ट ढग स हुई है कि उसे कोई भी व्यक्ति समझ सकता है । यही उनके काव्य की सफलता है । यही उनका भाषा पर अधिकार एव कथन शली की प्रवीणता है ।

कुछ लोगा का कहना है कि "कबीर का यह कवि रूप घलुए म मिली हुई वस्तु है[3] उचित नहा प्रतीत होता । वास्तव म कबीर का काव्य म घलुआ (उपजात) नही है । वह अपन आप नही बन गया है । हिन्दी हा नही पूर विश्व साहित्य म कोई काव्य घलुआ नही है । एसा तो नही कहा जा सकता कि कबीर एक तरफ चिन्तन कर रह थे और दूसरी तरफ कविता बनती जा रही थी । वस्तुत चिन्तन को काव्य रूप म उतारना भी एक कवि प्रयत्न है । जो व्यक्ति काव्य गरिमा के महत्त्व को इतनी बारीकिया स समझता था कि दुनिया म सब कुछ नश्वर है, सब कुछ सारहीन है केवल बोलने वाला (कवि) ही अमर है । वह क्यो इस काव्य सजन के मोह स दूर रहता और क्या वह हर पदा म अपन नाम की मुहर लगाएगा । यह बात कबीर ने अवश्य कही है कि उनका काव्य केवल गीत गाने क लिए नही लिखा गया है बल्कि उसम ब्रह्म विचार व्यक्त किया गया है[4] और कविया न भी काव्य लिखा है पर उसम लीलागान है । कबीर जसा तक, विचार एव उपदेश उनम नही है । कबीर का काव्य जनभाषा म होने के कारण और लोकप्रिय हुआ । उस पढे-अनपढे सभी लोग अपनायें । इसका कारण यह है कि उनके काव्य म अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति है । कोरा पाण्डित्य प्रदशन नही है ।

---

१ कहैं कबीर एक राम जपहु र हिन्दू तुरुक न कोई ।

क० ग्र० पृ० ८२ पद ५७

२ कहैं कबीर चेत रे मोदू । बोलन हारा तुरक न हिन्दू ॥

क० ग्र०, प० ५६

३ 'कबीर', लखक हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० २१७

४ तुम जिनि जानौं गीत है यहु निज ब्रह्म विचार ।
केवल कहि समझाइया साधन आतमसार रे ॥

क० ग्र०, पृ० ७०, पद ७

जहाँ तक कबीर की भाषा की बात है वह बडी सरल एव सहज अर्थ बोधक है। उसमे सजाव शृंगार नहा है। कबीर का सजाव शृंगार तथा अलकार युक्त भाषा से क्या करना था ? उन्हे तो जनभाषा म लोगों तक अपनी बात पहुचानी थी। जिस प्रकार उन्हे सासारिकता से मोह नहा था उसी प्रकार उन्हे काव्यगत अलकारो से भी मोह नही था फिर भी उनकी कविता मे अलकार मिलते हैं। उनके पदो म नादात्मक अभिव्यजना कम नहा है। इसीलिए वह और प्रभावी है।

निष्कर्ष

इस प्रकार कबीर का व्यक्तित्व सन्त विचारक एव कवि आदि रूपो को लेकर चलता है। उनके व्यक्तित्व को हम किसी एक नाम से नहा माप सकते। उनका सन्त रूप सृष्टि तथा जीव के प्रति करुणा भाव लेकर चलता है। उनका विचारक रूप ज्ञानी, तार्किक एव यथार्थवादी रूप को लेकर चलता है तथा उनका कवि रूप स्पष्ट वक्ता अनुभवी एव आलोचक रूप को लेकर चलता है। उनकी वाणी आत्मा की कला है जो अपने मूलरूप म वलित हो गयी है। यह कला अपने आप म अनोखा है, अतुलनीय है और इतनी सुन्दर है कि चुम्बक की तरह मन को खींच लेती है। इसका कारण यह है कि कबीर के अन्दर काव्य प्रतिभा अत्यन्त तेज थी। उनके व्यक्तित्व म इतना प्रकाश है कि समाज के सारे भले बुरे अग अपने सही रूप मे झलकने लगते हैं। अपने व्यक्तित्व से उन्होने समाज पर जो रोशनी फेंक दी थी वह युग युग के लिये अमर हो गयी। उस रोशनी म उन्होने स्वय समाज को देखा था और कालान्तर म अन्य लोगो ने भी देखा। जिनकी आखो म रोशनी है वे अवश्य ही उनके देखे मानव जीवन के सत्य को देखेंगे। क्योंकि कबीर म दार्शनिक प्रतिभा थी। ब्रह्म जीव जगत और माया के सम्बन्ध म उनका चिन्तन अत्यन्त सूक्ष्म था। वे प्रतिभा से इतने शक्तिशाली थे कि ब्रह्माण्ड को भी पिण्ड के रूप में देखने मे समर्थ थे। उन्होने समदृष्टि से पिण्ड और ब्रह्माण्ड को देखा था। उन्होने समस्त सृष्टि को आत्म ज्ञान की तुला पर तौल लिया था। चिन्तन की सूक्ष्मता ने उनकी दार्शनिक दृष्टि को तेज दिया था। इसीलिए वे आँखो देखी पर विश्वास करते थे।

कबीर ने अपनी अन्तर्दृष्टि से ब्रह्म जीव जगत तथा माया के विस्तार को तो देखा ही था। पर सबसे अधिक उन्होने मनुष्य के उस समाज को देखा और परखा था जिसमे अनेक तरह के भेद और सघर्ष थे। उन्होंने सबसे अधिक रुचि मनुष्य के धर्म और व्यवहार म लिया था। उसी की प्रतिक्रिया मे उनका व्यक्तित्व बहुमुखी बन गया था। पर अन्त मे समाज के लिये उनका एक हृदय था जो कि मानव के हितो से जुडा था। सामाजिक सघर्षो म उन्होने जितना भी अनुभव इकट्ठा किया था वह सब मानव समाज के कल्याण के लिये था। उनके अन्दर यह प्रबल लालसा थी

क मनुष्य पंथ के ढकोसलो म न पडकर जीवन का यथार्थ ग्रहण करे। उन्हें भरोसा था कि मनुष्य एक न एक दिन अवश्य ही उनके वैचारिक दृष्टिकोण को समझेगा। इसलिये उन्होने मानव हित की बातो का ध्यान म रखकर राजा तथा प्रजा के बीच प्रेम का प्रचार किया था। प्रेम एक ऐसी चीज है जिसमे राजा प्रजा समान धरातल पर मिल सकते है। प्रेम म ही ऊँच नीच का भेद मिटाया जा सकता है और प्रेम से ही मनुष्य परस्पर जुड़ता है। प्रेम पर किसी का एकाधिकार नही है। उसे राजा भी पा सकता है और रक भी। पर उसके लिये त्याग आवश्यक है। बिना त्याग के प्रेम निर्बल होता है। चाहे वह राजा का प्रेम हो अथवा रक का। बिना त्याग के प्रेम की मधुरता खो जाती है। मानव मानव अथवा जीव जीव का उचित सम्बन्ध ही प्रेम है। कबीर ने मनुष्य के प्रेम सम्बन्धो को अनेक रूपो के माध्यम से व्यक्त किया है। परिवार एव समाज का सगठन प्रेम सम्बन्धो के आधार पर होता है। इसलिए प्रेम मानव जीवन की अति मूल्यवान निधि है। इस धरती पर प्रेम के समान कोई धन नही है। सभी तत्वो म प्रेम तत्व प्रधान है। इसीलिए कबीर ने ढाइ आखर के प्रेम' पर अधिक जोर दिया है। प्रेम के सामने सारा पोथी ज्ञान झूठ है। क्योकि प्रेम से ही सारे शास्त्र पढ़े होते हैं। इसलिए प्रेम का स्थान जीवन म सर्वोच्च है। सच कहा जाय तो कबीर ने जीवन जाग्रति के लिए प्रेम की शक्ति की थी। उनके सारे कथनो म प्रेम के विविध रूप मिलते हैं। उनकी सारी धार्मिक बातो म प्रेम की ही पुकार है। वस्तुत वे समाज के एक सच्चे प्रेमी थे।

जहाँ तक कबीर के स्वभाव की बात है, वे स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। पर वे इतने स्वतन्त्र नही थे कि समाज से अपना सम्बन्ध खो बैठते। समाज के मूल से उन्होने अपना सम्बन्ध बना रखा था। वे मानव समाज का हित चाहते थे। इसलिये उन्होने जीवन की समस्याओ पर विचार किया, मनुष्य के भले बुरे कर्मो पर विचार किया तथा पांडे और मुल्ला के पाखण्डपूर्ण कर्मकाण्डो पर विचार किया। उन्होने केवल विचार ही नही किया बल्कि उन कर्मकाण्डो को मिटाने के लिये भरसक प्रयत्न भी किया। हिन्दू मुसलमान के धार्मिक भेदो की भर्त्सना करके उन्होने दोनो के ईश्वर को एक बताया। वह ईश्वर निर्गुण और निराकार है। यदि ईश्वर का कोई आकार दिया जाता है तो भेद का होना स्वाभाविक है। इसलिये कबीर ने ईश्वर को एक कहकर सभी मानव तथा जीव को एक सत्ता के सूत्र म गूँथा। वह सत्ता घट घट म व्याप्त है। सर्वत्र है। मनुष्य उससे भिन्न नही है। इससे लोगो मे नैतिकता के भाव जगे। कबीर का उद्देश्य भी यही था कि लोग विविध भेदो को भूल कर नैतिक बने। इस प्रकार कबीर के व्यक्तित्व म एक विशेष बात यह है कि वे मनुष्य को ही समाज का प्रमुख मानते थे। धर्म, सामाजिक रीति रिवाज तथा शास्त्र ज्ञान आदि उसी के लिये होते हैं। यदि मनुष्य द्वारा बनाये गये नियमो से उसका

हित न हो सका तो उसके ज्ञान का क्या उपयोग ? कबीर ने इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यावहारिक समाज की पुस्तक पढ़ी थी जिसके पन्ने रोज अपने आप खुलते रहते हैं। उन्होंने उन्हीं खुले पन्नों पर अपनी खुली नजर डालकर मानव समाज का यथार्थ रूप देखा था और उससे अपना स्थायी सम्बन्ध जोड़ लिया था जिसका महत्त्व कभी कम नहीं होता।

पूरे हिन्दी साहित्य में एक भी ऐसा कवि नहीं हुआ है जिसकी कविता को प्राथमिक पाठशाला के बच्चे भी पढ़ें और उच्च कक्षाओं के स्नातक भी। साधारण पढ़े लिखे लोग भी पढ़ें और धुरन्धर विद्वान भी। साधारण सन्त भी पढ़ें और गृहस्थ भी। योगी भी पढ़ें और भोगी भी। राजनीतिक नेता भी पढ़ें और समाज सुधार करने वाले महात्मा भी। यह व्यक्तित्व की खूबी है जिसकी झलक घूमती हुई पृथ्वी पर सूर्य की रोशनी की भांति पड़ती जा रही है। धरती पर सभी बनने बिगड़ने वाले रूप प्रकाशित होते जा रहे हैं। जमाना बदल रहा है। युग खिसक रहा है। मगर उस व्यक्तित्व की रोशनी वैसे की वैसे बनी हुयी है जो चिर प्राचीन होकर भी चिर नवीन है।

चतुर्थ अध्याय

तत्कालीन समाज की कबीर पर प्रतिक्रिया

कबीर कालीन समाज धर्म साहित्य, राजनीति आदि के प्रभावों से बना था। धर्म मानव समाज को विविध पाखण्डों में भुलाये था। साहित्य विविध वादों एवं मतों का सन्देश लेकर जन जीवन को लघु समुदायों में विभक्त कर दिया था। राजनीतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप जनता का आर्थिक स्तर बहुत असमान हो गया था जिससे समाज के प्रत्येक पहलू में संघर्ष था। इन संघर्षों के कारण मानव सामूहिक रूप से अपनी-अपनी समस्याओं में उलझा हुआ था जिससे सामाजिक प्रगति रुक गई थी। तत्कालीन समाज की अवनति के अनेक कारण थे जिसकी प्रतिक्रिया में कबीर ने अपने सारे विचार व्यक्त किये हैं।

कबीर-काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय हिन्दू-मुसलमान दो धर्मों का पारस्परिक विरोध अधिक था। धर्म के नाम पर दोनों जातियों में संघर्ष हो रहा था। इससे ऐसा लगता है कि धर्म ही समाज का प्राण था। धर्म ही समाज का संगी था जिसके बिना समाज जी नहीं सकता था। यह धर्म हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों के रीति रिवाजों में विविध पाखण्डों के साथ व्यवहृत था। समाज में अनेक धर्म थे और उन धर्मों के विविध सिद्धान्त थे। ये धर्म के विविध सिद्धान्त समाज में अलग अलग धर्म के रूप में मान्य थे। सभी धर्मों की मान्यताएँ एक दूसरे से भिन्न थीं जिससे जन जीवन में एक दूसरे से धार्मिक अलगाव बना हुआ था। सबको अपना-अपना धर्म और अपना-अपना कर्मकाण्ड प्रिय था। यद्यपि इन कर्मकाण्डों की प्रथा पुरानी थी पर कबीर कालीन समाज में इसकी और वृद्धि हो गयी थी। राजनीतिक अत्याचारों एवं सामाजिक दुर्व्यवस्था के कारण अधिकांश जनता का जीवन संकटपूर्ण था। ऐसी स्थिति में तत्कालीन जनता को धर्म की आड़ में अपनी रक्षा एवं सुख की कामना करनी पड़ी। शासन सत्ता मुसलमानों के हाथ में जाने से हिन्दुओं की शक्ति निर्बल हो गयी। ऐसे समय में मुसलमानों को अपने धर्म और संस्कृति के विस्तार का अवसर मिला। परिणाम-स्वरूप हिन्दुओं की शक्ति कम होती गयी और उन्हें मुसलमानों के सारे अत्याचारों को चुपचाप सहना पड़ा। हिन्दू जनता अनेक अत्याचारों को सहकर भी अपने धर्म की रक्षा के लिए प्रयत्नशील थी। इन दोनों धर्मों के विरोधी मतों को देखते हुए कबीर ने कहा था कि दोनों

मोह है। दोनों मूर्ख हैं जो हिन्दू तथा मुसलमान का भेद करते हैं।[1] वास्तव में हिन्दू या मुसलमान दोनों एक हैं। दोनों मनुष्य ही तो हैं। अतः भेद करना हमारा उचित नहीं। राम रहीम के नाम पर झगड़ा करना व्यर्थ है। जीवन वही है जो न राम पर जाता है और न रहीम पर।[2] इस विषय में कबीर स्वयं तटस्थ थे।

हिन्दू धर्म और उनके रीति रिवाज—

हिन्दू धर्म बहुत पुराना धर्म है जो मध्यकाल में अपनी विविध विडम्बनाओं के साथ विद्यमान था। वस्तुतः इस काल में लोक व्यवहार को ही धर्म माना गया था। जिसका स्वरूप कर्मकाण्ड, पाखण्ड एवं बाह्याचारों से निर्मित था। इन्हीं कर्मकाण्डों के प्रवाह में सामाजिक जनता बह रही थी। इन कर्मकाण्डों का आविर्भाव मूल वेद में नहीं हुआ था बल्कि यह पण्डितों द्वारा अशिक्षित जनता को भुलावा देने के लिए बनाया गया था। कबीर ने इसे लोक वेद कहा है। इसी लोक वेद की धारा में लोग बहते और दूसरों को भी बहाते जा रहे थे पर कबीर को जीवन मार्ग में सत्य की उपलब्धि हो जाने से इन सब से मुक्ति मिल गयी थी।[3] कबीर बहुत बड़े विचारक थे इसलिए वे इन सब विवेकहीन प्रथाओं से दूर थे। वे न तो किसी धर्म के थे और न किसी मजहब के। उनका धर्म एक मानव धर्म था जो अपने आप में अनुभूति से प्राप्त होता है। पर समाज का प्रचलित धर्म स्वानुभूति मूलक नहीं था। वह देखा देखी अपनाया गया था। इसलिये वह यथार्थ से बहुत दूर था। समाज में अनेक जातियाँ थीं और उन जातियों के अलग अलग धर्म थे। समाज में प्रचलित हिन्दू और बौद्ध जैन एवं इस्लाम धर्म पर भी कर्मकाण्डों व मिथ्याडम्बरों का प्रभाव था। कबीर को इन सभी आडम्बरों से घृणा थी। वे समाज को इस अज्ञान के अन्धकार में पड़ा हुआ नहीं देखना चाहते थे।

हिन्दू धर्म में अनेक पाखण्ड जुड़ गये थे। इन कर्मकाण्डों के संचालक पण्डित या पाँडे थे जो जनता को अनेक तन्त्र मन्त्रों के आकर्षण से मुग्ध किए थे। इन कर्म

---

१ कहै कबीर चेत रे भादू। बोलन हारा तुरुक न हिन्दू।

क० ग्र०, पृष्ठ ८२ पद ५६

२ हिन्दू मूए राम कहि मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता दुहू मे कदे न जाइ॥

क० ग्र०, पृष्ठ ४२

३ बहे बहाये जात थे लोक वेद के साथि।
आगे थे सतगुरु मिल्या दीपक दीना हाथि॥

क० ग्र०, पृष्ठ २

काण्डो की एक पुरानी प्रथा था जिसका निर्वाह करना सामाजिक प्रतिष्ठा की बात थी। इसलिए सबको उन रीति रिवाजो म चलना पडता था। ये पण्डित दूसरा से पर सेवा, पर उपकार दान, पुण्य आदि की बात करते थ और इस प्रकार की शिक्षा देते थे पर स्वय वे लोग इससे दूर थ।[1] इसलिए कबीर न इन ब्राह्मणा के पाखण्ड को देखते हुए कहा था कि ब्राह्मण जगत का गुरु है साधू का नही, क्योकि वह चारो वेदा के अध्ययन म उलझ पुलझ कर रह जाता है।[2] उसका ज्ञान व्यावहारिक नही हो पाता। इन पण्डितो म पवित्रता का ढोंग बहुत था पर दैनिक जीवन के व्यवहार स व उत्तर हुए थ। य पण्डित पानी तो छान कर पीत थ पर पडोसियो स रूठे रहत थ। जिसम क्षण क्षण सुख की हानि होती है।[3] ऐसे दूसरा को उपदेश देकर अपनी जीविका चलाने वाले समाज म गुरु बहुत थ। पर सही ज्ञान देने वाला कोई नही था। इसलिए कबीर न न किसी को अपना गुरु बनाया और न व किसी के शिष्य हुए क्योकि य लोग लालच का दाव खेल रह थ और साथ ही साथ कर्म काण्डो का प्रचार कर रह थ। गुरु शिष्य दोनो का आधार मूर्ति पूजा थी। इसलिए दोनो पत्थर की नाव पर चढ़कर जीवन धारा म डूब मरे।[4] अर्थात पत्थर पूजा के फेर म पडकर वे लोग कोई सामाजिक प्रगति का काय न कर सके। जीवन का बहुमूल्य समय यो मे ही बिता दिए। ये पाखण्डी ब्राह्मण बडे लालची थ जो दूसरा की खाड, खिचडी पेडा रोटी खाकर कर्तव्य हीन बन हुए थ।[5] इन पण्डितो न समस्त

---

१ पंडित सेती कहि रह्या भीतरि भेद्या नांहि।
औरू कू प्रमोधता गया मुहरका माहिं॥
क० ग्र०, पृष्ठ २९

२ ब्राह्मण गुरु है जगतका साधू का गुरु नाहिं।
उरझि पुरझि करि मरि रह्या चारिउ बेदा माहिं॥
क० ग्र० पष्ठ २८

३ पडोसी सू रूसणा तिल तिल सुख की हाणि।
पंडित भये सरावगी पाणी पीवे छाणि॥
क० ग्र०, पष्ठ २८

४ ना गुरु मिल्या ना सिष भया लालच खेल्या दाव।
दून्यू बूड धार मे चढि पाथर की नाव॥
क० ग्र०, पष्ठ २

५ खूब खाड है खीचडी माहि पडा टुक लूण।
पडा रोटि खाइ करि गला कटावे कौंण॥
क० ग्र०, पृष्ठ ३३

हिंदू समाज में पाखण्ड का जाल बिछाकर पत्थर के सालिगराम की उपासना का प्रचार कर दिया था जिससे समाज में और पिछड़ापन आ गया था।[1] इस पत्थर पूजा का कबीर ने खुलकर विरोध किया और कहा कि पाहन को क्यों पूजते हो ? वह तो जड है। जीवन भर उपासना करने पर भी वह जबाव देने वाला नहीं। यह मनुष्य ही अन्धा है जो विविध आशाएँ लेकर जड पत्थर के सामने नत मस्तक होता है। वह स्वयं ही अपना पानी (अपनी प्रतिष्ठा) खो देता है।[2] वास्तव में पत्थर की उपासना से मन की भ्रांति नहीं जाती बल्कि वह दिन पर दिन और बढ़ती है।[3] उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि पत्थर का ही देवता है और पत्थर का ही मंदिर है तो किस देव की पूजा करते हो ? पूजा करने वाला ही अन्धा है जो खोटी सेवा में लगा है।[4] यदि पूजा या सेवा ही करनी है तो मनुष्य की सेवा करो जिससे सामाजिक संगठन बने। अन्ततः मनुष्य ही देव हैं। मनुष्य मनुष्य की सेवा करता है तो कभी न कभी वह उसके काम आयेगा पर पत्थर किस काम का। हर एक आत्मा ही सालिगराम है। भगवान है।[5] इसलिए पत्ती फूल तोडकर पत्थर पर चढ़ाना मूर्खता है। तिलक लगाना, माला का जाप करना, देवी देवता के नाम पर एकादशी आदि पर व्रत रखना अज्ञान है। तीर्थ व्रत सब झूठा है। ये सभी बाह्याडम्बर मानवकृत हैं। इन कृत्यों से कोई समस्या हल नहीं होती। इसलिए इन सबके लिए व्यर्थ में समय खोना नादानी है।

इस प्रकार के अनेक रीति रिवाज हिंदू समाज में प्रचलित थे जिससे मुक्त

---

१ काजल केरी कोठरी मसि के कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी पंडित पाडी बाट॥
क० ग्रं० पृष्ठ ३४

२ पाहन को क्या पूजिये जनम न देई जाव।
अंधा नर आशामुखी यो ही खोवे आब॥
क० ग्रं०, पृष्ठ ३४

३ सेव सालिग राम कूं मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपने नहीं दिन दिन अधकी लाइ॥
,,

४ पाथर ही का देहुरा पाथर ही का देव।
पूजणहारा अंधला लागा खोटी सेव॥
क० ग्रं०, पृष्ठ ३४

५ जेती देखौ आतमा तेता सालिगराम।
साधू प्रतषि देव हैं नहीं पाथरसूं काम॥
क० ग्रं०, पृष्ठ ३४

होना सबके लिए कठिन था । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाह्य कर्मों में ही लोग सुख सन्तोष का अनुभव करते थे पर आन्तरिक शुद्धता या आत्म चिन्तन उनके लिए दुष्प्राप्य था । बहुसंख्यक वर्ग बाह्य क्रिया व्यापार में रुचि लेता था । इसलिए उनका आत्म चिन्तन अधूरा था । वे अपने आप को समझने में असमर्थ थे । आचार विचार में पीछे थे । लोगों में आन्तरिक पवित्रता नहीं थी । पवित्र होने के लिए गंगा स्नान करते थे । तीर्थ यात्रा करते थे ।[1] इन्हीं सारे पाखण्डों में जगत भूला हुआ था जिसके कारण उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया था । समाज में इस प्रकार के सुख दुःख के अनेक अवसर थे जिन पर कर्मकाण्ड का प्रभाव था । जन्म के अवसर पर बधाई बजती थी ।[2] विवाह के अवसर पर मंगलचार गाये जाते थे ।[3] उस समय वेद कुरान के नाम पर समाज में अनेक पाखण्ड फैले थे । मरने के बाद भी कुछ कर्म-काण्ड ऐसे प्रचलित थे जिनको देखकर कबीर ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । वे कहते हैं कि ये विचित्र लोग हैं जो वेद, कुरान से लोकाचार एवं व्यवहार ग्रहण करते हैं । ये मृत शरीर को जलाकर आते हैं तो मरने के बाद प्रेम प्रदर्शित करते हैं । जीवित रहने पर पिता को डंडे से मारते हैं और मरने पर गंगाजल अर्पित करते हैं । जीवित रहने पर पिता को अन्न नहीं देते और मरने पर पिण्ड भराते हैं । जीते जी पिता को अपराधी कहते हैं और मरने पर श्राद्ध देते हैं । कबीर कहते हैं कि मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि कौवा के खाने पर पिता कैसे उसे पाता है ?[4] इस

---

१ मन मैला तीरथ न्हावैं तिनि बैकुण्ठ न जाना ।
पाखण्ड करि करि जगत भुलाना नाहिन राम अयाना ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ १५३, पद ३३५

२ बेटा जाया तो का भया कहा बजावै थाल ॥
आवण जाणा ह्वै रहा ज्यौं कीडी का नाल ॥
क० ग्रं० पृष्ठ ६० (ख प्रति)

३ दुलहिन गावहु मंगलचार ।
हम घरि आये हो राजाराम भरतार ॥ क० ग्रं० पृष्ठ ९९

४ साथ रहिये लोकाचार, वेद कतेबक थे व्यवहार ॥
जारिवारि करि आवे देहा मूवा पीछे प्रीति सनेहा ॥
जीवत पित्रहि मारहि डंडा, मूवा पित्र लै घालै गंगा ॥
जीवत पित्र कू अन न ख्वावै मूवा पाछे प्यंड भरावै ॥
जीवत पित्र कू बोलै अपराध, मूवा पीछे देहि सराध ॥
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कउवा खाइ पित्र क्यू पावै ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ १५६, पद ३५६

प्रकार के अनेक कर्मकाण्ड समाज में प्रचलित थे जिनसे जनता का गहन लगाव बना हुआ था । ये सारे 'लोक वेद' जन्य कर्मकाण्ड जनता की प्रगति में बाधक थे ।[1] इसी लिए कबीर ने सभी कर्मकाण्डों का विरोध किया था ।

इन कर्मकाण्डों के कारण समाज में विविध क्रिया कलाप प्रचलित थे । समाज की विविधता पर कबीर चकित और उदास थे । वे इन लोगों के विविध कर्म और विविध वेश को देखकर भीतर ही भीतर दुखी थे । उन्होंने तत्कालीन समाज की गति विधियों पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा है कि यह विचित्र समाज है ! जहाँ कोई एकता नहीं । एक पुस्तकों का पाठ करता है तो एक इधर उधर भ्रमण करता है । एक निरंतर नग्न रहता है तो एक योग युक्ति करके तन को क्षीण किया करता है । एक दरिद्र और दुखी है तो दूसरा उसको दान देता है । एक क्रिया कलाप में विकल है, तो एक सुरापान में । एक तन्त्र, मन्त्र औषध में विश्वास रखता है तो दूसरा समस्त नीति वाक्यों को कण्ठस्थ रखता है । एक वह साधक है जो तीर्थ व्रत कर शरीर की वृत्तियों पर अंकुश रखता है तो एक वह है जो राम नाम की प्रीति में विश्वास ही नहीं रखता । एक होम यज्ञ करके धुवां से अपना शरीर काला करता है पर ऐसे तप से बिना राम नाम के मुक्ति नहीं मिलती ।[2] कबीर के समाज में ऐसे बाह्य वेशधारी बहुत थे । पेड़ छोड़कर डाली पर लगे हुये थे । ये अभागे मूर्ख लोग जन्त्र मन्त्र के चक्कर में पड़कर व्यर्थ ही जीवन का बहुमूल्य समय खो रहे थे ।[3] उस समाज में और भी वेषधारी लोग थे जिससे समाज पतन की धारा में डूब रहा था ।[4] कोई जटाधारी था तो कोई अंग प्रत्यंग में अपार विभूति लगा

---

१ लोक वेद कुल की मर्यादा इहै गले में फाँसी ॥
क० ग्र० पृष्ठ ९८, पद १२९

२ ऐसी देखि चरित मन मोह्यौ मोर ताथै निस बासुरि गुन रमौं तोर ॥
इक पढ़हिं पाठ इक भ्रमै उदास इक नगन निरंतर रहैं निवास ॥
इक जोग जुगुति तन हूँहि खीन ऐसे राम नाम संगि रहै न लीन ॥
इक हूँहि दीन इक देहिं दान, इक करै कलापी सुरापान ॥
इक तंत मंत औषध बान इक सकल सिध राखै अपान ॥
इक तीर्थ व्रत करि काया जीति ऐसे राम नाम सूं करै न प्रीति ॥
इक धोम घोटि तन हूहिं स्याम यूं मुकति नहीं बिन राम नाम ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १६३ पद ३८६

३ बाबा पेड़ छाडि सब डाली लागे, मूढ़ जंत्र अभागे ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ११६, पद १९७

४ अलख विसारयो भेष मैं बूडे कालीधार ॥ क० ग्र० पृष्ठ ३६

कर इधर उधर फिरता था। कोई मुनि बनकर मन की साधना करता था तो कोई शिव अथवा शक्ति की उपासना करता था और पर्दे के भीतर जीव की हिंसा करता था। कोई कुल देवी की उपासना करता था तो कोई अन्न छोडकर दूध पीता था। पर बिना हृदय शुद्धि के हरि नहीं मिलता।[1] इन सब बाह्य भेषो में लोग अपना गन्तव्य और कर्त्तव्य भूल गये थे जिससे आपसी व्यवहार बिगड गया था। इससे समाज मे विभिन्नता थी। सबकी अपनी-अपनी डफली और अपनी-अपनी राग थी। सब अपने अपने स्वर की अलाप म मगुघ थे। पण्डित पुराण पढकर माते थे तो योगी ध्यान धारण कर। संन्यासी अपने संन्यास पर अभिमानी हो गये तो तपस्वी अपने तप पर।[2] प्राय समाज के प्रत्येक व्यक्तित्त्व में अभिमान की ऐंठन थी। लोगो के व्यक्तित्त्व म उदारता एवं गम्भीरता का अभाव था। जोगी जती, जटाधारी आदि लोग कर्महीन थ। य लोग समाज के भार थ जो दूसरो की कमाई पर जीवित थे। इनका समस्त जीवन ही अनुत्पादक था। य सब अवसर स हारे हुए प्राणी थे।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर के समाज मे अनेक ऐसे धार्मिक पाखण्ड और रीति-रिवाज थ जिसस समाज का रूप विकृत हो गया था।

मुसलमान धर्म और उनके रीति-रिवाज

हिन्दू धर्म की भांति मुसलमान धर्म म भी परम्परागत रीति रिवाजो का प्रचलन था। इस धर्म म भी अनेक पाखण्ड एव धर्मान्धता विद्यमान थी। इस धर्म म बच्चे का खतना कराना, मरने पर कब्र देना, खुदा के नाम पर मस्जिद म जाना और चिल्लाना, मक्का मदीना की तीर्थयात्रा करना, मूर्ति का खण्डन करना हिन्दुओ के विपरीत कार्य करने म आस्था रखना, बहिश्त कयामत आदि मे विश्वास रखना

---

१ इक जगम इक जटाधार, इक अगि विभूति करं अपार ॥
इक मुनियर इक मनहूँ लीन, एम होत होत जग जात खीन ॥
इक आराध सकति सीव, इक पडदा द द वध जीव ॥
इक कुल देया को जपहि जाप, त्रिभुवनपति भूल त्रिविध ताप ॥
अन्नहि छाडि इक पीवहि दूध, हरि न मिल बिन हिरद सूध ॥
क० ग्र०, प० १६१–१६२, पद ३८०

२ पडित माते पढि पुरान जोगी मात धरि धियान ॥
संन्यासी मात अहमव तपा जु माते तप क भेव ॥
क० ग्र०, प० १६३, पद ३८७

३ जोगी जगम जती जटाधार अपने औसर सब गये हारि ॥
क० ग्र० प० १६२, पद ३८४

आदि ऐसे पाखण्ड जुड़ गए थे जिससे सामाजिक एकता भंग हो गयी थी। मुसलमानी मजहब के ये सब पाखण्ड बाद के बने हुए थे। इन पाखण्डों की मध्यकाल में पूर्णतया वृद्धि हो गयी थी। मुसलमानी जीवन के ये सब कर्मकाण्ड दूसरे धर्मों से पूर्णतया अलग थे जिसके कारण जन जीवन में धार्मिक भेद भाव की भावना प्रबल हो उठी थी। इस काल में हिन्दू मुसलमान का धर्मगत भेद अधिक था जिसके कारण दोनों में संघर्ष हुआ करते थे। दोनों जातियों में धर्म के नाम पर अन्धानुकरण था। दोनों अपने अपने धर्म की सीमित दीवारों के बीच रहना पसन्द करते थे। यदि ये दोनों जातियाँ धर्म के सीमित क्षेत्र से दूर होती तो अवश्य ही दोनों में संघर्ष न होता और दोनों का एक समाज होता। कबीर दोनों के धर्म एवं जाति की सीमा से परे थे। इसलिए उन्होंने जो कुछ भी कहा है दोनों के लिए कहा है। वे हमेशा ज्ञान या विचार को महत्त्व देते थे। जाति या धर्म के वे बिल्कुल पक्षपाती नहीं थे। उनका कहना था कि हिन्दू वही है मुसलमान वही है जिसका ईमान ठीक हो।[1] जो समाज में सबके साथ सद्व्यवहार रखे। यदि व्यक्ति सद्व्यवहार को खोता है तो पूरे समाज को खोता है। समाज एक मानव परिवार है जिसका संगठन जिसका विकास ईमानदारी पर ही हो सकता है। इसीलिए कबीर ने ईमानदारी पर अधिक जोर दिया है। यह ईमानदारी जीवन का यथार्थ है जीवन का सत्य है और जीवन का साध्य है। कबीरकालीन समाज में इस सत्य का लोप हो गया था जिसके कारण जन जीवन में इतना सन्त्रास था। लोगों में संघर्ष का मूल कारण सत्य का अभाव था। गरीबी अमीरी का भेद राजनीतिक एवं धार्मिक अत्याचार सब असत्य के कारण हो रहे थे। समाज में कोई न्याय नहीं था। जो जितना ही शक्तिशाली होता था वह उतना ही धन संग्रह कर लेता था। आर्थिक शक्ति पर समाज की सभी शक्तियाँ अवलम्बित थीं। धर्म का प्रचार एवं प्रसार अर्थ व्यवस्था पर ही अवलम्बित था। उस समय कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो इन सब सामाजिक बुराइयों को दूर करता और समाज को व्यवस्थित रूप देता।[2] इस सामाजिक दुर्व्यवस्था के कारण हिन्दू मुसलमान दोनों के विचार टूट चुके थे। दोनों अपने अपने धर्म एवं समाज को एक दूसरे से भिन्न समझ बैठे थे। व्यावहारिक जीवन में भी दोनों की परस्पर सहानुभूति नहीं थी। अतः जाति और धर्म के नाम पर समाज में दो विरोधी वर्ग बन गये थे जिसके कारण दोनों सदैव एक दूसरे से टकराते रहे।

---

१ सो हिन्दू सो मुसलमान। जिसका दुरुस रहै ईमान॥

क० ग्र०, पृ० १५५ पद २५५

२ ऐसा कोई ना मिला हमको दे उपदेस।
भवसागर में डूबता कर गहि काढ़े केस॥ क० ग्र० पृ० ५२

जाति व्यवस्था एव सामाजिक मान्यताएँ

कबीरकालीन समाज मे जातिवाद की समस्या जटिल थी। इस जातिवाद की समस्या ने समाज को विभिन्न वर्गों म बाँट दिया था और इसी के कारण समाज म सघर्ष की विभिन्न स्थितियाँ पैदा हो गयी थी। ब्राह्मण अपने को पवित्र और सब श्रेष्ठ समझते थ तो मुसल्मान अपने को कट्टरधर्मी और शक्तिशाली समझते थ। हिंदुओं म अनेक जातियाँ थी जिनम एक दूसरे के प्रति ऊच नीच छुआछूत का भेद भाव था। मुसल्माना म भी अनेक धर्म और सम्प्रदाय थे जिसके कारण वे एक दूसरे स अलग हो गए थ। इस प्रकार हिंदू मुसल्मान दोनो वर्गों पर जातीयता का पक्का रग चढ गया था जिसे न कोई उपदेश मिटा सकता था और न कोई धर्म एक कर सकता था। कोई भी उत्पन्न दोना म दो तरह से ग्राह्य होता था। दोना के दो ईश्वर थ और दोना अपने अपने ईश्वर की कृपा पर जीवित थ। इसलिए कबीर ने कहा कि यदि कर्त्ता (ईश्वर) वर्ण (जाति) पर विचार करता है तो जन्मते ही उसे तीन श्रेणियो म क्यो नही विभाजित कर देता? उत्पत्ति बिंदु कहाँ से आता है? जो मायामय हो जाता है। अरे भाई! न तो कोई ऊँचा है और न तो कोई नीचा है जिसका पिण्ड है उसी स उसका पोषण हुआ है। जो तुम ब्राह्मण ब्राह्मणी होकर पैदा हुए हो तो दूसरे रास्ते से क्यो नही पैदा हुए? जो तुम तुर्क तुरुकनी बनते हो तो क्यो नही भीतर स खतना करा के आय?[1] कबीर कहते हैं कि अरे भोंदू! अब स ही समझ लो बोलने वाला न तो तुर्क है और न हिंदू ही।[1] सबका शरीर एक ही तत्त्व से बना है और सब मनुष्य हैं। हमारे तुम्हारे बीच म एक रक्त है। एक ही प्राण जीवन का मोह है। एक ही तरह सब दस माह गर्भवास करते हैं। सब एक ही माँ स पैदा हुए हैं तो किस ज्ञान से तुम अपने को अलग समझते हो?[1] अरे बावरे!

---

१ जो पै करता वरण विचार। तो जनमत तीनि डाडि किन सार॥
क० ग्र० पृ० ७६ पद ४१

जे तूँ बामन बमनी जाया तो आन बाट ह्वै क्यूँ न आया।
जे तूँ तुरक तुरकनी जाया तो भीतरि खतना क्यूँ न कराया॥
क० ग्र० पृ० ७९ पद ४१

कहैं कबीर चेत रे भोंदू। बोल्नहारा तुरुक न हिंदू॥
क० ग्र०, पृ० ८२ पद ५६

हम तुम माहैं एक लोहू। एक प्रान जीवन है मोहू॥
एक ही बास रहै दस मासा सूतक पातग एक आसा॥
एक ही जननी जा या ससारा कौन ग्यान थ भय नियारा॥
क० ग्र०' पृ० १८५, (रमणी)

जाति व्यवस्था एवं सामाजिक मान्यताएँ

कबीरकालीन समाज में जातिवाद की समस्या जटिल थी। इस जातिवाद की समस्या ने समाज को विभिन्न वर्गों में बाँट दिया था और इसी के कारण समाज में संघर्ष की विभिन्न स्थितियाँ पैदा हो गयी थीं। ब्राह्मण अपने को पवित्र और सर्वश्रेष्ठ समझते थे तो मुसलमान अपने को कट्टरधर्मी और शक्तिशाली समझते थे। हिन्दुओं में अनेक जातियाँ थीं जिनमें एक दूसरे के प्रति ऊँच नीच छुआछूत का भेद भाव था। मुसलमानों में भी अनेक धर्म और सम्प्रदाय थे जिसके कारण वे एक दूसरे से अलग हो गए थे। इस प्रकार हिन्दू मुसलमान दोनों वर्गों पर जातीयता का पक्का रंग चढ़ गया था जिसे न कोई उपदेश मिटा सकता था और न कोई धर्म एक कर सकता था। कोई भी उपदेश दोनों में दो तरह से ग्राह्य होता था। दोनों के दो ईश्वर थे और दोनों अपने-अपने ईश्वर की कृपा पर जीवित थे। इसलिए कबीर ने कहा कि यदि कर्त्ता (ईश्वर) वर्ण (जाति) पर विचार करता है तो जन्मते ही उसे तीन श्रेणियों में क्यों नहीं विभाजित कर देता? उत्पत्ति बिन्दु कहाँ से आता है? जो मायामय हो जाता है। अरे भाई! न तो कोई ऊँचा है और न तो कोई नीचा है, जिसका पिण्ड है उसी से उसका पोषण हुआ है। जो तुम ब्राह्मण ब्राह्मणी होकर पैदा हुए हो तो दूसरे रास्ते से क्यों नहीं पैदा हुए? जो तुम तुर्क तुरकनी जनते हो तो क्यों नहीं भीतर से खतना करा के आये?[1] कबीर कहते हैं कि अरे भाई! अब से ही समझ लो बोलने वाला न तो तुर्क है और न हिन्दू ही।[2] सबका शरीर एक ही तत्त्व से बना है और सब मनुष्य हैं। हमारे तुम्हारे बीच में एक रक्त है। एक ही प्राण जीवन का मोह है। एक ही तरह सब दस माह गर्भवास करते हैं। सब एक ही माँ से पैदा हुए हैं तो किस ज्ञान से तुम अपने को अलग समझते हो?[3] अरे बावरे!

---

१ जो पै करता बरण बिचारै। तौ जनमत तीनि डाडि किन सारै॥

क० ग्र०, पृ० ७६, पद ४१

जे तूं बांमन बंमनी जाया तौ आंन बाट ह्वै क्यूं न आया।

जे तूं तुरक तुरकनी जाया तौ भीतरि खतना क्यूं न कराया॥

क० ग्र०, पृ० ७९ पद ४१

२ कहै कबीर चेत रे भोंदू। बोलनहारा तुरक न हिंदू॥

क० ग्र०, पृ० ८२, पद ५६

३ हम तुम माहे एक लोहू। एक प्रान जीवन है मोहू॥

एक ही बास रहे दस मासा सूतक पातग एक आसा॥

एक ही जननी जन्या संसारा, कौन ग्यान थे भये नियारा॥

क० ग्र०, पृ० १८५, (रमैणी

तुम अविद्या के वन में पड़कर अज्ञानी हो रह गए। न तुम्हें सतगुरु मिला और न सत्य का पन्थ ही।[1] कबीर जातियों पर विश्वास करने वाले लोगों को अज्ञानी और अशिक्षित मानते हैं। कबीर कहते हैं कि गुरु वही है जो व्यापक विचारवाला हो। ऐसा गुरु मिलनसार स्वभाव का होने के कारण सर्वप्रिय होता है। वह जाति पाँति का भेद मिटा कर इस प्रकार लोगों में मिल जाता है जिस प्रकार आटे में नमक मिल जाता है। दूसरे लोग उससे यह न पूछें कि वह किस जाति का है।[2] अर्थात् गुरु और शिष्य दोनों के व्यवहार मानवता के आधार पर होने चाहिए। उस समय जाति के नाम पर लोग एक दूसरे को पराया समझते थे। उनकी सामाजिक एकता बिखर गयी थी। निम्न श्रेणी के लोग उच्च श्रेणी वालों को आदर देते थे फिर भी वे तिरस्कृत थे। उच्च श्रेणी वाले अपने को उत्तम समझने से जिससे उनमें अभिमान हो गया था। जाति के नाम पर बड़ाई प्राप्त करने का लोभ अभिजात वर्ग वालों में अधिक था जो कि समाज को विभिन्न स्तरों में विभक्त कर दिये थे। इसलिए कबीर ने कहा कि अपने जीवन में दो बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वह यह कि लोभ और बड़ाई के कारण मानवता के महत्त्वपूर्ण मूल्य को नहीं खोना चाहिए।[3] पर पण्डित और मुल्लाओं ने समाज के इन महत्त्वपूर्ण तत्वों को भुठला कर अपने कर्मकाण्डों का महत्त्व ऊँचा कर लिया था। कबीर इस बात के विरोधी थे। वे शारीरिक बनावट या जातीय स्तर पर मनुष्य को महत्त्व नहीं देते थे। उनका कहना था कि पाँडे व्यर्थ का वाद विवाद करते हैं। इस देह के बिना न ज्ञान है और न स्वाद ही। यह देह भी मिट्टी है (पार्थिव है) और ब्रह्माण्ड भी। यदि ज्ञान विचार कर देखा जाय तो जीवित शरीर भी मिट्टी है और मृत शरीर भी मिट्टी है।[4] ज्ञान ही महत्त्वपूर्ण है। इसलिए कबीर ब्राह्मणों को चुनौती देते हुए कहते हैं

---

१ ज्ञान न पाया बावरे धरी अविद्या मैंड।
सतगुर मिला न मुक्ति फल ताथ खाई बड़ ॥
क० ग्र० पृ० १८५, (रमैणी)

२ कबीर गुर गरवा मिला रलि गया आँटे लूण।
जाति पाँति कुल सब मिटे नाँव धरौगे कौण ॥ क० ग्र० पृ० २

३ कबीर अपने जीवते ये दोइ बातें धोइ।
लोभ बड़ाई कारणे अछतामूल न खोइ ॥
क० ग्र० पृ० १९, दोहा ४१

४ पाँडे न करसि वाद विवाद।
या देही बिन सबदन स्वाद ॥
अंड ब्रह्मंड खंड भी माटी माटी नवनिधि काया ॥
क० ग्र०, पृ० १२८, पद २४९
जीवत माटी मुवा भी माटी देखो ज्ञान विचारी ॥ वही

कि तुम (काशी के) ब्राह्मण हो और मैं काशी का जुलाहा हूँ । मेरे ज्ञान को तो चीन्हो ।[1] यह वह समय था जब ब्राह्मण अपने को पवित्र और श्रेष्ठ तथा मुसलमानों को म्लेच्छ और तुच्छ समझते थे । कबीर भी इन पण्डितों के जीवन व्यापार को बड़ी सूक्ष्मता से देखते थे और इन पण्डितों एवं मुल्लाओं के सामने ऐसी ऐसी बातें तार्किक ढंग से पेश करते थे कि पण्डित और मुल्ला दोनों हैरान थे । तत्कालीन समाज में निहित काजी, मुल्ला एवं पण्डितों में दुष्कर्म को देखते हुए वे कहते हैं कि एक वे हैं जो अपने को मुल्ला एवं काजी कहते हैं । राम के लिए व्यर्थ में सब पाखण्ड करते हैं । एक ये ब्राह्मण हैं जो नव ग्रह और बारह राशि की बातें करते हैं वे भी मृत्युपर विजय नहीं पा सके हैं ।[2] यह शरीर तो नश्वर है । केवल शब्द अमर एवं सत्य है । शरीर की अस्थिरता एवं नश्वरता को देखते हुए भी लोग छूत-अछूत एवं उच्च नीच की बात करते हैं । इसलिए कबीर ऐसे लोगों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अरे पांडे ! तुम क्या छूत-अछूत की बात करते हो ? यह संसार तो छूत से ही पैदा हुआ है । बिना छूत स्पर्श अथवा दो वस्तुओं के संयोग से कोई चीज निर्मित ही नहीं होती । इसलिए कबीर पण्डित से पूछते हैं कि मेरा शरीर कैसे रक्त से बना है और तुम्हारा शरीर कैसे दूध से । अर्थात दोनों के शरीर में एक ही प्रकार का रक्त होने पर भी एक कैसे पवित्र बन सकता है और दूसरा कैसे अपवित्र ? तुम कैसे ब्राह्मण हो और मैं कैसे शूद्र हूं । तुमने ही सब छूत का आडम्बर पैदा किया है । यदि तुम्हें छूत से बचना था तो गर्भवास में क्यों आये ?[3] कबीर के विचार से ऐसे आदमी को संसार में पैदा ही नहीं होना चाहिए जो मानव समाज में छूत-अछूत का भेद पैदा करे । इन पण्डितों में शारीरिक भेद भाव के साथ-साथ वैचारिक भेद भाव भी था । इसी कारण से

---

१ तूं ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा चीन्हि न मोर गियाना ॥

क० ग्रं० पृ० १२८–२९, पद २५०

२ एक कहावत मुल्ला काजी । राम बिना सब फोकटबाजी ॥
नव ग्रिह बामण भणता रासी । तिनहू न काटी जम की फांसी ॥
कहैं कबीर यहु तन काचा । सब्द निरंजन राम नाम साचा ॥

क० ग्रं०, पृ० १०१, पद १४२

३ काहे को कीजै पांडे छोति विचारा ।
छोतिहि ते उपना सब संसारा ॥
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध ।
तुम कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद ॥
छोति छोति करता तुम्हहीं जाए ।
तौ गर्भवास काहे कौं आए ॥ क० ग्रं०, पृ० ७९ (ख प्रति)

ईश्वरोपासना में अनेक वाद चल पड़े थे जिसमें उनका पारस्परिक संघर्ष बना रहता था। ये पण्डित झूठे वादों पर मरते थे जिसे देखकर कबीर ने साफ साफ कह दिया कि पण्डित झूठ मूठ के वाद और सम्प्रदाय की बात करते हैं। यदि राम कहने से दुनिया मुक्ति गति पाती है तो खाँड शब्द के उच्चारण से मुँह मीठा होता है। क्या पावक शब्द कहने से पाँव जल सकता है अथवा जल कहने से प्यास बुझ सकती है? यदि भोजन कहने से सबकी भूख मिट जाय तो सभी मनोवांछित फल पा जाय।[1] इस प्रकार ये पण्डित लोग नाना वाद जाल निर्मित कर स्वयं और जनता को भ्रम में डाले हुए थे।

हिन्दू मुस्लिम में राम-रहीम का झगड़ा और कबीर पर उसकी प्रतिक्रिया

कबीर कालीन समाज में राम रहीम के नाम पर बड़ा मतभेद था। हिन्दू अपने राम को महत्त्व देते थे और मुसलमान अपने रहिमान को। एक तरफ काजी मुल्ला अपने मजहब के पक्के थे तो दूसरी तरफ पण्डित भी अपने धर्म के। कोई भी वर्ग किसी दूसरे धर्म के सामने झुकना पसन्द नहीं करता था। मुसलमान वर्ग अपनी धार्मिक परम्परा को लेकर जीना चाहता था और हिन्दू वर्ग अपनी धार्मिक परम्परा को। कबीर ने दोनों की इस रुढ़िवादिता पर विचार किया और दोनों को फटकारा। उन्होंने काजी को सम्बोधित करते हुए कहा कि काजी! तुम किस कुरान की प्रशंसा करते हो। (कुरान) पढ़ते पढ़ते कितने दिन बीत गये पर एक बात भी समझ में नहीं आयी। अपने तो खतना कराके मुसलमान बन जाते हो पर औरत को कैसे मुसलमान बनाओगे? पत्नी हिन्दू और पति मुसलमान! यह कैसा असंगत धर्म है। जो एक ही परिवार को दो जातियों में बाँट देता है।[2] इसलिए जाति के नाम पर वर्ग बनाना अज्ञान है तथा जाति के नाम विविध ईश्वर की

---

१ पंडित वाद वदंते झूठा ॥
राम कह्या दुनिया गति पावै खांड कह्या मुख मीठा ॥
पावक कह्या पाँव जे दाझै जल कहि त्रिषा बुझाई ॥
भोजन कह्या भूख जे भाजै तो सब कोई तिरि जाई ॥

क० ग्रं०, पृ० ७६, पद ४०

२ काजी कौन कतेब बखाने ॥
पढ़त पढ़त केते दिन बीते गति एकै नहिं जाने ॥
सकति से नेह पकरि करि सुनति यहु न बदू रे भाई ॥
जौ रे खुदाई तुरुक मोहि करता तौ आपै कटि किन जाई ।
हौं तौ तुरुक किया करि सुनति औरति सौं का कहिये ॥
अरध सरीरी नारि न छूटै आधा हिंदू रहिये ।

क० ग्रं०, पृ० ८३, पद ५९

कल्पना करना भी मूर्खता है। इन विरोधी भावनाओं के कारण ही मुसलमान हिन्दू को पराया समझते थे और हिन्दू मुसलमान को। ईश्वर के नाम पर साधारण जनता में भेद तो था ही पर पांडे मुल्ला भी टकरा जाते थे। दोनों की उपासना में भी बड़ा मतभेद था। मुल्ला मस्जिद में नमाज पढ़ते थे और अल्लाह का नाम लेकर चिल्लाते थे। हिन्दू मन्दिर में जाकर मूर्ति की उपासना करते थे और माला की जाप करते थे। मुल्ला के इस व्यर्थ ढकोसले को देखते हुए कबीर ने कहा कि अरे मुल्ला! किसको दूर तक पुकारते हो राम रहीम तो सभी जगह में व्याप्त है।[1] यह बात तो पूरी दुनिया को मालूम है कि ईश्वर गूंगा या बहरा नहीं है। इसलिए यह मुल्ला बक झूठा है। राम रहीम तो सब में व्याप्त है।[2] अतः मुसलमानों की नमाज और एक खुदा की बात भी झूठी है। ईश्वर तो घट घट व्यापी है।[3]

हिन्दू समाज में भी ऐसी प्रकार की धारणा थी कि ईश्वर मूर्ति उपासना से,[4] माला पहनने और तिलक लगाने से तथा तीर्थव्रत करने से मिल सकता है।[5] पर यह सब अज्ञानियों की पाखण्डपूर्ण धारणा थी। इसीलिए कबीर ने कहा था कि लोग राम को खिलौना समझते थे। जिस रूप में जो चाहता है उसी रूप में उसकी उपासना करने लगता है। इन विचारों के परिवर्तन के साथ ही अपना भेष भी बदल लेता है जिससे समाज में विभिन्न मतभेद का जन्म हो जाता है। वास्तव में यह संसार बावला है जो तीर्थ स्नान करके वेद पुराण तथा स्मृति का पाठ कर के

---

१ मुला कहा पुकार दूरि।
राम रहीम रह्या भर पूरि॥
यह तो अलह गूंगा नाही। देख खलक दुनी दिल माही।
क० ग्र०, प० ८३ पद ६०

२ कहै कबीर यह मुलना झूठा।
राम रहीम सबनि म दीठा॥
क० ग्र०, प० ८३, पद ६०

३ मुसलमान कहैं एक खुदाई
कबीरा को स्वामी घटि घटि रह्यो समाइ॥
क० ग्र०, पृ० १५०, पद ३३०

४ पाहण करा पूतला करि पूज करतार॥
क० ग्र०, पृ० ३४

५ माला तिलक पहरि मन माना। लोगनि राम खिलौना जाना॥
क० ग्र०, प० १५३, पद ३४३

६ मन म मैला तीर्थ न्हावै तिनि बैकुंठ न जाना॥
पाखण्ड करि करि जगत भुलाना नाहिन राम अयाना॥
क० ग्र०, पृ० १५३, पद ३४५

ईश्वर को पाना चाहता है। यदि तीर्थ स्नान ■ मुक्ति मिलती है तो जल की सभी मछलियाँ मुक्त हो जातीं। यदि बनारस में गंगा स्नान में मुक्ति मिलती तो आज तक सभी मनुष्य मुक्त हो गए होते और फिर विविध योनियों में जन्म लेने के संकट से छुटकारा मिल जाता।[1] पण्डितों में पारलौकिक कल्पना बड़ी महान थी। उन्हें इस संसार पर उतना भरोसा नहीं था जितना कि उस संसार (स्वर्ग) पर। इसी लिए वे पूरे विश्वास के साथ वेद पुराण तथा स्मृति के पाठ में लगे हुए थे। इसी प्रकार काजी और मुल्ला भी अपने कुरान पर विश्वास कर बैठे थे। जिसके अध्ययन और नियम पालन ■ उन्हें बहिश्त मिल सकता था। इस समाज में स्थित इन दोनों जातियों के पाखण्डपूर्ण कृत्यों को देखकर कबीर असंतुष्ट थे। वे हिन्दुओं की मूर्ति पूजा तथा मुसलमानों की नमाज, हिन्दुओं के मंदिर तथा मुसलमानों की मस्जिद हिन्दुओं के व्रत उपवासों, मुसलमानों के रोजा, हिन्दुओं की तीर्थयात्रा मुसलमानों के हज[2], हिन्दुओं की माला[3], मुसलमानों की तसबी[4] हिन्दुओं का उपनयन मुसलमानों की सुन्नत, हिन्दुओं के गायत्री मन्त्र मुसलमानों के कलमा हिन्दुओं के काशी मुसलमानों के काबा, हिन्दुओं के वेद पुराण मुसलमानों के कुरान हिन्दुओं के स्वर्ग-नरक तथा मुसलमानों के बहिश्त और दोजख आदि पाखण्डों के विरोधी थे क्योंकि इन्हीं संकुचित सीमाओं में मनुष्य छोटा हो गया था। उसका एक दूसरे से व्यवहार टूट गया था। उसमें विविध भेद की दीवारें खड़ी हो गयी थीं। इसलिए कबीर का कहना था कि जब मनुष्य का मनुष्य से व्यवहार ही ठीक नहीं है तो स्वर्ग, बहिश्त से क्या होगा? पूजा, नमाज का क्या उपयोग? माला, तसबी का क्या महत्व?

---

१ जल के मज्जन जो गति होई मीना नित ही न्हाव।
   जैसा मीना तैसा नरा फिरि फिरि जोनी आव॥
   मन मे मैला तीर्थ न्हाव तिनि बैकुंठ न जाना।
   पाखंड करि करि जगत भुलाना नाहिन राम अयाना॥
   हिरदे कठोर मरे बनारसि नरक न बच्या जाई।
   हरि को दास मरे जे मगहरि सेन्या सकल तिराई॥
   पाठ पुरान वेद नहिं सुमृत तहाँ बसै निराकारा।
   कहै कबीर एक ही ध्यावो बावलिया संसारा॥
   क० ग्र० पृ० १५३, पद ३४५

२ रोजा करै नमाज गुजारै क्या हज काबै जाये। क० ग्र०, पृ० १३१, पद २५९

३ कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डडूल॥ क० ग्र०, पृ० ३५

४ राम रहीम जपत सुधि गई। उनि माला उनि तसबी लई॥
   क० ग्र०, पृ० ८२, पद ५६

मन्दिर मस्जिद की क्या आवश्यकता ? राम, रहीम का क्या तात्पर्य ? अरे भाई ! ये सब तो ऊपर के व्यवहार हैं।[1] इसके पीछे तो और ही कुछ छिपा है।[2] इन पट कर्मों से न तो कोई सुख मिलने वाला है और न कोई मोक्ष ही। वास्तविक सुख तो पड़ोस के व्यवहार में है।[3] इसलिए कबीर मनुष्य की सेवा में ईश्वर की सेवा मानते हैं। मानव के ये ऊपरी व्यवहार लोगों में भेद और अहंकार पैदा करते हैं। वस्तुतः सभी मनुष्य जाति एक है और सबमें एक प्रकार की समानता भी है।[4] कबीर इसी समानता के धरातल पर सबको लाना चाहते थे पर कबीर कालीन हिन्दू, मुसलमान एवं अन्य जातियां धर्म और जाति के नाम पर झगड़ रही थीं। उन्हीं संकुचित विचारों की प्रतिक्रिया में कबीर बोल उठे थे कि हिन्दू मुसलमान सभी एक हैं। दोनों के धर्म, दोनों की जाति तथा दोनों के कर्ता एक ही हैं।[5]

लोगों के व्यक्तिगत दुर्गुण और कबीर पर उसकी प्रतिक्रिया—

कबीर ने अपने समाज में सभी प्रकार के व्यक्तित्व को सतर्कता की खुली आंखों से देखा और परखा था[6] और उन्होंने सार रूप में यह पाया था कि मनुष्य

---

१ कहैं कबीर विचार करि ये ऊला व्यवहार।
याही थें जो अगम है सो बरति रह्या ससार ॥ क० ग्र०, पृ० १८४ (रमैणी)

२ लीला करि करि भेष फिरावा।
ओट बहुत कछु कहत न आवा ॥
क० ग्र०, पृ० १७५ (रमैणी)

३ पाड़ोसी सू रूठणा तिल तिल सुख की हाणि। क० ग्र० पृ० २८

४ कहै कबीर झूठे अभिमान। सो हम सो तुम एक समान ॥
क० ग्र०, पृ० १५८

५ कहैं कबीरा दास फकीरा अपनी राह चलि भाई।
हिन्दू तुरक का करता एक, ता गति लखी न जाई ॥
क० ग्र० पृ० ८३, पद ५८

\+ \+ \+

हम तो एक एक करि जाना।
दोइ कहैं तिनही कौं दो जग जिन नहिन पहिचाना।
क० ग्र०, पृ० ८२, पद ५५

६ फाटे दीदै में फिरौं नजरि न आवै कोइ।
जिहि घटि मेरा साइयां सो क्यू छाना होइ ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ४०

थोडे से अधिकार की उपलब्धि पर बहुत घमण्ड कर बठता है ।[1] बल, वभव, बुद्धि विद्या आदि की थोडी सी उपलब्धि पर भा वह अभिमान से फूल जाता है। एसी स्थिति म वह औरो को नगण्य मानने लगता है। मनुष्य की यह स्थिति बडी भयानक है। इसस विनम्रता का नाश होता है और समाज म इसकी विविध रूप म प्रतिक्रिया होती है। ज्ञानी का अहकार अज्ञान को उभारता है। धनी का अहकार पर दुखदायी होता है और बलवान का अहकार प्रति द्वन्द्वी खडा करता है। सभी प्रकार के अहकार अहकारी के लिए घातक हैं। इससे व्यक्ति का ही नही बल्कि समष्टि का भी अहित होता है क्योकि अहकार अज्ञान है ज्ञान पर परदा है। कबीर कहते हैं कि साधारण लोगो की कौन कहे बडे बडे मुनि लोगो को यह अहकार खा गया।[2] राजा रक सभी इसकी ज्वाला म भस्म हो गए। इसलिए किसी भी प्रकार की धन सम्पत्ति पर गव नही करना चाहिए। विनम्र भाव स सबके साथ रहना ही अपने और समाज के लिए हितकर है। विनम्रता और समाज के साथ सद्व्यवहार ही जावन की सबस बडी साधना है। पर कबीर क समाज म सबसे बडा साधना स्वाथ की थी। कोई भेष बदलकर भिक्षा मांगता था तो कोई सुरापन म आन द ले रहा था।[5] यद्यपि समाज के ये विविध रूप पाखण्डपूण बाह्याचार थ पर सबके पाछ स्वाथ था। पण्डितो के पुराण पठन मे भी स्वाथ था और योगियो क योग ध्यान म भी स्वाथ था। कबीर क समाज म जितन क्रिया व्यापार चल थे सबमे स्वाथ की गति थी। इसी स्वाथ के आकषण म समाज का सारा शरीर

---

१ माया तजी तो का भया मानि तजी नहिं जाइ।
क० ग्र० पष्ठ २६

२ कबीर जग की को कहे भो जलि बूड दास।
क० ग्र० पृ० २६

३ मानि बड मुनियर गिले मानि सबनि कौं खाइ॥
क० ग्र० पष्ठ २६

४ कबीर कहा गरबियो ऊचे देखि अवास।
काल्हि परयू ब्व लटणा ऊपरि जामैं घास॥
क० ग्र०, पृष्ठ १६

५ दखो देखि चरित मन मोहो मोर।
इक पढ पाठ इक भ्रम उदास इक नगन निरतर रहै निवास।
इक हूहि दीन इक देहि दान। इक कर कलापी सुरापान।
क० ग्र०, पष्ठ १६३, पद ३८६

(व्यक्तित्व) बँधा हुआ था।[1] कबीर इन स्वार्थी भावों से सबको मुक्त करना चाहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि मनुष्य गुड़ में चिपकी मक्खी की तरह उसी में उलझ कर मर जाय।[2] बल्कि वे मानव को सत्कर्म की ओर प्रेरित करना चाहते थे। इसीलिए वे बार-बार लोगों को जागरूक बन कर सत्कर्म करने की बात कहते हैं। वास्तव में संसार का सब कुछ नश्वर है सब कुछ झूठा है।[3] गर्व करना व्यर्थ है। काल ने सबकी चोटी अपने हाथ में पकड़ रखी है। न जाने कहाँ दे मारेगा।[4] वह देश परदेश कुछ भी नहीं गिनता। इसलिए समय की सफलता पर विशेष ध्यान देना है। समय को सत्कर्मों में गुजारना ही अमरत्व को पाना है। सत्कर्म करने वाला समय को भी जीत सकता है। कबीर ने जहाँ जहाँ भ्रम से उभरे हुए मनुष्य को दर्शाया है वहाँ वहाँ उसकी निन्दा की है।

कबीर व्यक्तिगत सुधार में सामाजिक सुधार मानते थे क्योंकि व्यक्ति ही समाज बनाता है। पर उस समय लोग समाज बनाने के बजाय बिगाड़ रहे थे। इसका कारण यह था कि लोग आचार विचार तथा व्यवहार में गिर हुए थे। उनमें नैतिकता का पतन हो गया था। सच्चा ज्ञान तो कोई समझता ही नहीं था। झूठ को ही लोग सत्य समझ रहे थे और उसी झूठ में सब सत्य समा गया था।[5] कबीर ने ऐसे सत्य को ग्रहण किया था जो सदैव के लिए अजर अमर है सभी नश्वर तत्वों के बीच स्थायी है चिर और स्थिर है। पर दुनिया ने उस सासांरिक रूप को ग्रहण किया था जो नश्वर है परिवर्तनशील है और अस्थाई है। इसीलिए कबीर बार बार यह कहते हैं कि अरे अज्ञ मनुष्यो। सत्कर्म करो। बार बार मनुष्य को

---

१ अचिरज कीया लोक में पीया सुहागल नीर।
इन्द्री स्वारथि सब किया बन्ध्या भरम शरीर॥
क० ग्र०, पृ० १८६ (रमैणी)

२ माषी गुड़ में गडि रही पंख रही लपटाइ।
ताली पीटे सिरि धुनै मीठै बोई माइ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ३७

३ मरणा मुहि आगे खड़ा जीवन का सब झूठ।
क० ग्र०, पृष्ठ ५९

४ कबीर कहा गरबियो काल गहे कर केस।
ना जाणे कहाँ मारिसी क्या घर क्या परदेस॥
क० ग्र० पृ० ५८

५ झूठनि झूठ साच करि जाना। झूठनि में सब साँच लुकाना॥
क० ग्र०, पृ० १७४, (रमैणी)

ज म नही मिलता है ।[1] फिर इस पुर, गाँव देश म नही आना है । यह शरीर रूपी नौबत अपनी है । इसे इस छोटी सी जि दगी म जिस तरह चाहा बजा लो ।[2] अवसर अपने हाथ म है । फिर मौका नही मिलेगा । शारीरिक रूप पर गव करना व्यथ है । यह रूप सप के केंचुल की तरह सरक कर पीछे छूट जायगा ।[3] कच्चे घड की तरह कभी भी फूट जायगा ।[4] धुआ के बादल की तरह क्षणभर मे अदश्य हो जायेगा ।[5] इसलिए ज म मत्यु का विचार करते हुए बुरे कम को छोड दो और जिस रास्ते पर चलने से तुम्हारा हित हो वही माग अपनाओ ।[6] उसी माग पर चलने की साधना करो । यही सत्कम जीवन का साध्य है भक्ति का फल है । यही जीवन का पुण्यकम और मोक्ष है ।

समाज मे मानवता और प्रेम का अभाव

कबीर के समाज म भले मनुष्य विरले ही थे । इस अभाव को उन्होने बडे दद के साथ अनुभव किया है । इसी की प्रतिक्रिया म उनका सारा का य अभि यक्त हुआ है । इसलिए वे जागते और रोते थे ।[7] वे इस बात का स्वय अनुभव कर रहे थे कि जो अज्ञानी है वह सुख की नींद सो लेता है और जो ज्ञानी है अबूझ की बूझन

---

१ मनिया जनम दुलभ है देह न बारम्बार ॥
क० ग्र०, प० १९

२ कबीर नौबत आपणी दिन दस लेहु बजाइ ।
ए पुर पाटन ए गली बहुरि न देखै आइ ॥ क० ग्र० प० १६

३ कबीर कहा गरबियौ देही देखि सुरग ।
बीछडिया मिलिबौ नही ज्यू काचली भुजग ॥
क० ग्र०, पृ० १६

४ यहु तन काचा कुभ है लियां फिर था हाथि ।
ढबका लागा फूटि गया कछू न आया हाथि ॥
क० ग्र०, प० १९

५ कबीर हरि की भगति बिन ध्रिग जीवण ससार ।
धुँवा केरा धौलहर जात न लाग वार ॥
क० ग्र०, पृ० १८

६ जीमण मरण विचारि करि कूड काम निवारि ।
जिनि पथू तुझ चालणा सोइ पथ सँवारि ॥
क० ग्र० पृ० १७

७ सुखिया सब ससार है खाय अरु सोव ।
दुखिया दास कबीर है जाग अरु रोव ॥ क० ग्र०, पृ० ९

योगी, जती तपस्वी संन्यासी आदि व त्यागी साधु मठ तथा मन्दिर में रहकर भक्ति का बहाने पर पाखंड कर रहे थे।[1] सभी अपनी अपनी स्वार्थ की ज्वाला में जल रहे थे। वास्तव में ऐसा व्यक्ति नहीं था जो सबमें आत्मीयता का भाव रखता हो।[2] प्रेमी तो खोजने पर भी नहीं मिलते थे।[3] कबीर प्रेम को भक्ति से महत्त्व देते थे क्योंकि प्रेम से ही परस्पर सहानुभूति होती है। प्रेम से ही मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध दृढ़ होता है। वे एक रूपक के माध्यम से कहते हैं कि मनुष्य तन रूपी नौका को मन रूपी केवट तथा रसना (वाणी) रूपी पतवार के सहारे भवसागर के पार स्वयं उतार सकता है और दूसरों को भी पार उतार सकता है। अर्थात् तन, मन एवं वाणी के सहयोग से किए गए कर्म के सहारे ही मानव जीवन को सफल बनाया जा सकता है।[4] वस्तुतः प्रेम और भक्ति ऐसा गुण है जिसे पाकर मनुष्य स्वयं महान बन जाता है और दूसरों मानवता का उद्धार करता है। इससे व्यक्ति का ही नहीं वरन् समष्टि का विकास होता है। पर कबीरकालीन समाज में इस प्रेम और भक्ति का वास्तविक रूप तिरोहित हो गया था। इसीलिए कबीर को बार बार प्रेम एवं भक्ति की उपयोगिता पर जोर देना पड़ा जिससे कि समाज के ये सारे भेद दूर हो जाय और मानव का एक सुसंगठित समाज बने।

समाज में विलासिता एवं अकर्मण्यता

कबीरकालीन समाज में विलासिता का प्रसार शासकों की स्वच्छन्द और विलासी वृत्ति के कारण हुआ। देश का शासन सत्ता राजा के हाथ में होती थी। राजा निरंकुश होता था। वह जो कुछ भी कर सकता था। यही कारण था कि राज घरानों में देश की प्रसिद्ध सुन्दरियों का संग्रह किया जाता था और उनके शृंगार साज पर फिजूल खर्च किया जाता था। राजसी ठाट बाट विलासिता था और उसका प्रभाव सर्वसाधारण पर पड़ना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप राजा से लेकर

---

१ जोगी जती तपा संन्यासी। मठ देवल बसि परस कासी॥
क० ग्र० पृष्ठ २९०

२ कोई ऐसा ना मिल्या जासौं रहिये लागि।
सब जग जलता देखिया अपनी अपनी आगि॥
क० ग्र० पृष्ठ ५२

३ प्रेमी ढूंढत मैं फिरौं प्रेमी मिलै न कोइ॥
क० ग्र० पृष्ठ ५३

४ तन करि नवका मन करि केवट रसना करउ पतार।
कहि कबीर भवसागर तरिहूं आप तिरै बहु तार॥
क० ग्र० पृष्ठ १६

प्रजा तक विलासी वातावरण हो गया था । कबीर ने कई बार इस बात का उल्लेख किया है कि समाज में कनक और कामिनी के कारण सर्वत्र विलासिता थी ।[1] इसी विलासिता के कारण समाज का सत्यानाश हो रहा था । मनुष्य अपना सत्व भ्रष्ट कर गया था । वह इन्द्री सुख के लिए प्यासा था । यह वासना की प्यास स्त्री पुरुष दोनों में थी । पुरुष आचरण भ्रष्ट थे । स्त्रियाँ जान बूझकर व्यभिचार करती थी । ऐसी स्त्रियों को पति की तरफ से आदर नहीं मिलता था ।[2] पुरुष भी पर स्त्रीगामी थे ।[3] पर नारी सहवास से कोई विरला ही बचा था ।[4] इससे मनुष्य की बुद्धि विवेक एवं स्वास्थ्य का ह्रास हो रहा था ।[5] इसलिए कबीर ने नर नारी की कामुकता को नरक कहा है ।[6] कामुकता से हरि भजन में बाधा पड़ती है । निष्काम भाव से हरि भजन किया जा सकता है । उन्होंने यह भी कहा कि काम वासना हेतु नारी के निकट रहना भी बुरा है । वे लोग नीच हैं जो नारी के निकट रहते हैं और वे उत्तम हैं जो नारी से दूर रहते हैं ।[7] वास्तव में उस समाज में भ्रष्टाचार फैलाने वाली स्त्रियाँ ही थी । इसीलिए कबीर ने बार बार उनकी निन्दा की है । वस्तुतः तत्कालीन

---

१ माया की मल जग जल्या कनक कामिनी लागि ॥
क० ग्र० पृष्ठ २७

२ कबीर जकी सुन्दरी जाणि करि बिभचार ।
ताहि न कबहू आदर प्रेम पुरिष भरतार ॥
क० ग्र० पृष्ठ ६२ (सुन्दरि कौ अंग)

३ परनारी राता फिरै चोरी बिढ़ता खाँहि ।
क० ग्र० पृष्ठ ३० (कामी नर कौ अंग)

४ परनारी पर सुन्दरी बिरला बंचै कोइ ।
खाता मीठी खाँड सी अंतिकाल विष होइ ॥
क० ग्र० पृ० ३१

५ नारी सेती नेह बुधि बिबेक सबही हरै ।
काइ गमावै देह कारिज कोइ ना सरै ॥
क० ग्र० पृष्ठ ३१

६ नर नारी सब नरक है जब लग देह सकाम ।
कहै कबीर ते राम के जे सुमिरै निहकाम ॥
क० ग्र० पृष्ठ ३१

७ जोरू जूठणि जगत की भले बुरे का बीच ।
उत्तम ते अलगे रहैं निकटि रहैं ते नीच ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ३१

योगी जती तपस्वी, स यासी आदि वशधारी साधु मठ तथा मन्दिर म बठकर भक्ति का बहाने पट पालन कर रहे थे।[1] सभी अपने अपने स्वार्थ की ज्वाला म जल रहे थे। कोई ऐसा व्यक्ति नही था जो सबसे आत्मीयता का भाव रखता हो।[2] प्रमी तो खोजन पर भी नही मिलते थ।[3] कबीर प्रेम को अधिक महत्त्व दते थ क्योंकि प्रेम से ही परस्पर सहानुभूति होती है। प्रेम से ही मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध दृढ़ होता है। वे एक रूपक के माध्यम से कहते हैं कि मनुष्य तन रूपी नौका को मन रूपी केवट तथा रसना (वाणी) रूपी पतवार के सहारे भवसागर के पार स्वय उतर सकता है और दूसरों को भी पार उतार सकता है।[4] अर्थात तन मन एव वाणी के सहयोग से किये गए कर्म के सहारे ही मानव जीवन को सफल बनाया जा सकता है। वस्तुत प्रेम और भक्ति एसा गुण है जिसे पाकर मनुष्य स्वय महान बन जाता है और पूरी मानवता का उद्धार करता है। इससे व्यक्ति का ही नही वरन समष्टि का विकास होता है। पर कबीरकालीन समाज म इस प्रम और भक्ति का वास्तविक रूप तिरोहित हो गया था। इसीलिए कबीर का बार बार प्रम एव भक्ति की उपयोगिता पर जोर देते थ जिससे कि समाज के य सारे भेद दूर हो जाय और मानव का एक सुसगठित समाज बने।

समाज मे विलासिता एव अकर्मण्यता

कबीरकालीन समाज म विलासिता का प्रचार शासकों की स्वच्छन्द और विलासी वृत्ति के कारण हुआ। दश की शासन सत्ता राजा के हाथ म होती थी। राजा निरकुश होता था जो कि कुछ भी कर सकता था। यही कारण था कि राज घराने म देश की प्रसिद्ध सुन्दरियो का सग्रह किया जाता था और उनके शृगार साज पर फिजूल खर्च किया जाता था। राजसी ठाट बाट विलासी था और उसका प्रभाव सर्व साधारण पर पड़ना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप राजा से लेकर

---

१ जोगी जती तपी स यासी । मठ दवल बसि परस कासी ॥
क० ग्र० पृष्ठ २१०

२ कोई एसा ना मिला जासा रहिय लागि ।
सब जग जलता दखिया अपनी अपनी आगि ॥
क० ग्र० पृष्ठ ५२

३ प्रमी ढूढत मैं फिरौ प्रमी मिलै न कोइ ॥
क० ग्र० पृष्ठ ५३

४ तन करि नवका मन करि केवट रसना करउ बाड़ार ।
कहि कबीर भवसागर तरिहूँ आप तिरूँ बप तार ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १६

प्रजा तक विलासी वातावरण हो गया था । कबीर ने कई बार इस बात का उल्लेख किया है कि समाज में कनक और कामिनी के कारण सर्वत्र विलासिता थी ।[1] इसी विलासिता के कारण समाज का सर्वनाश हो रहा था । मनुष्य अपना गन्तव्य भूल गया था । वह इन्द्री सुख के लिए प्यासा था । यह वासना की प्यास स्त्री पुरुष दोनों में थी । पुरुष आचरण भ्रष्ट थे । स्त्रियाँ जान बूझकर व्यभिचार करती थी । ऐसी स्त्रियों को पति की तरफ से आदर नहीं मिलता था ।[2] पुरुष भी पर स्त्रीगामी थे ।[3] पर नारी सहवास से कोई विरला ही बचा था ।[4] इसमें मनुष्य की बुद्धि विवेक एवं स्वास्थ्य का ह्रास हो रहा था ।[5] इसलिए कबीर ने नर नारी की कामुकता को नरक कहा है ।[6] कामुकता से हरि भजन में बाधा पड़ती है । निष्काम भाव से हरि भजन किया जा सकता है । उन्होंने यह भी कहा कि काम वासना हेतु नारी के निकट रहना भी बुरा है । वे लोग नीच हैं जो नारी के निकट रहते है और वे उत्तम है जो नारी से दूर रहते हैं । वास्तव में उस समाज में भ्रष्टाचार फैलाने वाली स्त्रियाँ ही थी । इसीलिए कबीर ने बार बार उनकी निन्दा की है । वस्तुतः तत्कालीन

---

१ माया की मल जग जल्या कनक कामिनी लागि ॥
क० ग्र०, पष्ठ २७

२ कबीर जेकी सुन्दरी जाणि करि विभचार ।
ताहि न कबहूँ आदर प्रेम पुरिष भरतार ॥
क० ग्र० पष्ठ ६२ (सुन्दरिकौ अंग)

३ परनारी राता फिरे चोरी बिढता खाहिं ।
क० ग्र० पष्ठ ३० (कामी नर कौ अंग)

४ परनारी पर सुन्दरी बिरला बचै कोइ ।
खाता मीठी खाँड सी अन्तिकाल विष होइ ॥
क० ग्र० प० ३१

५ नारी सेती नेह बुधि विवेक सबही हरे ।
काइ गमाव देह कारिज कोइ ना सरे ॥
क० ग्र पष्ठ ३१

६ नर नारी सब नरक है जब लग देह सकाम ।
कहैं कबीर ते राम के जे सुमिरे निहकाम ॥
क० ग्र० पष्ठ ३१

७ जोरू जूठणि जगत की भले बुरे का बीच ।
उत्तम ते अलगे रहैं निकट रहैं ते नीच ॥
क० ग्र०, पष्ठ ३१

समाज मे विलासिता स्त्रियो के कारण थी और उस विलासिता के कारण पूरे समाज का पतन हो रहा था।

कबीर के समाज मे अधिकाश लोग विलासी वृत्ति के थे। जिनके पास धन सम्पत्ति थी वे तो विलासिता मे डूबे ही थे पर गरीब वर्ग भी उससे प्रभावित था। सामाजिक विकास के लिए कोई सगठित व्यवस्था नही थी। इसलिए जिसे जो अच्छा लगता वही करता था। कोई साधु सन्यासी बन कर घूमने लगता तो कोई पुजारी बनकर मन्दिर या मठ मे जाकर बैठ जाता।[1] ये पलायनवादी कामचोर लोग थे जो बिना काम किए पेट पालन करना चाहते। वास्तव मे ये लोग समाज के भार बने हुए थे जो कोई भी उत्पादक कार्य नही करते थे। ये लोग यो ही जिन्दगी गुजार रहे थे। सामाजिक उत्कर्ष की दृष्टि से इन लोगो का सहयोग ऋणात्मक था। इसीलिए कबीर ने वन मे जाकर जीवनयापन करने वाले तथा आश्रम मे रहकर षटकर्म करने वाले पाखण्डियो की कटु निन्दा की है।[2] कबीर स्वय कर्मवादी थे जो कर्म करके अपनी कमाई पर जीना चाहते थे। उन्होने इस असार ससार मे कर्म को ही सार रूप मे पाया था। सृष्टि की यह नश्वरता सबको मालूम थी फिर भी कोई इस पर ध्यान नही देता था।[3] कबीर का कहना था कि जीवित रहते हुए कुछ किया जा सकता है पर यह अन्धा ससारी जीव कर्म के महत्त्व को नही समझता। समाज मे ऐसे बहुत लोग थे जो अपने को कर्म से मुक्त कर लिए थे। कबीर ने ऐसे लोगो को सम्बोधित करते हुए कहा था कि अरे मनुष्यो ! सोते हुए क्या कर रहे हो ? जागो। और जागकर मुरारि का जाप करो। आखिर तो एक दिन लम्बे पाव पसारना ही है।[5] यहा मुरारि के जाप का अर्थ है ऐसे सत्कर्म करना

---

१ जोगी जती तपी सन्यासी मठि देवल बसि परस कासी।

क० ग्र० पृ० १३९

२ बनह बसे का कीजिये जो मन नही तजै बिकारा॥

क० ग्र० पष्ठ १४२

सध्या तरपन अरु षट करमा लागि रहे इनकै आसरमा॥

क० ग्र० पष्ठ १८२

३ केते मुये मरहिं गे केते। केतेक मुगध अजहू नहिं चेते॥

क० ग्र० पष्ठ १५६

४ जीवत ही कछू कीजै। हरि राम रसायन पीजै।
कहै कबीर जग धधा। काहे न चेतहु अधा॥

क० ग्र० पष्ठ १४१ पद २९६

५ कबीर सूता क्या करै जागि न जपै मुरारि।
एक दिना भी सोवणा लम्बे पांव पसारि॥ क० ग्र०, पष्ठ ४

जिससे अपनी दुखदायी परिस्थितियों का संहार किया जा सके। उन्होंने यह भी कहा कि जागने के लिए जंगल में भागने की आवश्यकता नहीं है। जागने वाला कहीं भी जाग सकता है।[1] चिंतन कहीं भी किया जा सकता है। गृहस्थ आश्रम में उपजा चिंतन अनुभूति प्रधान होता है। उसमें यथार्थ की ज्यादा सचाई होती है। इसीलिए कबीर बैरागी से अधिक गृही को महत्त्व देते हैं। वे उसी को त्यागी पुरुष मानते हैं जो गृह बैराग को समान समझता हो।[2] जिसके पास न झोली पत्र विभूति का झंझट हो और न औषधि मेलादि में विश्वास रखता हो, न माँगकर खाता हो और न भूखा सोता हो। काई भी सत्कर्म कर के नाम तक अपने घर आ जाता हो। जो स्वयं कमा कर अपना और अपने परिवार का खर्चा चला लेता हो—वही सच्चा और अकेला योगी है।[3] कबीर ऐसे ही व्यक्ति को अपना गुरु मानते थे। ऐसे ही व्यक्ति से सामाजिक संगठन बनाया जा सकता है। कबीर के समाज में ऐसे लोगों की कमी थी।

समाज में आर्थिक असमानता और कबीर पर उसकी प्रतिक्रिया

कबीरकालीन समाज का आर्थिक स्तर बहुत असमान था। शासक और शासित, धनी और गरीब का अंतर दिनोदिन बढ़ता जा रहा था। इस अंतर के कारण समाज में अनेक तरह के संघर्ष थे। अर्थ संग्रह पर सबकी दृष्टि थी। वस्तुतः राजनीतिक संघर्ष एवं सामाजिक संघर्ष के पीछे अर्थ संकलन की भावना थी। आर्थिक स्तर पर मनुष्य छोटा बड़ा समझा जाता था। धनी समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे

---

१ जागि रे जीव जागि रे।
कहै कबीर जाग्या ही चाहिए क्या गृह क्या बैराग रे।

क० ग्रं० पृष्ठ १५५, पद १५०

२ बनह बसे का कीजिए जे मन नहीं तजे विकार।
घर बन तत सम जिनि कीया ते विरला संसार॥

क० ग्रं०, पृष्ठ १४२, पद २००

३ बाबा जोगी एक अकेला।
जाके तीर्थ व्रत न मेला।
झोली पत्र विभूति न बटवा अनहद बेन बजावै॥
मांगि न खाइ न भूखा सोवै घर अंगना फिरि आवै।
पाँच जना की जमाति चलावै तासु गुरु मैं चेला॥

क० ग्रं० पृष्ठ ११८, पद २०७

और निर्धन तिरस्कृत । समाज में निर्धनों का कोई आदर नहीं था ।[1] धनी वर्ग विलासी एवं सुखी जीवन व्यतीत करता था तथा निर्धन वर्ग अनेक संकटों का सामना कर जीवित था । धनी ऊँचे महल में रहते थे और गरीब छनिहर घर में ।[2] धनी अच्छे कपड़े पहनते थे[3] और गरीब फटे पुराने । धनी गरीब के इस महान अन्तर को देखकर कबीर बहुत दुखी थे । इसीलिए उन्होंने पूँजी पतियों तथा विलासी जीवन व्यतीत करने वाले धनियों की घोर निन्दा की । उनके विचार से टूटी झोपडी में रहने वाला राम का भक्त धनियों से अच्छा है । ऊँचे मन्दिर को जला देना चाहिए जहाँ राम की भक्ति तथा प्रेम व्यवहार नहीं है ।[4] धनियों में गरीबों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी । वे गरीबों को ब्याज पर पैसा देकर उनका शोषण कर रहे थे ।[5] एक तरफ धनी लोग धन संचय कर रहे थे दूसरी तरफ गरीब वर्ग भूखा मर रहा था । कबीर ने धन संचय करने वालों को मृतक कहा और खाने पीने पर खर्च करने वालों को जीवित ।[6] क्योंकि संचित धन को मरने के बाद कोई सिरपर नहीं लेकर जाता । सब कुछ यहीं रह जाता है । सब कुछ लोग देख और समझ रहे थे फिर भी इस कनक के आकर्षण में लोग पड़े हुए थे । ज्ञानी अज्ञानी पण्डित मुल्ला सभी इस अर्थ के पीछे लगे थे । गुरु शिष्य में भी लालच का दाँव चल रहा था । कबीर ने इस धन संचय की प्रवृत्ति को गलत बताया । इसीलिए उन्होंने पूँजी पतियों (महाजनों) का विरोध किया क्योंकि इन्हीं लोगों से गरीबों का शोषण हो रहा था । धन का अभाव भक्ति में भी बाधक था तथा सामाजिक संगठन का विघटन करने वाला था ।

---

१ निरधन आदर कोइ न दई ।
लाख जतन कर ओहु चित न धरेई ॥ क० ग्र०, पृष्ठ २३० (परिशिष्ट)

२ कबीर कहा गरबियौ ऊँचे देखि आवास ॥ क० ग्र० पृष्ठ १६
छिनहर घर अरु छिनहर टाटी । घन गरजत कंपै मेरी छाती ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १३५ पद २७३

३ उजल कपड़ा पहिरि करि पान सुपारी खाहिं ॥ क० ग्र०, पृष्ठ २०

४ राम जपत दालिद भला, टूटी घर की छानि ।
ऊँचे मंदिर जालि दे जहाँ न सारंग पानि ॥ क० ग्र० पृष्ठ ४१

५ कलि का स्वामी लोभिया मनसा धरी बधाइ ।
देहिं पईसा ब्याज कौं लेखा करता जाइ ॥ क० ग्र०, पृष्ठ २८

६ सोइ भुये धन संचते सो उबरे जे खाइ ॥ क० ग्र० पृष्ठ २६

७ कबीर सो धन संचिये जो आगे कूं होइ ।
सीस चढ़ाय पोटली ले जात न देख्या कोइ ॥ क० ग्र०, पृष्ठ २६

कबीर ने कहा था कि भूखे भजन भी नहीं हो सकती ।[1] जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक है । पर सामाजिक दुर्व्यवस्था से सबको इतनी सुविधाएँ नहीं प्राप्त थीं कि सबको उचित रूप में भोजन मिल सके । इस समाज में कोई सुख साधना से पूर्ण सम्पन्न था और कोई फटे पुराने वस्त्र भी नहीं पा रहा था ।[2] कबीर इस सामाजिक दशा पर बहुत उदास थे । वे कहते थे कि थोड़े दिन के लिए धन को मर मर कर क्या इकट्ठा किया जाय । इतना सम्पन्न तो रावण था पर क्या लेकर गया ?[3] रावण ही नहीं न जाने कितने राजा महाराजा बावडी, महल, किला आदि को छोड़कर चले गए ।[4] इस दुनिया का कुछ भी अपना नहीं । कुछ भी स्थिर नहीं । सब कुछ नश्वर है । इसलिए सम्पत्ति संग्रह की भावना निरर्थक है । सम्पत्ति को पाकर न तो अधिक सुखी होना चाहिए और न अधिक दुखी हो । सम्पत्ति के नाम पर सुख दुख का भाव रखना मूर्खता है । सम्पत्ति उतनी ही चाहिए जितने से कि अपना पेट पालन हो सके ।[5] हर एक को भोजन और वस्त्र मिल जाय यही सबसे बड़ी सम्पत्ति है । कबीर ने कहा था कि धन संग्रह का भाव छोड़कर सत संगति करना चाहिए । सत संगति से मनुष्य सांसारिक दुखों को भूल जाता है । उसके चित्त में सत्य के भाव जगते हैं । सत्य की उपलब्धि ईश्वर की उपलब्धि है । जो दास सत संगति और दूसरों की सेवा

---

१ भूखे भगति न कीजै । यह माला अपनी लीजै ।

क० ग्र०, पृष्ठ २४० (परिशिष्ट)

२ एकनि मे मुक्ताहल मोना । एकनि व्याधि लगाई ॥
एकनि दीनी गरे गूदरी एकनि सेज पयारा ॥

क० ग्र०, पृष्ठ ९३, पद १०५

३ का मागू कुछ थिर न रहाई । देखत नैन चल्या जग जाई ॥
इक लष पूत सवा लष नाती । ता रावन घर दिया न बाती ॥
लंका सा कोट समंद सी खाइ । ता रावन का खबरि न पाई ॥
आवत संग न जात संगाती । कहा भयो दरि बाधे हाथी ॥
कहै कबीर अंत की बारी । हाथ झाडि जैसे चले जुवारी ॥

क० ग्र०, पृष्ठ ९१–९२, पद ९८

४ ना को बंध न भाई साथी बाँधे रहे तुरंगम हाथी ।
मडी महल बावडी छाजा, छाडि गये सब भूपति राजा ॥

क० ग्र०, पृष्ठ ९२, पद १००

५ अधसेर माँगो दाल, मोको दोनो वखत जिवाले ॥

क० ग्र०, पृष्ठ २४० (परिशिष्ट)

करता है उसके साथ ईश्वर रहते हैं।[१] कबीर ने धन संग्रह को इसलिए बुरा कहा कि इसी से मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध टूटता है और सामाजिक संगठन बिगड़ता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार से समाज में अनेक तरह की असमानताएं बन जाती हैं जिससे पूरे जन समुदाय का अहित होता है। कबीर समाज को इस तरह नहीं देखना चाहते थे। वे समाज में सर्वोदय चाहते थे। इसीलिए वे धन संग्रह का उद्देश्य परमार्थ मानते थे। व्यक्तिगत रूप से धन संग्रह होना ही नहीं चाहिए। व्यक्तिगत सम्पत्ति सामाजिक सम्पत्ति है। इसलिए उसका उपभोग समाज द्वारा और समाज के लिए होना चाहिये। धन या सम्पत्ति को देखकर किसी को दुखी या सुखी नहीं होना चाहिये। सम्पत्ति और विपत्ति दोनों समान हैं। जो कर्ता करता है वही होता है।[२] इस प्रकार कबीर के समाज में अनेक तरह की आर्थिक असमानता दिखायी देती हैं जिसके कारण लोग दुखी और गरीब थे। इन्हीं सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं की प्रतिक्रिया में कबीर बोल रहे थे।

निष्कर्ष

कबीरकालीन समाज में हिन्दू धर्म और मुसलमान धर्म तथा उनके रीति रिवाजों में काफी असमानता थी जिसके कारण दोनों जातियों में पारस्परिक मत भेद था। इस मत भेद के कारण दोनों में वमनस्य और संघर्ष था। राम रहीम के नाम पर दोनों में झगड़ा था जिससे सामाजिक शान्ति भंग हो चुकी थी। समाज में अन्धानुकरण अधिक था इसलिए लोगों में स्वतन्त्र चेतना का विकास नहीं हो सका। शासकों की विलासिता का प्रभाव साधारण जन जीवन पर होने के कारण उनमें अनेक दुर्गुण आ गए थे जिससे समाज में अनेक तरह के भ्रष्टाचार फले थे। कोई सामाजिक व्यवस्था न होने के कारण समाज में बहुत से लोग बेकार थे जो साधुओं के भेष में इधर उधर घूमते फिरते थे। राजनीतिक परिवर्तनों एवं अत्याचारों के कारण समाज में आर्थिक असमानता थी जिससे सामाजिक प्रगति रुक गई थी। कबीर ने तटस्थ होकर समाज के इस बाह्य और अन्तरंग को देखा था। जहाँ भी उन्हें कुछ कमी दिखायी दी उसकी उन्होंने आलोचना की। जिन पाखण्डों एवं

---

१ कहैं कबीर हरि गुण गाइ ले संत संगति रिदा मझारि।
जो सेवग सेवा करै ता संगि रमै रे मुरारि॥

क० ग्र० पृष्ठ ९६–९७ पद १२१

२ संपति देखि न हरषिये विपति देखि न रोइ।
ज्यूँ सम्पति त्यूँ विपति है करता करै सो होइ॥

क० ग्र०, पृष्ठ ९६–९७, पद १२१

दुर्व्यवस्थाओं का वर्णन कबीर के काव्य में पाया जाता है वस्तुत वे तत्कालीन समाज के मूल में विद्यमान थी। कबीर मानव समुदाय को विशुद्ध सामाजिकता की दृष्टि से देखते थे इसीलिए उस समाज में जितने ऊपर से आरोपित आवरण थे उसको व उतार फेंकना चाहते थे। वे मानव जीवन के व्यवहार को एक धर्म के रूप में देखना चाहते थे और समाज में प्रचलित सारे कर्मकाण्डों का तिरस्कार करना चाहते थे। कबीर का विरोध उन सारी सामाजिक बुराइयों से था न कि किसी धर्म या सम्प्रदाय से। वास्तव में कबीर द्वारा किया गया विरोध एक वर्ग का विरोध था जिसका नेतृत्व कबीर ने किया था। इन सब पाखण्डों की प्रतिक्रिया में कुछ कहने के लिए कबीर ही समर्थ थे जो इतने साहस से बोल सकते थे लोगों को मीठी और सच्ची बातें सुना सकते थे। पांडे मुल्ला को फटकार सकते थे। वास्तव में कबीर ने जो कुछ कहा है वह सब साधारण के लिए कहा है वह पूरे समाज की भलाई के लिए है और जो पांडे मुल्ला को फटकारा है वह कबीर पर सामाजिक प्रतिक्रिया है। कबीर पांडे और मुल्ला को ही समाज समझ रहे थे। क्योंकि धार्मिक समाज इन्हीं लोगों का था। कबीर पांडे और मुल्ला पर जब अपना आक्रोश प्रकट करते हैं तो उसका सारा दबाव समाज पर होता है न कि उनके व्यक्तिगत स्वरूप पर। वस्तुत कबीर अपनी कटु उक्तियों द्वारा हिन्दू मुसलमान के वर्ग पर चोट करते हैं। यही तत्कालीन समाज की कबीर पर प्रतिक्रिया है। यदि समाज वैसा न होता तो कबीर ऐसा कभी नहीं कहते। अत उनका सारा का सारा काव्य प्रतिक्रिया में उभरा है।

पचम अध्याय

कबीर का अभीष्ट समाज

कबीर का य के अध्ययन स पता चलता है कि वे समाज म प्रचलित परम्परागत रूढ़ियां जन जीवन मे फले विविध कमकाण्ड एव लोगो के व्यक्तिगत दुगुणो की भत्सना कर के एक अभीष्ट समाज की स्थापना करना चाहते थ । इसीलिए उन्होने राजनीतिक दुव्यवस्था एव धार्मिक मतभेद का डटकर विरोध किया था और साथ ही साथ इन भेदो को मिटाने का प्रयास भी किया था । इससे स्पष्ट होता है कि उनके भीतर समाज को एक ऐसा रूप देने की भावना थी जो सभी दृष्टियो स उचित तथा निर्दोष हो । यहाँ उनके अभीष्ट समाज को निम्नलिखित रूपो म समझने का प्रयास किया गया है—

१ सन्त समाज
२ सामान्य जनता
३ राजनीतिक एव धार्मिक नेता वग
४ मानव मात्र

१ सन्त समाज

इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि उस समय का स त समाज कसा था कितु कबीर ने उस समाज म प्रचलित धार्मिक आडम्बरो परम्परागत कुरीतियो एव मिथ्याचारो म लग जन समुदाय की कटु आलोचना की है क्योंकि तत्कालीन जनता स्मृति, वेद पुराण तथा धर्मादि के नाम पर विविध वर्गों म बट गयी थी जिसस सामाजिक एकता के सूत्र टूट गए थ । मानव मानव म अनेक भेद की दीवारें खडी हो गयी थी । इन भेद की दीवारो को गिरा कर समाज को एक समतल धरातल पर लाना था । पूरे मध्यकालीन युग म इस बात को केवल कबीर ही अनुभव कर रहे थ और ऐसे समाज के निर्माण म व साधु स तो क सहयोग को लेकर प्रयत्नशील थ । इसीलिए उन्होन सन्त समाज की स्थापना की थी । उनका यह सन्त समाज जाति, धम एव भाषा की सकुचित सीमाओ स पर था । यह सन्त समाज एसा जन समाज था जिसम किसी भी जाति का व्यक्ति आश्रय पाता था । जहाँ प्राचीन वेदान्त न चातुर्वण्य समाज का निर्माण किया था और जन समुदाय को

चार भागों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) में बाँट दिया था वहीं कबीर के नए वेदान्त ने सभी भेदों को मिटा कर एक संगठित मानव समाज के निर्माण की व्यवस्था की थी। कबीर इस नए वेदान्त के प्रथम प्रचारक और प्रसारक थे।

कबीर जिस समय अपनी भक्ति के प्रचार द्वारा संत समाज का संगठन कर रहे थे उस समय हिन्दू समाज पर राम और राम की भक्ति का बहुत प्रभाव था। जाति पाँति का बंधन बहुत सबल था। प्रायः उच्च जाति के लोग भक्ति के अधिकारी थे। वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सवर्ण तथा पवित्र थे और शूद्र या दास अपवित्र।[1] ये निम्न जाति के दास सबकी सेवा तथा उत्पादक कार्य करते हुए भी अपवित्र थे और सवर्ण सबका शोषण करते हुए भी पवित्र। यह समाज द्वारा मान्य व्यवस्था थी। इससे समाज में छुआछूत, ऊँच नीच तथा छोटे बड़े का भेद पैदा हुआ। इस भेद के अलावा भी समाज में अनेक उपभेद थे। ज्ञानी अज्ञानी का भेद तो पहले से ही चला आ रहा था। हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों में पढ़े लिखे लोग (शास्त्रज्ञ) माने हुए ज्ञानी थे। तत्कालीन समाज के पाँडे और मुल्ला इसी स्तर के ज्ञानी थे। इसी भरोसे पर साधारण जनता ने इनके बताए हुए उपदेशों, कर्मकांडों और पाखण्डों का अनुसरण किया। पर समाज में प्रचलित ये सब कर्मकाण्ड मानव को गलत दिशा की ओर ले जा रहे थे।[2] कबीर इन सब पाखण्डों से दूर व्यापक मानवता के क्षेत्र में सबको पुकार रहे थे जहाँ न जाति पाँति का भेद था और न ज्ञानी अज्ञानी का। कबीर की भक्ति में ज्ञानी अज्ञानी, पढ़ा अनपढ़ कोई भी भाग ले सकता था। कबीर ने राम भक्ति की साधना को जीवन का हेतु माना था।[3] भक्ति-क्षेत्र में जाति भेद कोई महत्व नहीं रखता। शूद्र म्लेच्छ का भेद तो आत्मा को न पहचानने वाले के मन में रहता है।[4] भक्ति कोई भी कर सकता है। भक्ति के लिए निश्चित माला, आसन तथा मूर्ति आदि की कोई जरूरत नहीं। भक्ति किसी भी समय और किसी भी स्थान पर की जा सकती है। भक्ति तो आत्म चिन्तन है। इसकी साधना मन में होती है।[5] मन बड़ा चंचल है। इस पर नियन्त्रण पाना हरि

---

१ भारतीय संत परम्परा और समाज —डा० रांगेय राघव पृष्ठ १०६

२ पीछैं लागा जाइ था लोक वेद के साथ। क० ग्रं०, पृष्ठ २

३ जा नर राम भगति नहि साधी सो जनमत काहे न मुवो अपराधी ॥

क० ग्रं०, पृष्ठ ९७

४ सुद्र मलेच्छ बसै मन माहीं, आतमराम सु चाह्या नाहीं ॥

क० ग्रं० पृष्ठ ११२

५ मन मैं आसन मन मैं रहना। मन का जप तप मन सूँ कहना ॥

क० ग्रं० पृष्ठ ११८ पद २०६

का पाना है । मन के नियंत्रण से हरि भजन सहज होता है । हरि भजन से व्यापक दृष्टि मिलती है ।[1] ऊँच नीच का भेद मिटता है । सब मनुष्य एक समान दिखायी देने लगते हैं ।[2] सब में एक मानव प्रेम उपजता है । सब की एक जाति बनती है । सभी एक धर्म से जुड़ते हैं । सभी जातिभेद से मुक्त होते हैं । सभी एक रहन सहन के व्यवहार में एक साथ उठते हैं । इसलिए जीवन में भक्ति का होना अनिवार्य है । इसीलिए कबीर ने भक्तिहीन जीवन को कोई जीवन नहीं माना ।[3] बिना भक्ति के मनुष्य संसार सागर में डूब मरता है ।[4] भक्ति से मनुष्य को सम्यक दृष्टि मिलती है । बिना दृष्टि के मनुष्य अंधा है । उसे जीवन, जगत् का कुछ भी ज्ञान नहीं हो पाता । कबीर के समाज में ऐसे अंधे बहुत थे । जो भक्ति से न्यारे होकर स्वयं अज्ञान सागर में डूब रहे थे और दूसरों को भी डुबा रहे थे ।[5] ऐसे लोगों से कबीर बहुत भयभीत थे ।

कबीर के अधिकांश पदों में जाति एवं धर्म के प्रति विद्रोह मिलता है और साथ ही साथ वे ऐसे धर्म एवं जाति को मिटा देना चाहते थे जिससे सामाजिक संगठन बिगड़ता है । जाति एवं धर्म के भेद से कबीर का समाज खण्डित हो गया था । इसलिए कबीर इतने जागरूक होकर लोगों को सुधार रहे थे । हिन्दू मुस्लिम को समझा रहे थे ।[6] उनकी भक्ति साधना सामाजिक सुधार की साधना थी । वे हर मानव में ईश्वर का दर्शन कर रहे थे । वे ही उनके पीर मालिक और भगवान थे ।[7] प्रत्येक भक्त उनका भगवान था । वे इस दुनिया के पर किसी और लोक की आशा नहीं करते थे । उन्हें पूरा भरोसा था कि बैकुण्ठ की आशा से मनुष्य हरि

---

१ पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ११२

२ ऊँच नीच सम सरिया । ताथै जन कबीर निसतरिया ॥

३ भगति को हीन जीवन कछू नाही उतपति परलै बहुरि समाही ॥

क० ग्र० पृष्ठ १७३

४ भगति बिन भौजलि डूबत है रे ॥ क० ग्र०, पृष्ठ १४४, पद ३१०

५ ऐसे लोगनि सूँ का कहिये ।
जे नर भये भगति थैं न्यारे, तिनथै सदा डराते रहिये ॥
आपण बूडै और को बोडै अगनि लगाइ मंदिर मैं सोवैं ॥
आपण अंध और कूँ काना, तिनको देखि कबीर डराना ॥

क० ग्र०, पृष्ठ १०१ पद १४४

६ कहै कबीर मैं हरि गुन गाऊ, हिंदू तुरक दोउ समझाऊ ॥

क० ग्र० पृष्ठ १३०, पद २५६

७ मन मसीत मैं किनहू न जाना । पचपीर मालिक भगवाना ॥

क० ग्र०, पृष्ठ १३०, पद २५६

चरण तक नही पहुँच सकता। हरि चरण तक पहुँचने का सीधा माग सत् सगति है। सत सगति समाज मे रह कर ही सम्भव है। समाज म प्रचलित कनी सुनी बातो पर विश्वास नही करना चाहिए जब तक कि उन तक पहुँचकर देख न लिया जाए। मनुष्य समाज मे हर एक क्षण रहता है और सत सगति कर रहा है। इसलिए साधु सगति ही बकुठ है।[1] साधु सगति म सब कुछ देखा, सुना और समझा जा सकता है। साधु सगति ही प्रत्यक्ष जीवन दशन है। समाज के सभी व्यक्ति साधु हैं। समाज के विविध कर्मों मे लगे हुए व्यक्ति यथा व्यवसाय तथा मजदूरी आदि करके जब कही एकत्रित होते हैं तो सब एक जगह सामूहिक रूप से किसी विषय पर विचार करते हैं और उस समय सब विविध धर्मों, वर्गों एव अन्य अपनी आर्थिक व्यवस्थाओ स अलग होते हैं सब साधु होते हैं। सब अपने अपने कम की साधना मे पारगत होते हैं। इन अनुभवी साधुओ की साधना से सामूहिक उपजा विचार सत सगति का फल है। यही सत सग समतामूलक सिद्धान्त बनाता है। जहाँ मानव मानव की वाणी बोलता है। पच परमेश्वर का न्याय करता है। यहा मनुष्य समशील गुण धारण करता है। वह धम, जाति भाषा तथा रहन सहन के विविध भेदो को भूलकर एक बनता है। कबीर ने अपने सत सग द्वारा एक महा सत सग बनाना चाहा था। इसीलिए उन्होंने बार-बार साधु सगति करने का उपदेश दिया था। साधु सगति स मनुष्य को सुमति मिलती है। उसकी कुमति का नाश होता है। उन्होने परलोक में विश्वास कर बाह्य कर्मकाण्डो को करने वालो को कहा था कि मथुरा द्वारिका तथा जगन्नाथ का सर करने वालो को मुक्ति नहा मिलती। मुक्ति तो साधु सगति और हरि सगति स ही सम्भव है।[2] इस मल ससार म कबीर की भक्ति साधना नाम साधना थी जिसे कबीर बडी दृढता के साथ अपनायें हुए थे।[3] और इसी साधु सगति के बल

---

१ चलन चलन सबको कहत है। ना जानौ बकुठ कहा है।
जब लग है बकुठ की आसा तब लग नही हरि चरन निवासा॥
कहै सुन कसे पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहि जइये।
कहैं कबीर यहु कहिय काहि साधु सगति बकुंठहि आहि॥
क० ग्र०, पृष्ठ ७५, पद २४

२ मथुरा जाव द्वारिका भाव जाव जगनाथ।
साध सगति हरि भगति बिन कछू न आव हाथ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ३८

३ यहु ससार सकल है मेला राम कहैं ते सूचा।
कहैं कबीर नाव नहि छाडौं गिरत परत चढि ऊँचा॥
क० ग्र० पष्ठ ९९, पद १२९

पर व ग म जीवन जा रहे थे ।[1]

जहाँ एक तरफ कबीर अपने मत का प्रचार कर सन्त समाज के निर्माण म प्रयत्नशील थे वहीं पांडे मुल्ला और काजी द्वारा इनके मत का विरोध हो रहा था । दोनों के दो वग था पुरुष और दोनों वर्गों म अपने अपने मत प्रचार की सीधी सीधी चल रही थी । एक इहलोक म विश्वास रखता था और दूसरा परलोक म । एक भक्ति तथा सत्संग को महत्व देता था तथा दूसरा कमकाण्ड पूजादि को । इस प्रकार दो भागों म जन जीवन चल रहा था । एक तरफ पांडे, मुल्ला अपने इस जाति एवं कमकाण्ड को कायम रखना चाहते थे दूसरी तरफ निम्न वग के लोग सत संगति एवं सामाजिक संगठन के बल पर उसे तोड़ना चाहते थे । कबीर निम्न वग के सभी साधु संतो एवं गृहस्थो के नेता थे । उनके चारों तरफ श्रमजीवी वग था । इस वग म सभी जाति एवं सभी धर्म के लोग सम्मिलित थे । इन सबके बीच कबीर अपनी भक्ति एवं अपने विचार का प्रचार कर रहे थे । उनके साथ प्राकृतिक सत्यो का सम्बल था और उसी के बल पर वे सबको पराजित कर देते थे । कबीर मानव तथा सभी जीवों को एक समान दृष्टि से देखते थे ।[2] जीवों के भिन्न शारीरिक भेद हैं वे सब प्रकृति द्वारा हैं पर मानव के ये भेद मनुष्य द्वारा क्यों बनाए गए ? कबीर के अनुसार सभी मानव मानिज हैं । सभी का एक धम है सभी की एक जाति है । उत्पत्ति की दृष्टि से सभी समान हैं । सारे तुरक हिन्दू माँ और पिता के संयोग से पैदा हुए हैं ।[3] सभी गर्भावस्था म दस मास माँ के पेट म रहते हैं । सभी को पैदा करने वाली माँ होती है । सभी के अन्दर एक ही लोहू (रक्त) तथा एक ही प्राण की व्यवस्था रहती है । तो फिर समझ म नहीं आता कि किस ज्ञान से लोग अलग जातिवाले बनते हैं ।[4] वास्तव म इन अज्ञानियों को कोई सतगुर नहीं मिला जिसके

---

१ गुर प्रसाद साध की संगति जग जीतैं जाइ जुलाहा ॥
क० ग्र० पृष्ठ १६७ पद ४०२

२ सब जीव साँई के प्यारे उबरहु ग किस बोले ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ८४ पद ६२

३ जब नहिं होते तुरुक न हिन्दू माँ का उदर पिता का व्यद ॥
क० ग्र० पृष्ठ १८१ रमणी

४ एकही बास रहे दस मासा । सूतक पातग एक आसा ॥
हम तुम माहै एक लोहू, एक प्रान जीवन है मोहू ॥
एक ही जननी ज या ससारा, कौन ज्ञानथ भये निनारा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १८५ रमणी

कारण अविद्या (अज्ञान) के अधकार म ये भटक रह हैं।[1] वस्तुत सभी हिंदू मुसलमान की एक ही जाति है एक ही माग है। न कोई ऊँचा है न कोई नीचा है। मध्य का रास्ता समानता का है। जो इस रास्त पर है वही राम का भक्त है।[2] इस ससार मे नीच कोई नही है। नीच उस ही कहा जा सकता है जो भक्त नही है। भक्त समाज को बनाता है। जो भक्ति नही करता है वह समाज को बिगाडता है। समाज का शत्रु है। समाज और भक्त का रूप अभेद है। इस भक्त रूप को अपनत्व का भाव मिटा देने स पाया जा सकता है। भक्त और राम म कोई भेद नही है।[3] भक्त समाज का निमाण करता है और समाज एक बसी हुई दुनिया का। भक्त उस दुनिया की एक इकाई है। यही भक्त अपनी इस लघु इकाई को भूलकर विस्तत समाज का रूप लेता है। कबीर इसी भाव को लकर सभी मनुष्यो म ईश्वर का दशन कर रहे थ।

घट घट मे परमात्मा है। इसलिए किसी को छोटा बडा तथा ऊँच नीच नही समझना चाहिए। मानव को इस विविध भेद म देखना परमात्मा के रूप को बिगाडना है। मानव समाज म धनी गरीब का स्तर बनाना ईश्वर तथा मानवता क प्रति अन्याय है। भक्तो को इस भेद को मिटाना चाहिए।[4] कबीर न इस भेद का मिटान की पूरी कोशिश की थी। इसीलिए उ होन सबको सत्य और ईमानदारी का उपदश

---

१ ज्ञान न पायोबावरे धरी अविद्या मैंड।
सतगुर मिल्या न मुक्ति फल ताथ खाई बड॥
क० ग्र० पष्ठ १८५, रमणी

२ उतपति यद कहाँ थ आया जोति धरी अरु लागी माया।
नही को ऊँचा नही को नीचा जाका प्यड ताही का सीचा॥
जे तूँ बाभन बभनी जाया, तो तूँ आन बाट है काह न आया॥
जे तूँ तुरक तुरकनी जाया तौ भीतरि खतना क्यूँ न कराया॥
कहैं कबीर मधिम नही कोई सो मधिम जा मुखि राम न होई॥
क० ग्र० पृ० ७९ पद ४१

३ कहि कबीर मै मेरी खोई। तबही राम अवर नही कोई॥
क० ग्र०, पष्ठ ८४ पद ६६

४ खालिक खलक खलक मैं खालिक सब घट रह्यो समाई।
+ + +
कहैं कबीर मैं पूरा पाया सब घटि साहब दीठा॥
क० ग्र०, पष्ठ ८१, पद ५१

५ 'माध्यम' दिसम्बर १९६७—नया वेदात—सगमलाल पाण्डेय, पृष्ठ ३१

दिया था।[1] जिससे कि सब अपने-अपने परिश्रम तथा गुण के अनुसार उत्पादन कार्य करके समाज में सामूहिक प्रगति एवं शान्ति स्थापित करें। व्यक्तिगत आर्थिक विकास सामाजिक प्रगति में बाधक होता है। इससे सामाजिक संतुलन बिगड़ता है। जन-जन में संघर्ष होता है जिससे समाज में अशान्ति बढ़ जाती है।

कबीर स्वयं गृहस्थ थे। गृहस्थ आश्रम में रहकर उन्होंने अपनी भक्ति का प्रचार एवं प्रसार किया था। उनकी भक्ति पूर्ण कथनी करनी और रहनी की व्यवस्था थी। इसी से उन्होंने एक नया सत् संगी समाज बनाया था। जो निजी आर्थिक व्यवस्था पर आधारित था।[2] इस वर्ग के सभी सदस्य गृहस्थ आश्रमी थे। काम करते हुए हरि भजन तथा नाम स्मरण करते थे। कबीर स्वयं कपड़ा बुनकर अपनी जीविका चलाते थे और साथ ही साथ सत्संग भी करते थे। कबीर के इस सत् संग का उद्देश्य था समाज में समता लाना। उन्होंने इस सत संग को राष्ट्रीयता के स्तर पर लाना चाहा था। उनके विचारों में इतने मानवतावादी तत्व थे कि इस सत्संग को विश्व व्यापक बनाया जा सकता था। यद्यपि इस सत्संग के विकास में राजनीतिक एवं आर्थिक सहयोग का अभाव था पर कबीर के साथ सारा उत्पादक वर्ग था। सारा श्रमजीवी वर्ग था जो समाज को कभी भी धक्का दे सकता था। इन्हीं लोगों में धार्मिक पुनर्जागरण हुआ था और इन्हीं लोगों ने धार्मिक क्रान्ति भी की थी। कबीर इस वर्ग के नेता थे जो भक्तों के संगठन से समाज में महा सत्संग की स्थापना कर रहे थे।

बिना सत्संग के मानव अपने में सुधार नहीं कर सकता। सत्संग ही मनुष्य को सदाचारी बनाता है। जिस समाज में सत्संग नहीं है वहाँ भ्रष्टाचार अधिक है।[3] कबीर कालीन समाज में विविध भेदों के कारण सत्संग का क्रम बिगड़ गया था।

---

१ साच सील का चौका दीजै। भाव भगति की सेवा कीजै॥

क० ग्रं०, पृ० १८६, रमणी

२ ग्रिह जिनि जानौ रूडौ रे।
कंचन कलस उठाइले मंदिर राम कहे बिन धूरी रे॥
सब य मीकी सत मडलिया हरि भगतन की भेरी रे।
गोविंद के गुन बैठे गहों सहै टूकी टेरी रे।
ऐसे जानि जपौ जग जीवन जम सूं तिनका तोरौ रे॥

क० ग्रं०, प० ८९, पद ८५

३ दास कबीर बुनत सब पाया दुख ससार सब नासा॥

क० ग्रं०, प० १३९, पद २८८

४ 'माध्यम' दिसम्बर १९६७—नया वेदान्त—ले० सगमलाल पाण्डेय, पृ० ३२

कुसंगति में पड़कर मानव मानव का रक्षक न बनकर भक्षक था । राजा प्रजा का शोषण कर रहा था तो धनी गरीब का । इसी लिए कबीर ने सबको सत्संगति करने का उपदेश दिया ।[1] कबीर उसी दिन को भला दिन मानते थे जिस दिन संत मिलें तथा सत्संगति का अवसर प्राप्त हो । सत्संगति से सारे शारीरिक विकार दूर होते हैं ।[2] और मनुष्य को आत्म सुख की उपलब्धि होती है । जो मनुष्य सत्संग नहीं करता है वह जीवन में अनेक दुख भोगता है ।[3] मनुष्य पार्थिव पदार्थों के संग्रह में कभी भी सुख नहीं पा सकता । घर जोड़ने की माया मनुष्य को पथ भ्रान्त कर देती है । हाथी, घोड़ा, वाहनों आदि धन-संग्रह मनुष्य को उन्माद वाले हैं । कोई किसी का नहीं है । यहाँ कुछ भी अपना नहीं है । लोग झूठा ही कहते हैं यह घर मेरा है ।[4] इसलिए ये जितने सब लालच भरे आकर्षण हैं सब विष के समान, प्राण घाती हैं । कबीर कहते हैं, अरे अभागे ! इस विषरूपी लालच को छोड़कर राम नाम का जाप क्या नहीं करते । सत्संग द्वारा राम रस का स्वाद लेने वाले सब तर गये पर बकवादी बीच में ही डूब मरे ।[5] तत्कालीन समाज के पाँडे और मुल्ला तक वितर्क कर के समय बिताने वाले बकवादी थे । धर्म और जाति के नाम पर झगड़ने वाले साधू थे । उनके व्यवहार में जीवन की सहजता नहीं थी । सब ऊपर के व्यवहार में भूले हुये थे और जीवन की नकली धारणाओं में आस्था रखते थे । कबीर इन सब ऊपरी धारणाओं के विरोधी थे क्योंकि इन ऊपरी धारणाओं में जीने वाला व्यक्ति कभी सहजता की स्थिति तक नहीं पहुँच सकता ।

---

१ कबीर संगति साध की वेगि करीजै जाइ ।
दुरमति दूरि गवाइसी देसी सुमति बताइ ॥ क० ग्र० पृ० ३८

२ कबीर सोई दिन भला जा दिन संत मिलांहि ।
अंक भरे भरि भेटिया पाप सरीरौ जांहि ॥ क० ग्र०, पृ० ३९

३ कहै कबीर बर बहु दुख सहिये राम प्रीति करि संगही रहिये ॥
क० ग्र०, पृ० ९०, पद ९०

४ झूठा लोग कहैं घर मेरा ॥
बहुत बध्या परिवार कुटुम्ब मैं कोई नहीं किस केरा ॥
जीवत आँखि मूँदि किन देखौ संसार अंध अंधेरा ॥
हस्ती घोड़ा बल बाहणी संग्रह किया घनेरा ।
कहैं कबीर एक राम भजहु रे बहुरि न ह्वै गा फेरा ॥
क० ग्र० पृ० १२५-२६, पद २३८

५ विष तजि राम न जपसि अभागे, का बूडे लालच के लागे ।
ते सब तिरे राम रस स्वादी कहैं कबीर बूडे बकवादी ॥
क० ग्र०, पृ० १६०, पद ३७५

जीवन की सहज अवस्था वह रहनी की अवस्था है जिसे पाकर मनुष्य किसी का अहित नही करता। इसस समाज के सभी व्यक्ति सुखी एव सुरक्षित रहते हैं। इस लिए यह सहज एक धम है, एक सत्य है। कबीर ने कहा है कि इस सहज भाव से विषय वासनाओ का त्याग किया जाता है[1], सासारिक आकर्षणों से मुक्त हुआ जाता है।[2] सुत वित्त कामिनी कामादि के मोह से निरासक्त हुआ जाता है[3] वही अवस्था हरि के पाने की अवस्था है। वही अवस्था यथाथ तथा सत्य तक पहुँचने की अवस्था है।

यह सहज भाव मनुष्य के मन म तभी आता है जब वह भौतिक जगत की लालच (आसक्तता) छोड दे तथा काम क्रोध मोह लोभादि विकारो से मुक्त हो जाए। इन विचारो तक पहुचने मे भी एक साधना है बिना कष्ट के मनुष्य इन विकारा से मुक्त नही हो सकता इसके लिए अपने आप को पहचानना आव श्यक है।

कबीर न कहा है कि अपने आप को पहचानन वाला व्यक्ति ज्ञानी तथा विचारी होता है।[5] जो मनुष्य अपने आप को समझता नही, वह आनन्द सुख से परे होता है। अपने भीतर अनुभूत आत्मज्ञान आन ददायी होता है।[6] बिना अनुभूति का ज्ञान अज्ञान है जिसे मनुष्य देखा देखी पशु की भाँति ढोता रहता है।

---

१ सहज सहज सब को कहै सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ॥
क० ग्र० प० ३२

२ पाँचू राखै परसती सहज कहीजै सोइ॥
क० ग्र०, पृ० ३२

३ सहज सहज सब गए सुत वित कामणि काम।
एक मेक है मिलि रह्या दासि कबीरा राम॥
क० ग्र० पृष्ठ ३३

४ जिन्ह सहज हरि जी मिलै सहज कही जै ताइ॥
क० ग्र० पष्ठ ३३

५ आप विचारै सो ग्यानी होई। क० ग्र०, पष्ठ ७९

६ आपहि आप विचारिये तब कता होई अनन्द रे।
क० ग्र० पृ० ७०, प० ५

७ हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की कृपा भई डारया सिर थैं बोझ॥
क० ग्र०, पृ० ३४

उस कर्तव्याकर्त्तव्य का कुछ भी विवेक नहीं रहता। ऐसा व्यक्ति मृतक के समान है जो समाज मे भार बनकर जीता है। कबीर ने ऐसे लोगो को बार-बार कहा है कि आत्मा को पहचानो, आत्मा का भजन करो। ससार की तरफ न भागकर अन्दर की तरफ मुड जाओ।[1] उलटी गगा मे बहो। अपने विचारो को उलट लो। तभी ससार के दुख सताप से मुक्त हो सकते हो अन्यथा दुख की दावाग्नि मे जल मरोगे। कबीरकालीन समाज पथ भ्रान्त था। काजी मुल्ला भी उसी राह पर भटक रहे थे।[2] हिन्दुओ के चार वेद थे और उसके चार मत थे जिसके भ्रम मे पूरा ससार उलझा हुआ था।[3] इस भ्रम का कारण अज्ञान था और अज्ञान का कारण अपने को न पहचानना था। मनुष्य अपने को क्यो नही पहचान पा रहा था ? इसका भी कारण था उसके सामने कनक और कामिनी का आकर्षण था। मनुष्य आत्म दुर्बल था। वह उस पर विजय नहीं पा सकता था। उसका पुरुषार्थ नष्ट हो गया था। उसका सामाजिक सगठन टूट गया था। वह दैनिक जीवन के आचार विचार तथा व्यवहार से गिरा हुआ था। उसके सामने कनक कामिनी का मोह अधिक था। इसी कारण वह आत्म चिन्तन नही कर पा रहा था। उस समाज मे सभी व्यक्तित्व मे इस चिन्तन का अभाव था। राजा यह नहीं समझता था कि वह क्यो दूसरे का अधिकार हडप रहा है। प्रजा इस बात से अनभिज्ञ थी कि उसके क्या कर्त्तव्य और अधिकार हैं। पण्डित मुल्ला भी परम्परागत मान्यताओ का प्रचार कर रहे थे। समाज मे सारे के सारे व्यक्तित्व नकली थे। परम्परा एव लोकमत अनुगामी थे। इसीलिए कबीर ने कहा था कि ऊपर की बात मुझे अच्छी नहीं लगती। जो स्वय देखा हुआ (अनुभूत) गाता है वही सुख पाता है।[4] यह चक्षुस प्रत्यक्ष अनुभूत एव प्रायोगिक प्रत्यक्ष है। यही जीवन का भोगा हुआ यथार्थ है जिसे मनुष्य आत्म चिन्तन से ही पा सकता है। कबीर विविध शब्दो के माध्यम से इस आत्म चिन्तन की ओर सकेत करते है। कभी वे कहते हैं कि यही आत्म चिन्तन भक्ति है जिससे मोक्ष मिलता

---

१ काजी सो जो काया विचार, अह निसि ब्रह्म अगनि प्रजार।
सो सुलितान जु द्व सुर तान बाहरि जाता भीतरि आन ॥
क० ग्र०, पृ० १५० पद ३३०

२ काजी मुला भ्रमिया चल्या दुनी क साथि ॥
क० ग्र०, पृ० ३३

३ चारिवेद चहुँ मत का विचार इहि भ्रमि भूलि परयो ससार ॥
क० ग्र० पृ० ८०, पद ४

४ ऊपर की मोहि बात न भाव देख गाव तो सुख पाव ॥
क० ग्र०, पृ० १२१, पद २१८

है ।[1] जिससे कोई सन्ताप (दुख) नहीं होता ।[2] कभी वे कहते हैं कि यह आत्म विचार ज्ञान है । जिसे जान कर मनुष्य ज्ञानी होता है ।[3] ज्ञानी ही नहीं मनुष्य आत्म पहचान से भगवान को भी पा सकता है ।[4]

कबीर आत्मा को व्यक्तिगत या अलग भाव से नहीं देखते । वे पूरे समाज को एकात्म रूप से देखते हैं । कबीर के समाज में नाना प्रकार के भेद थे । उन्हें इन भेदों को मिटाना था । वास्तव में इन भेदों में कोई स्थायित्व नहीं था । सारे के सारे भेद क्षणभंगुर थे । गोरा काला स्त्री पुरुष, ऊँच नीच धनी निर्धन, स्वामी सेवक राजा रंक सब के सब भेद तात्कालिक थे । इन भेदों के बनाने वाले और मानने वाले अपने समय की सीमा में जी कर मर गए । आज कोई नहीं रहा । पर मानवता अमर है । समाज अमर है । आत्मा अमर है । जीव की स्थिति अमर है । कबीर जहाँ भी आत्म विचार की बात करते हैं वहाँ नश्वर तत्वों को नहीं ग्रहण करते । वे नश्वर तत्वों को बताते हुए अनश्वर तत्वों की ओर संकेत करते हैं । वे कहते हैं मनुष्य की शरीर मिट्टी है ।[5] जब मरने पर उसे जला दिया जाता है तब इन्द्रियाँ कहाँ विश्राम करती हैं ? राम कहने वाला कहाँ चला जाता है ?[6] पिंड (शरीर) में रहने वाला जीव कहाँ रहता है ?[7] जीव उत्पत्ति का कार्य और कारण कहाँ छिपा रहता है ? आदि । कबीर इन तत्वों के बीच कार्य और कारण की शक्ति पर विचार

---

१ कहै कबीर जे आप बिचारै मिटि गया आवन जाना ॥
क० ग्र० पृ० ७१ पद ६

२ आपा जानि उलटि लै आप तौ नहिं व्यापै तीन्यूं ताप ॥
क० ग्र०, पृ० ७३ पद १५

३ आप बिचारै सो ग्यानी होई ॥ क० ग्र० पृ० ७९

४ आपा पर सभि चीनिये तब मिलै आतमा राम ॥
क० ग्र० पृ० १४२

५ देही माटी बोलै पवना । बूझि रे ज्ञानी मुवा सो कवना ॥
क० ग्र० पृष्ठ ८०, पद ४८

६ इन्द्री कहाँ करहि विश्रामा । सो कत गया जो कहता रामा ॥
क० ग्र० पृष्ठ ७८ पद ३७

धन जोबन गर्ब्यो संसारा यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा ॥
क० ग्र० पृ० १३५, पद २७२

७ प्यंड परे जीव कहाँ रहै कोई मरम लखाव ।
जीवत जिस घरि जाइये ऊँध मुषि नहिं आव ॥
क० ग्र०, पृ० १०४, पद १५४

करते हैं। मनुष्य उसी शक्ति का एक रूप है । तात्विक दृष्टि से सब जीव एक हैं। भेद केवल मिट्टी का है। रूप का है । कबीर इस पर विचार करते हुए कहते हैं कि कौन मरता है ? कौन जाता है ? और कौन स्वर्ग नरक की गति पाता है ? यह मनुष्य की झूठी शंका है। वस्तुतः मनुष्य पंच तत्वों के संयोग से बना है और उसके वियोग से मरा हुआ माना जाता है।[1] मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है और हवा हवा में। अरे पण्डित, ज्ञानी सुनो ! केवल शारीरिक रूप मरता है। सब दुनिया देखती है।[2] तत्व तो अविनाशी है। अभेद है। यही आत्म ज्ञान है। ज्ञानी जीव जीव में कोई भेद नहीं मानता। अज्ञान है। कबीर इस ज्ञान को पूर्ण रूप से पा चुके थे। इसीलिए उन्हें सब घट में साहब ही साहब दिखाई पड़ रहा था।[3]

कबीर को सब घट में साहब (ईश्वर) की झलक मिली थी। उनकी दृष्टि में ऊँच नीच धनी निर्धन छोटे बड़े सब समान थे।[4] उन्होंने समस्त मानव जाति को एक जाति के रूप में देखा और परखा था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उनका सामाजिक दृष्टिकोण समता का था। वे समाज के हर एक व्यक्ति को सुखी देखना चाहते थे। सुख का मूल आधार अर्थ व्यवस्था थी। पर कबीरकालीन समाज में कोई भी ऐसी आर्थिक या सामाजिक व्यवस्था नहीं थी जिससे कि हर व्यक्ति को अपनी उन्नति का मार्ग मिलता। बलात् छीना झपटी के बल पर राजा, महाराजा तथा सामंतों की शक्तियाँ बनी थीं। अपने अपने स्वार्थ के लिए सबके वैभव का विस्तार था।[5] जिसमें जितनी शक्ति होती वह उतना ही धन संग्रह कर लेता था।

---

१ कौन मरै कौन जनमै आई सरग नरक कौन गति पाई ॥
पंच तत्व अविगत थैं उतपना एकै किया निवासा ॥
बिछुरे तत फिरि सहज समाना रेख रही नहीं आसा ॥

क० ग्र०, पृ० ८०, पद ४४

२ माटी माटी रही समाइ पवन पवन लिया सगि लाइ ।
कहैं कबीर सुनि पंडित गुनी रूप मुवा सब देखै दुनी ॥

क० ग्र०, पृ० ८०, पद ४५

३ कहैं कबीर मैं पूरा पाया सब घटि साहब दीठा ॥

क० ग्र० पृ० ८१ पद ५१

४ नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा जाका प्यंड ताही का सींचा ॥

क० ग्र०, पृ० ७९ पद ४१

कहैं कबीर ग्यानि भ्रम भागा जीवहि जीव समाना ॥

क० ग्र०, पृ० १११ पद १७९

५ घर घेहर सब आप स्वारथ बाहर किया पसारा । क० ग्र० पृष्ठ ८८ पद ८१

परिणामस्वरूप धनी और निर्धन दो वर्ग समाज में पैदा हो गए थे जिनके कारण लोगों में ईर्ष्या, द्वेष तथा वैमनस्य थी। इससे लोगों में संघर्ष बढ़ रहा था। एक तरफ धनी वर्ग लाख करोड़ का स्वामी था।[1] ऊँची अट्टालिकाओं में रहता था।[2] दरवाजे पर हाथी, घोड़े बँधे रहते थे।[3] दूसरी तरफ टूटी झोपड़ी में रहने वाला गरीब वर्ग था जो बरसात में छनिहर घर में भीगता था।[4] न रहने के लिए अच्छा मकान था और न पहनने के लिए अच्छा वस्त्र।[5] उसको भर पेट भोजन कठिनाई से मिलता था। रोजी रोटी के लिए लोग इधर उधर मारे मारे फिरते थे।[6] वे गुलाम थे। वह पशुओं की तरह बेचा और खरीदा जाता था।[7] लोभी पूँजीपतियों द्वारा गरीबों का शोषण हो रहा था। वे ब्याज पर पैसा देकर गरीबों से मन माना धन वसूल करते थे।[8] इससे गरीबों का आर्थिक संकट और बढ़ता जाता था। कबीर के सामने ऐसे बहुत से लोग थे जो अपनी भूख, अपनी गरीबी दूसरों को सुनाते थे।[9] इसी गरीबी के कारण लोग साधू संन्यासी तथा बैरागी आदि के भेष में भिक्षा माँगते थे। एक तरफ गृहस्थ को अपनी गृहस्थी की घनी चिन्ता थी दूसरी तरफ (भिखारी) को अपनी भिक्षा की।[10] सभी अर्थ के अभाव से चिन्तित और दुखी थे। गरीबी के कारण लोगों का नैतिक पतन हो गया था। घर में ताला लगे रहने पर भी लोग कुलुफ (ताला) तोड़कर चोरी करते थे।[11] समाज के ये अभागे लालच

---

१ मागे हाथी व गय जिनके लाख करोड़ि ॥ क० ग्र० प० १९

२ कबीर कहा गरबियो ऊँचे देखि अवास ॥ क० ग्र० प० १६

३ जिनके नौबत बाजती मैंगल बँधते बारि ।
  एक हरि के नाव बिन गये जन्म सब हारि ॥ क० ग्र० प० १६

४ छिनहर घर अरु झिरहर टाटी घन गरजत काँप्यो मेरी छाती ॥
  क० ग्र० पृष्ठ १३५

५ एकनि दीन्ही गर गूदरी एकनि सेज पयारा ॥ क० ग्र० पष्ठ ९३

६ इही उदर के कारण जग जाच्यो निस जाम ॥ क० ग्र०, प० २७

७ मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं ॥ क० ग्र० प० ९१

८ कलि का स्वामी लोभिया मनसा धरी बधाइ ।
  देहि पईसा ब्याज का लेखा करता जाइ ॥ क० ग्र० पृ २८

९ भूखा भूखा क्या करै कहा सुनावै लोग । क० ग्र०, पृ० ४५

१० ग्रिही तो च्यंता घणी बैरागी तो भीख ॥ क० ग्र० पृ० ४१

११ गाफिल होइ बसत मति खावै चोर मुसै घर जाई ।
  ताला कुंजी कुलफ के लागे उघड़त बार न होई ॥
  क० ग्र०, पृ० ७५, पद २३

तथा स्वार्थ के विष में पड़े थे जिससे सबका पतन हो रहा था।[1] कबीर ने इस धन संग्रह की प्रवृत्ति को गलत बताया क्योंकि धन संग्रह हरि भजन में, सत्संगति में तथा सामाजिक संगठन में बाधक होता है। सम्पत्ति संग्रह का भाव सम्पत्ति पर अधिकार का भाव मनुष्य को स्वार्थी बना देता है। स्वार्थी भाव से पैदा किया गया धन केवल एक के लिए हितकर होता है पर दूसरे के लिए हानिकर भी हो सकता है। धोखेबाजी, ठगबाजी तथा बेईमानी से कमाया हुआ धन दूसरों को पीड़ा देकर इकट्ठा किया जाता है।[2] इसलिए यह धर्म की दृष्टि से पाप है।[3] और विधान की दृष्टि से अवधानिक। अपने सुख तथा वैभव विस्तार के लिए किसी का धन अपहरण करना बहुत बड़ा अपराध है। अपना पेट भरना और दूसरों को भूखे रखना मानवता पर अत्याचार है। अतः धन को व्यक्तिगत अधिकार से जोड़ना अन्याय है। इसीलिए कबीर ने यह बार बार कहा है कि धन के साथ मेरा तेरा का भाव रखना बहुत बड़ा अज्ञान है।[4] बहुत बड़ी मूर्खता है।[5] अपना-अपना कहता हुआ संसार चला गया पर क्या यह धन किसी के साथ गया ? खोट खोट कपट करके धन इकट्ठा करते हैं और मिट्टी खोद कर घर बनाते हैं तब बड़े अभिमान से कहते हैं 'यह घर मेरा है।' पर एक समय ऐसा आता है जब अचानक प्राण निकल जाते हैं और चीजें जहाँ की तहाँ रह जाती हैं।[6] इसलिए संसार की असारता पर

१ विष तजि राम न जपसि अभाग, का बूडे लालच के लागे।

क० ग्र०, पृष्ठ १६० पद ३७५

२ कबीर आप ठगाइये और न ठगिये कोइ।
आप ठग्या सुख ऊपजे और ठग्या दुख होइ ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ६५

३ पर हित सरिस धरम नहिं भाई, पर पीडा सम नहिं अधमाई ॥

श्रीरामचरित मानस उत्तरकाण्ड, पृ० ६१८

४ जब लग मैं मेरी मेरी करै तब लग काज एक नहिं सरै।
जब यहु मैं मेरी मिटि जाइ तब हरि काज सवारै आइ ॥

क० ग्र०, पृ० १५४ पद ३४९

कहैं कबीर सुनो रे संतो मेरी मेरी सब झूठी। क० ग्र०, पृ० ९३

५ मैं मेरी करि यहु तन खोयो, समझत नहीं गँवार ॥

क० ग्र०, पृ० १४७ पद ३१८

६ माटी खोदहि भीत उसार अंध कहै घर मेरा।

+ + +

खोट कपट करि यहु धन जोरयो लै धरती में गाड्यो।
रोक्यो घटि साँस नहिं निकसै ठौर ठौर सब छाड्यो ॥

क० ग्र०, पृ० ९०, पद ९२

मत है कि किसी की भजन में बाधा नहीं डालनी चाहिए। अर्थ भेद में भजन में विघ्न पड़ता है। इसलिए इस विधान को इस भेद को मिटा देना सबका परम कर्तव्य है। यही मानव जीवन का सबसे बड़ा धर्म है सबसे बड़ा उपकार है। कबीर इस अर्थ भेद को मिटाकर समाज में समता लाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने बार बार आर्थिक दुर्व्यवस्था का विरोध किया है और साथ ही साथ सामाजिक समानता का नारा लगाया है।[1] उन्होंने भक्ति और प्रेम का प्रचार इसीलिए किया था कि लोग सामाजिक संगठन को मजबूत बनाएँ जिससे सबको अपनी उन्नति के लिए समान अवसर मिले।

कबीर के समाज में सब को खाने कमाने का समान अवसर नहीं मिल रहा था। इसीलिए समाज में जोगी, जती, जंगम, जटाधारी बनखण्डी आदि भेष बना कर अपनी जीविका चला रहे थे।[2] यह समाज का भिखारी वर्ग था जो बिना श्रम किए अपना पेट पालन कर रहा था। इन नकली साधुओं का समाज में भरमार था। कोई चंदन लगा कर तथा गेरुआ वस्त्र पहन कर इधर उधर घूम रहा था तो कोई जटा बढ़ा कर जंगल तथा पहाड़ की गुफा में जा कर बैठा था।[3] कोई सींगी मुद्रा चमकाये था तो कोई सारे शरीर में राख लपेटे फिरता था। कोई माला लेकर राम को जपता था तो कोई तसबी लेकर रहीम को।[5] अजीब थे ये मानव के रूप। विचित्र थे ये जीवन बिताने के रास्ते। न जाने क्या थे वेद पुरान तथा कुरान के संदेश। न जाने क्या थे पांडे तथा मुल्ला के उपदेश। तभी तो कबीर ने कहा था कि क्या इसी प्रकार के ज्ञान से जन जागरण हो सकता है? क्या इसी प्रकार के धर्म से सामाजिक चेतना उभर सकती है? इसीलिए उन्हें वेद कुरान विष सा लग रहा था।[6] और सारे धर्म थोथे झूठे। कबीर समाज की इस दशा को देखकर बहुत

१ ऊंच नीच समसरिया, ताथै जन कबीर निसतरिया ॥
क० ग्र०, पृ० ११३ पद १८१

२ जोगी जंगम जती जटाधारी, अपने अवसर सब गये हारि ॥
क० ग्र०, पृ० १६४, पद ३८८

३ बनह बसे का कीजिये जे मन नहीं तजै बिकार ॥
का जटा भसम लेपन किये कहा गुफा में बास ॥
क० ग्र०, पृ० १४२, पद ३००

४ क्या सींगी मुद्रा चमकाये क्या बिभूति सब अंगि लगाये ॥
क० ग्र०, पृ० १५५, पद ३५५

५ राम रहीम जपत सुधि गई उनि माला उनि तसबी लई। क० ग्र० पृ० ८२ पद ५६

६ जागिया रे नर नींद नसाई चित चेत्यौ च्यंतामणि पाई ॥ क० ग्र०, पृ०
जन जागे का ऐसहि नाण, विष से लागे बेद पुराण ॥
क० ग्र०, पृ० १५५, पद ३५२

चिंतित थे। वे रोते थे।[1] जागते थे। दुखी थे। बेचैन थे।[2] पर समाज उनका साथ ही नहीं दे रहा था। वे कर्म करते हुए कर्म का रास्ता दिखा रहे थे पर समाज अंधा था। वे कर्म को मानव जीवन का लक्ष्य मानते थे और मानव सेवा को ईश्वर की सेवा। वे *पुकार पुकार कर कहते थे कि मानव जीवन में कर सेवा का यही अवसर है अन्यथा बाद में पछिताओगे।*[3] कबीर ऐसे ही व्यक्ति को सच्चा पुरुष मानते थे जो स्वयं कमा कर अपना और अपने परिवार का निर्वाह करता हो।[4] वे कमाने और खाने वालों का सहयोग साथ साथ लेकर चलना चाहते थे। *मिलकर कमाना और मिलकर खाना उनका अभीष्ट था। कबीर का यह विचार पूंजी (अधिकार) के क्षेत्र* में साम्य मूलक था। इससे वे समाज को (कर्म और फल दोनों में) सहयोगी और सहभागी बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने सतसंगी साधु भक्तों का संगठन बनाया था जो भजन भी करता था और गृहस्थी का काम भी।[5] कबीर उसी व्यक्ति को *सच्चा पुरुष मानते थे जो ऐसा कर्म करे कि न स्वयं भूखा रहे और न दूसरों से* माँगने की स्थिति ही उसके सामने आवे। कबीर का यह कहना था कि जो कुछ करना हो इसी जीवन में कर लो।[6] फिर मनुष्य का तन नहीं मिलेगा। सभी जीवों में मनुष्य उत्तम प्राणी है। इसलिए उसे सोच विचार कर काम करना चाहिए।

---

१ हूं रोऊँ संसार को मुझे न रोवे कोई।
मुझको सोई रोइसी जे राम सनेही होइ॥ क० ग्र० पृष्ठ ६३ (ख प्रति)

२ दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवे॥ क० ग्र०, पृष्ठ ९

३ गुरु सेवा करि भगति कमाई। जो तैं मनिषा देही पाई॥
जो कछू करो सोइ ततसार फिरि पछिताओगे वार न पार॥
सेवग सो जो लागै सेवा, तिनही पाया निरंजन देवा॥
यहु तेरा औसर यहु तेरा बार घटहि भीतरि साचि विचार॥
कहै कबीर जीति भावै हारि, बहु बिधि कह्यो पुकारि पुकारि॥
क० ग्र०, पृष्ठ १५४, पद १४८

४ मांगी न खाइ न भूखा सोवे घर अगना फिरि आवे।
पांच जना की जमाति चलावे तास गुरु मैं चेला॥
क० ग्र०, पृष्ठ ११८ पद २०७

५ त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा, साध संगति मिलि करहु बिचारा॥
रे रे जीवन नहीं बिश्रामा सब दुख खंडन राम को नामा॥
क० ग्र०, पृष्ठ १७३ (रमणी)

६ कहै कबीर सुनहु रे संतो करि ल्यो जे कछु करणा॥
लख चौरासी जोनि फिरौगे, बिना राम की सरना॥ क० ग्र०, पृष्ठ १२७

मनुष्य के कर्मों का उपयोग सामाजिक विकास के लिए होना चाहिए जिससे सबका कल्याण हो। कबीर ने इस सत्य को कपडा बुनते बुनते अपने व्यावहारिक जीवन मे पाया था।[1] इसी का वे प्रचार एवं प्रसार कर रहे थे। सबको शक्ति भर काम करना चाहिए और सबको अपने परिश्रम का फल भी मिलना चाहिए। कबीर इसी कर्म अधिकार के बल पर जन जीवन की आर्थिक समस्या को सुलझाना चाहते थे। उनके द्वारा कनक, कामिनी का विरोध और साथ ही साथ हरि भजन का प्रचार इसीलिए हुआ था कि लोग कमाकर निश्चिंतता और फाकेमस्ती का जीवन गुजारें।

२ सामान्य जनता

कबीर कालीन समाज के कई स्तर थे। धनी गरीब का भेद तो था ही पर कुछ ऐसे अन्य सामाजिक भेद एवं मान्यताएँ थीं जिनसे मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध बिगड चुका था। एक साधु संतों का वर्ग था जो भाव भजन तथा ज्ञान विचार मे समय बिताता था दूसरा राजनीतिक कर्मचारियों का वर्ग था जो युद्ध करके तथा अन्य अनैतिक ढंग से कर्म करके अर्थ संग्रह मे मस्त था। सामान्य जनता का जीवन अपने एक अलग स्तर पर चल रहा था। धर्म और जाति का भेद होने हुए भी साधारण जनता मे श्रम करके एक स्तर पर अपना जीवन बिता रही थी। किसान खेती का काम करते थे।[2] बढ़ई लकडी का काम करते थे। चरखा बनाते थे।[3] कुम्हार धोबी चमार नाऊ, ब्राह्मण आदि समाज की विभिन्न जातियाँ थी।[4] जो परम्परागत सामाजिक मान्यता के अनुसार अपने अपने कर्म मे लगी थीं। इस कृषक एवं श्रमिक वर्ग के अलावा एक व्यापारी वर्ग था। धंधा करके अपनी जीविका

---

१ दास कबीर बुनत सब पाया दुख ससार सब नासा ॥

क० ग्रं०, प० १८० पद २८८

२, गग तीर मोरी खेती बारी जमुन तीर खरिहाना।
सातौ बिरही मेरे नीपजे पच मोर किसाना ॥

क० ग्रं० पृष्ठ ७३ पद १४

३ चरखा जिनि जरै।
सब जगहा मर जाइयौ एक बढइया जिनि मरै ॥

क० ग्रं०, पृष्ठ ७३, पद १३

४ कबीर ग्रथावली–श्याम सुन्दरदास प० १६४, पद ३८९

चलाता था । समाज में बाजार हाट लगते थे ।[1] लोग एक दूसरे को धोखा देकर ठगते थे । कबीर मनुष्य में इन दुर्व्यवहारों को नहीं देखना चाहते थे । दूसरे को धोखा देना ठगना परमात्मा के प्रति अन्याय है । मानवता के प्रति अत्याचार है । बुरा कर्म पर दुखदायी होता है । इसीलिए उन्होंने कहा था कि अपने को ठगा लेना अच्छा है पर दूसरों को ठगना बुरा है ।[2] यदि समाज का हर एक व्यक्ति अपने में इस प्रकार की धारणा बना ले तो कोई किसी को नहीं ठगेगा । जब सभी व्यक्ति ईमानदार होंगे । तभी समाज में राम राज्य एवं सर्वोदयवाद के सपने सत्य होंगे । इसीलिए कबीर लोगों को कथनी छोड़कर करनी करने का उपदेश देते हैं ।[3] यह संसार ही बाजार जैसा है । यहाँ सभी लोग बनिया हैं जो कर्म का व्यापार करने आये हैं । एक दिन सभी को अपने अपने कर्म का व्यापार करके चले जाना है ।[4] इसलिए सभी को स्वार्थहीन होकर कर्म करना चाहिए । कथनी और करनी में कोई भेद नहीं होना चाहिए । कथनी के अनुसार करनी करने वाला व्यक्ति ब्रह्म को पा लेता है ।[5] काम को राम का भी साक्षात्कार करा देता है ।[6] पर तत्कालीन समाज के लोग बिना कर्म किये ही फल चाहते थे । इसीलिए कबीर ने कहा था कि, भाई ! तुम मन का मनोरथ छोड़ दो । तुम्हारा कुछ किया नहीं होगा । यदि पानी में घी निकलने लगे तो कोई भी रूखा नहीं खायगा । उन्होंने बहुत विचार पूर्वक कहा था कि मनुष्य

---

१ चौपड़ मांडी चौहट अरध उरध बाजार । क० ग्र० पृ० ३
यह ससार हाट करि जानू सबको बणि जन आया ॥ क० ग्र० पृ० १२५,
कबीर गुदडी बीखरी सौदा गया बिकाइ ॥ क० ग्र०, पृ० ६१

२ कबीर आप ठगाइये और न ठगिये कोइ ।
आप ठग्या सुख ऊपजै और ठग्या दुख होइ ॥ क० ग्र० पृ० ६५

३ जामण मरण बिचारि करि कड़ काम निवारि ।
जिनि पंथू तुझे चालणा सोई पंथि सवारि ॥ क० ग्र०, पृ० १७

४ इत प्रघर उत घर बणजन आये हाट ।
करम किराणा बेचि करि उठि ज लागे बाट ॥ क० ग्र० पृ० २१

५ जैसी मुख तै नीकसै तैसी चालै चाल ।
पार ब्रह्म नेडा रहै पल मैं करै निहाल ॥ क० ग्र० पृ० ३०

६ काम मिलावै राम कू जे कोई जाणै राषि । क० ग्र० पृ० ४०

७ मनह मनोरथ छाडि दे तेरा किया न होइ ।
पाणी मैं घीव नीकसै तो रूखा खाइ न कोइ । क० ग्र० पृ० २४,

अपने बुरे कर्मो की कुल्हाड़ी से अपने को काट रहा है।[1] मनुष्य स्वय बुरा कम करके पतन के गत मे गिर रहा है। इस प्रकार कबीर पूरे समाज को सत्कम करने की तरफ प्रेरित कर रहे थ।

कबीर कालीन समाज के लोग कुसगति म पडकर सत्सग करना भूल गए थे। कोई कनक की तरफ आकर्षित था तो कोई कामिनी की तरफ। सब विष का (दुख का) सग्रह कर रहे थे। क्षणिक सुख के लिए सब अपना जन्म गवां रह थ।[2] इसीलिए कबीर ने कहा था कि क्या यह धन सपत्ति किसी के साथ जाती है ? क्या यह यौवन रूप (जो इतने आकषक होते हैं, जिस पर मनुष्य इतना गव करता है) स्थाई है ? वस्तुत ये दोनो आकषक रूप मनुष्य को मारने के लिए विष हैं। न तो सपत्ति किसी के साथ जाती है और न यौवन रूप सदव किसी के साथ ही रहता है। य सब समाज द्वारा माने हुए सुख के साधन हैं पर सब विष हैं—कबीर ने ऐसा मान लिया था।[3] इसी विलासी वातावरण को कबीर न काजल की कोठरी विष का वन अथा माया का ससार कहा है।[4] इसी विषमय ससार की माया मे सब लगे हुए थे। कोई उससे मुक्त नही होना चाहता था। सब इसी विष फल का उपभोग कर रह थे।[5] यह कनक कामिनी का उपभोग सुख का साधन था। इसी सुख मे सारा समाज खाता और सोता था।[6] कोई जागरूक नही था जो इससे अलग होकर कुछ सामाजिक विकास का काम करता। तत्कालीन समाज के लोगो में अति काम वासना थी। इसलिए कबीर न एसे लोगा को नारकीय प्राणी कहा है।[7] जो रात दिन नारी

---

१ यह तन तो सब बन भया करम भये कुल्हाडि।
आप आप कूँ काटिहै कहैं कबीर बिचारि॥ क० ग्र०, पृ० १९

२ विष सग्रह कहा सुख पाया, रचक सुख को जनम गवाया।
क० ग्र० पष्ठ १३५, पद २७१

३ दे सुख इव मोहि विष भरी लागा।
इन सुख डहके मोटे माटे छत्र पति राजा।
उपज बिनस जाइ बिलाई सपत्ति काहू के सगि न जाई।
धन जोबन गर्‍यो ससारा यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा।
क० ग्र०, पृ० १३५, पद २७२

४ काजल केरी कोठरी मसि के कम कपाट। क० ग्र० पष्ठ ३४
विष क बन मे घर किया सरप रह ल्पटाइ॥ क० ग्र० पृ० ५९

५ एक कनक अरु कामिनी विष फल कीए उपाइ। क० ग्र०, पृ० ३१

६ सुखिया सब ससार है खावै अरु सोव।
दुखिया दास कबीर है जाग अरु रोव। क० ग्र० पृ० ९

७ नर नारी सब नरक है जब लग दह सकाम। क० ग्र

के साथ रहते हैं । नारी ससग से बुद्धि विवेक का नाश होता है ।[1] मनुष्य अपने शरीर का नाश तो करता ही है। इससे उसके जीवन का कोई काम भी सफल नहीं हो पाता । नारियाँ पुरुष के साथ रहकर उसकी भक्ति, मुक्ति और ज्ञान के सुख म बाधक होती हैं ।[2] कबीर ने काम को बुरा नही माना है बल्कि उसम अति लीनता नही होनी चाहिए । उन्होने तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई काम को सम्भाल कर रखना जानता है तो काम उसे राम से मिला देता है ।[3] इस प्रकार के अनेक दुर्गुण लोगो म थे जिससे समाज का पतन हो रहा था । कबीर ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसम भ्रष्टाचार न हो । लोग सदाचार और सत्यता के बल पर ऊपर उठ सकें । कोई किसी का न विरोधी हो और न कोई किसी के दुख का कारण हो । कबीर ने इस बात का प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया था कि बिना अपने सुधार के समाज सुधार नही सकता । इसलिए उन्होने लोगो से निज स्वरूप पहचानने और *निज को सुधारने का आग्रह किया था ।*[4]

३ राजनीतिक एव धार्मिक नेता वर्ग

कबीर कालीन समाज की साधारण जनता तो (अल्पज्ञ) थी ही पर उच्च वर्ग के लोग जिनके हाथ म अर्थ और धर्म की बागडोर थी वे भी कुछ कम अज्ञानी (लोभी अथवा पाखण्डी) नहीं थे । जहाँ एक तरफ लोग देवी देवताओ की पूजा कर विविध अन्धविश्वासो मे मरते जा रहे थे वहीं दूसरी तरफ राजा महाराजा अपार धन के सग्रह मे नष्ट होते जा रहे थे ।[5] कोई राजा सेना लेकर दूसरे राज्य पर चढ़ाई

---

१ नारी सेती नेह बुधि बिवेक सबही हरै ।
काइ गमावै देह कारिज कोई न सारै ॥ — क० ग्र०, पृ० ३१

२ नारि नसावै तीन सुख जो नर पासै होइ ।
भगति मुकति निज ग्यान मैं पैसि न सकई कोइ ॥ — क० ग्र० पृ० ३१

३ काम मिलावै राम कूँ जे कोइ जाणै राखि । — क० ग्र०, पृ० ४०

४ आपा जानि उलटि लै आप तौ नहीं व्यापै तीन्यूँ ताप । — क० ग्र० पृ० ७३
राम नाम जाका मन माना । तिन तौ निज सरूप पहिचाना ॥
— क० ग्र०, पृ० १७३ (रमणी)

५ देव पूजि पूजि हिंदू मूये तुरक मूये हज जाई ।
जटा बाँधि बाँधि योगी मूये इनमे किनहू न पाई ।
धन सचते राजा मूये अरु ले कचन भारी ।
वेद पढ़े पढ़ि पण्डित मूये रूप भूले मूई नारी ॥ क० ग्र०, पृ० १४६, पद ३१७

करता था तो कोई दूसरे का गढ़ तोडकर धन सग्रह करता था।[1] अति अभिमान तथा लोभ के कारण सब अपने को खोते जा रहे थे।[2] कोई राजा महल बनवाता था तो कोई मन्दिर मस्जिद बनवाता था। राजा में भी क्रोध और लोभ प्रधान था।[3] क्रोधी भाव के कारण वह दूसरों पर आक्रमण तथा अत्याचार करता था। लोभ के कारण वह राज पाट तथा सिंहासन की रक्षा करता था। क्षणिक सुख के लिए वह बहु सुन्दरियों के साथ रमण करता था।[4] सर्वत्र सुख की खोज थी और उस सुख की खोज में पूरा समाज दुखी था। वह अनेक संघर्षों में विफल था। लोग सामाजिक स्तर पर नहीं सुखी होना चाहते थे बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर सुखी और समृद्धशाली बनना चाहते थे। इसीलिए लोगों को एक दूसरे से संघर्ष करना पड़ रहा था। लोभ दुनिया को प्यारा था।[5] इसीलिए राज दरबार में कोटि कोटि हाथी घोड़ों का संग्रह किया जाता था और इसी शक्ति के बल पर एक राजा दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण करता था।[6] राजा राणा राव रंक सब में सम्पत्ति संग्रह का भाव प्रबल था। इसीलिए सर्वत्र राजनीतिक अत्याचार था और इसी के कारण समाज में

---

१ जोरत कटक जु घेरत सब गढ़ करतब येली मेला।
जोटि कटक गढ़ तोरि पातिसाह खेलि चल्यौ एक सेला ॥ क० ग्र०, पृ० १५८

२ अपने अपने रंग के राजा मानत नाही कोइ।
अति अभिमान लोभ के घाले चले अपन पौ खोइ ॥ क० ग्र० पृ० १४६, पद ३७८

३ क्यू लीज गढ बंका भाई दोवर कोट अरु तेवड खाई।
क्रोध प्रधान लोभ बड दूंदर मन में बासी राजा ॥
क० ग्र० पृष्ठ १५६, पद ३५९

४ राज पाट स्यंघासण आसण बहु सुंदरि रमणा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १२८, पद २४८

५ सकल दुनी मैं लोभ पियारा मूलज राखै सोइ बनियारा ॥
क० ग्र०, पृ० १२४, पद २३४

६ कोटि धज साह हस्ती बंध राजा क्रिपन को धन कौने काजा ॥
क० ग्र० पृ० १२ पद ९९
छूटी फौज आनि गढ घेर्यौ उडि गयौ गूडर छाडि तनौ ॥
क० ग्र०, पृ० ९१ पद ९६

७ राणा राव रंक को व्याप करि करि प्रीति सवाई।
क० ग्र०, पृ० ९१, पद ९७
खोट कपट करि यहु धन जोर्यौ लै धरती मैं गाड्यौ ॥
क० ग्र०, पृ० ९० पद ९२

गरीब अमीर का भेद भी था। कबीर इस भेद को मिटाना चाहते थे। उन्होंने साधारण जनता को ही नहीं वरन् राजा राणा छत्रपति को भी चेतावनी दी थी कि ऊंचे महल देखकर घोड़ा, हाथी, रत्न आदि का संग्रह कर अभिमानी न बनो। किसी का शोषण मत करो। सब कुछ यहीं छूट जाएगा और तुम भी इसी मिट्टी में मिल जाओगे।[1] लोभ के कारण जीवन को व्यर्थ मत करो।[2] सम्पत्ति पर अधिकार का भेद सत्संग में बाधा डालता है। धन मानव मानव में विरोध और कलह पैदा करता है। इसलिए कबीर ने राजा और राजा की स्वार्थमयी सत्ता का विरोध किया। उन्होंने कहा था कि मनुष्य मूर्ख है जो माया के अधीन जीव को राजा कहता है।[3] इसीलिए तो सारा समाज माया की ज्वाला में भस्म हो रहा था।[4] राजनीतिक वर्ग साधारण जनता को कष्ट दे रहा था। गरीबों का शोषण हो रहा था। *कबीर समाज को इस दीन दशा में नहीं देखना चाहते थे। वे हरि नाम,* (हरि भजन) के बहाने मनुष्य को जगा रहे थे। उनका कहना था कि बिना ज्ञान के, बिना चिन्तन के मनुष्य समानता के धरातल पर नहीं उतर सकता।[5] क्योंकि राज्य की तरफ से ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी जिससे मनुष्य सामाजिक अधिकारों में समान बनता।

राजनीतिक परिवर्तनों ने जनता के आर्थिक जीवन में परिवर्तन ला दिया था। समाज में धनी गरीब का भेद इसी परिवर्तन के कारण था और यह परिवर्तन तथा विविध असमानता स्वार्थ के कारण थी। इस काल में राजनीतिक तथा धर्म प्राय एक ही थे। इसीलिए राजनीति परिवर्तन के साथ धर्म परिवर्तन भी होता

---

१ कबीर कहा गरबियौ ऊंचे देखि अवास ॥
काल्हि परयूं भ्वै लेटणा ऊपरि जामै घास ॥
इक दिन ऐसा होइ गा सब सूं पड़ै बिछोह ॥
राजा राणा छत्रपति सावधान किन होइ ॥
क० ग्र० पृ० १६

२ लोभ बडाई कारण अछता मूल न खोइ ॥ क० ग्र०, प० १९

३ जीवा को राजा कहैं माया के आधीन । क० ग्र०, प० २६

४ माया की झल जग जल्या कनक कामिणी लागि ।
क० ग्र०, पृष्ठ २७

५ हरि नाम मैं जन जागै ताके गोव्यंद साथी आगै ।
ऊँच नीच सम सरिया ताथै जन कबीर निसतरिया ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ११२-१३, पद १८५

रहा। तत्कालीन समाज मे प्रमुख रूप स हिन्दू और मुसलमान दो धम थ ।[1] मुसलमानी राज्य विस्तार के साथ साथ इस्लाम धम का विस्तार होता गया । राजनीतिक सघर्षो के साथ काजी, मुल्ला और पाडे का धार्मिक सघष कम नही था । अपने अपने धम और धन विस्तार के लिए राजनीति तथा धम के नेता परस्पर जूझ रहे थे। जो कि सामाजिक एकता म बाधक थे। इसीलिए कबीर ने कहा था कि ये धम के नेता काजी झठ का पाठ कर सत्य का हनन करते हैं ।[2] काजी, मुल्ला दोनो पथ भ्रान्त हैं जो कि मूल धम का मूलकर निदयी बनकर हिंसा करते हैं ।[3] हिन्दू धम के नेता पांडे, पढ लिखकर भी अधर्मी और अभाग थ । ये पांडे जीव-हत्या को धम कहते थ और कसाई का काम करके मुनि बनते थे ।[4] इसीलिए कबीर ने दोनो को मोढ़ (अज्ञानी) कहा और दोनो को समझाया कि दोना के धम और ईश्वर एक हैं ।[5] धम के नाम पर पुब पश्चिम के रास्त गल्त हैं । वस्तुत दोना के रास्ते एक हैं । इस लिए दोना को निर्विरोध भाव से एक ही रास्ते पर चलना चाहिए ।[6]

---

१ हिन्दू मूये राम कहि मुसलमान खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवता दुहू म कदे न जाइ ॥
क० ग्र०, पृ० ४२

२ साच मोर झूठ पढ़ि काजी कर अकाज । क० ग्र० पृ० ३३

३ काजी मुला भ्रमिया चल्या दुनी क साथि ॥
दिल थ दीन विसारिया करद लई जब हाथि ॥
क० ग्र० पृ० ३३

४ पाडें कौन कुमति तोहि लागी ।
तू राम न जपहि अभागी ॥
वद पुरान पढत अस पाडे खर चदन जसे भारा ॥
+ + + +
जीव बधत अरु धरम कहत हौ अधरम कहां है भाई ॥
आपन तौ मुनिजन ह्वै बठे कासनि कहो कसाई ॥
क० ग्र०, पृ० ७९ पद ३९

५ हिन्दू तुरक का कर्ता एक ता गति लखी न जाई ॥ क० ग्र०, पृ० ८३
कहै कबीर मैं हरि गुन गाऊँ हिन्दू तुरक दोउ समझाऊँ ॥
क० ग्र० पृष्ठ १३०, पद २५६

६ कहै कबीरा, दास फकीरा अपनी राहि चलि भाई ।
क० ग्र०, पृ० ८३, पद ५८

कबीर इस बात को कह कर हिन्दू मुसलमान धनी गरीब ऊँच नीच तथा सवसाधारण को एक मानवतावादी समान स्तर पर उतारना चाहते थे ।

४ मानव मात्र

कबीर ने विचारपूर्वक जो कुछ साखी दोहा के रूप म समाज के लिए कहा है वह भवसागर म पड़े जीवो को उद्धार के लिए कहा है । इस ज्ञानपूर्ण विचार को जो भी ग्रहण करता है भव सागर के मध्य स किनारे लग जाता है ।[1] उस एक मानवतावादी पथ पर चलने की प्रेरणा मिलती है । कबीर ने अपने उपदेश स इस बात की भरसक कोशिश की थी कि लोग झूठ अभिमान[2], मानसिक विकार कुसगति, भ्रम तथा पारस्परिक भेद को त्याग कर एक बनें जिससे सामाजिक प्रगति म कोई बाधा न पड़े । इसीलिए उन्होंने सबको सत्य और सत् सगति का पाठ पढ़ाया था । गुरु से ज्ञान ग्रहण करो आत्मा को पहचानो, कथनी छोड़कर करनी करो काम, क्रोध मोह लोभ का त्याग करो तभी भगवान तक पहुँच सकते हो ।[3] यही उनके उपदेश का सार था । इन्ही सद्गुणो को वे मनुष्य म भरना चाहते थे जिससे कि उसम नैतिकता का विकास हो सके और मनुष्य, मनुष्य को समान रूप से समान व्यवहार से तथा समान दृष्टि स देख और पहचान सके ।

निष्कर्ष

कबीर अपने समाज मे परम्परागत कुरीतिया का निवारण कर भक्ति एव सतसग के माध्यम से समाज को सगठित रूप देना चाहते थे । वे जाति पाति तथा ऊँच–नीच के भेद को मिटाकर सबको मानवता के समान धरातल पर लाना चाहते थ । प्राकृतिक एव तात्विक दृष्टि स भी मनुष्य अभेद है । इस दृष्टि से उन्होंने धर्म का प्रचार एव प्रसार किया था । मानव के कर्म एव अधिकार की

---

१ हरि जी यहै विचारिया साखी कहो कबीर ।
भव सागर म जीव है जे कोई पकड़ तीर ॥ क० ग्र० पृ० ४४

२ कहैं कबीर झूठे अभिमान सो हम सो तुम एक समान ॥
क० ग्र०, पृ० १५८, पद ३६४

३ काम क्रोध तृष्णा तज ताहि मिल भगवान ।
क० ग्र०, पृष्ठ ८

४ एकही रूप दीस सब नारी ना जानो को पियहि पियारी ।
क० ग्र० पृ० ९६, पद ११८

कहै कबीर जानि भ्रम भागा षीवहि जीव समाना ।
क०, ग्र०, पृ० १११, पद १७९

समानता के लिए भी उन्होने आवाज उठायी थी । इसीलिए उन्होंने मनुष्य की सकीण प्रवृत्तियो (लोभ, ठगी चोरी आदि) का विरोध कर परोपकार एव पर सेवा का प्रचार किया । मानव जीवन के नतिक विकास के लिए उन्होने 'आत्मा को चीन्हो का नारा लगाया था । बिना आत्मा की पहचान के मनुष्य अपने अधिकार एव कत य को समझ नहा सकता । आत्मा की पहचान से मनुष्य धम की ओर तथा मानव कल्याण का ओर अग्रसर होता है । अत आत्म सुधार समाज सुधार है । आत्म पहचान से मनुष्य सासारिक विकारा स मुक्त होता है । काम, क्रोध तथा लोभ का त्याग करता है । जाति धम तथा अथ की सकुचित सीमा से मनुष्य ऊपर उठता है । इससे उसम सभी जीव तथा सभी मनुष्य क प्रति आत्मीयता होती है । मनुष्य पारस्परिक प्रेम एव सामूहिक सगठन मे स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है और यही प्रेम तथा सत सगति मानव जीवन की सबस बडी उपलब्धि है ।

षष्ठ अध्याय

कबीर का समाज दर्शन

दर्शन का स्वरूप

दृश् धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगाने से दर्शन शब्द की निष्पत्ति होती है जिसका अर्थ होता है जिसके द्वारा देखा जाए। अतः दर्शन शब्द का सहज अर्थ हुआ देखना। दर्शन की क्रिया आँखों द्वारा होती है। अतएव दर्शन का एक अर्थ हुआ आँखों द्वारा देखना। आँख वाले व्यक्ति के लिए देखना स्वाभाविक धर्म है। किन्तु बुद्धि विकास के साथ साथ मनुष्य के देखने का स्वरूप भी बदलता जाता है। वह विशाल दृश्य जगत में फैले विविध रूपों को देखते देखते उनके भीतर प्रवेश करने लगता है। चिंतन मनन की साधना से उसमें निहित रहस्य को समझने लगता है। तब उसे इन दो आँखों के अलावा अनेक और चक्षु मिल जाते हैं। ये ज्ञान चक्षु मनुष्य की दिव्य दृष्टि हैं जिन्हें पाकर वह समस्त ब्रह्माण्ड में सम्यक सत्य का दर्शन करता है। इन सूक्ष्म जड़ चेतन सब में सम्यक सत्य को देखना भी एक साधना है एवं कठिन अभ्यास है जो सबके लिए साध्य नहीं है। ऐसे देखने से तो वस्तुओं के ऊपरी भाग का थोड़ा आभास मात्र मिलता है पर उस वस्तु में निहित सत्य का तत्व का तथा यथार्थ का परिचय नहीं प्राप्त होता।[1] अतः यथार्थ को समझने एवं परखने के लिए अन्तर्दृष्टि चाहिए। इस अन्तर एवं बाह्यदृष्टि से जगत् के मूल कारण तथा मूल स्वरूप को समझना दर्शन का लक्ष्य है।[2]

कोई भी दर्शन केवल ज्ञान तक ही नहीं सीमित होता बल्कि वह व्यवहार में भी उतरता है क्योंकि मनुष्य को दार्शनिक दृष्टि समाज से ही मिलती है।[3] समाज में ही उसका पालन पोषण (शिक्षा तथा जीवन के अनेक अनुभव) होता है। वह प्रकृति के तीनों गुणों (जन्मना, जीना और मरना) को समाज में देखता है। उसे बालक,

---

१ परिषद पत्रिका अप्रैल १९७० 'दर्शन का स्वरूप और लक्ष्य
लेखक—एक जिज्ञासु—पृ० १०

२ वही पृ० ११

३ सीष भई संसार [illegible] चले जु साईं पास ॥ क० ग्रं० पृ० ६२

युवा तथा वृद्ध में एक तत्त्व और उस तत्त्व के विनाश का आभास मिलता है। वह अपने आस पास के वातावरण से बहुत प्रभावित होता है।[1] उस पर देश, काल एवं समाज की छाप होती है। कबीर का दर्शन मौलिक दर्शन है जो कि समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित है। उसमें एक सामाजिक चेतना है एक सामाजिक प्रेरणा है जो पथ भ्रान्त मानव को एक उचित मार्ग दिखाता है।

१ कबीर में सामाजिक चेतना

समाज में रहकर कबीर को अनेक अनुभव प्राप्त हुए थे। उनमें आत्म ज्ञान जाग गया था और उस आत्मज्ञान से उन्हें अनन्त सत्य की प्रतीति हुई थी। सत्य ने उनके भीतर ज्ञान की अनन्त आँखें खोल दी थी।[2] वे सारी की सारी आँखें खुली थी। कबीर समाज को 'आँखें फाड़ फाड़ कर' देखते थे और उन्हें हर एक व्यक्ति में सम्यक् रूप से सत्य का दर्शन होता था।[3] पर उस समय कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो जागकर आँखें खोलकर सम्यक दृष्टि से मानव को देखता। कबीर जागरूक थे। जाग गये थे। जागकर देखने थे सारा समाज सोया था। सबकी आँखें बन्द थी। वे सबको जगाते थे।[4] वे सबको वह वस्तु दिखाते थे जिसको मनुष्य देखकर भी नहीं देख पाता। वे देखने वालों को भी देखना सिखाते थे। वे आँख वालों के भी आँख थे। उनके भीतर ज्ञान की अनन्त आँखें खुली थी। उन मौलिक आँखों में बड़ा आकर्षक सौंदर्य था जो काजल लगाने से मोहक नहीं बनी थी बल्कि वे अपने चितवन के बाँकपन में अनोखी थी।[5] इन्हीं मर्मस्पर्शी आँखों से कबीर ने सबको मोह लिया था।[6]

---

१ कोई भी दर्शन शून्य में नहीं पैदा होता। वह जिस परिस्थिति में पैदा होता है उसकी उस पर छाप होती है।'

दर्शन दिग्दर्शन राहुल सांकृत्यायन—पृ० १६

२ सतगुरु की महिमा अनंत अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया अनंत दिखावणहार॥ क० ग्रं०, पृ० १

३ फाड़ दीदे मैं फिरौं नजरि न आवै कोइ।
जिहि घटि मेरा साइयाँ सो क्यूँ छाना होइ॥ क० ग्रं०, पृ० ४०

४ कबीर सूता क्या करै काहे न देखै जागि।
जाका सँग तैं बीछुड़या ताही के सँग लागि॥ क० ग्रं०, पृ० ४

५ काजल देइ सब कोई चषि चाहन माहि बिनान।
जिनि लोइनि मन मोहिया ते लोइन परवान॥

क० ग्रं०, पृ० ७६, पद २८

६ परिषद पत्रिका, अप्रैल १९७०, "भारतीय संस्कृति में कबीर का योगदान', लेखक श्री विष्णुकान्त शास्त्री पृ० ११२

सबको भुला दिया था । उनकी आँखों में बड़ा तेज था । उस तेज के सामने चौंसठ दीपक (चौंसठ कला) तथा चौदह चन्द्रमा (चौदह विद्या) के प्रकाश धुँधले थे ।[1] पण्डितों के गरुड़ पुराण तथा काजी के कुरान फीके थे । कबीर ने इस ज्ञान वस्तु को पाने के लिए कठिन साधना की थी । उन्हें सबल इन्द्रियों से जूझना पड़ा था[2] तथा प्रेम (भक्ति) के घर में पहुँचने के पहले शीश को उतार कर हाथ पर रखना पड़ा था ।[3] उन्होंने संसार में जो कुछ सीखा था अपने को मिटाकर सीखा था । जीवित रहते ही अपने को मृतक समझ लिया था । क्योंकि जहाँ अपने अस्तित्व तक अधिकार का भाव होता है वहाँ स्वार्थ आ जाता है । वहाँ परार्थ एवं परोपकार का भाव तिरोहित हो जाता है । इससे सर्वोदयवाद या समाजवाद का मार्ग अवरुद्ध होता है । कबीर बहुत ऊँचे विचारों के व्यक्ति थे । वे स्वार्थ की संकुचित सीमा में न बँधकर व्यापक मानवता के क्षेत्र में उतर गये थे । इसीलिए उन्होंने अपना घर जलाकर पर सेवा और सत्-संगति किया था । उनकी घर फूँक मस्ती में स्वार्थी प्रवृत्तियाँ जल गयी थीं । उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि पक्षों में पाये जाने वाले धन सब स्वार्थ के लिए हैं । भक्त का स्वार्थ तो भक्ति है । कबीर तो राम का स्वार्थी है । जिसने शरीर और शारीरिक सुख की कुछ परवाह भी नहीं की । उनका कहना था कि स्वार्थी घर जला देने से मानवतावादी घर की रक्षा हो सकती है । पैसा पैसा जोड़कर अपना घर बनाने वाला व्यक्ति घर के साथ मर जाता है पर धन की परवाह न करने वाला त्यागी पुरुष अमर हो जाता है ।[6] कबीर इसलिए दुखी थे कि सारा संसार अपने 'मैं' के लिए मरता है जिस मैं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं । संसार

---

१ चौंसठि दीवा जोइ करि चौदह चंदा माहिं ॥
तिहि घरि किसको चानिणों जिहि घरि गोविन्द नाहिं ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ २

२ कबीर मरि मैदान मैं करि इंद्रियां सूं जूझ ॥ क० ग्रं० पृष्ठ ५१

३ कबीर यहु घर प्रेम का खाला का घर नाहिं ॥
सीस उतारि हाथि करि सो पैसे घर माहिं ॥ क० ग्रं० पृष्ठ ५४

४ हम घर जाल्या आपणा लिया मुराड़ा हाथि । क० ग्रं० पृष्ठ ५३

५ आप सवारथ मेदिनी भगत सवारथ दास ।
कबीरा राम सवारथी जिनि छाडी तन की आस ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ ५६

६ घर जालो घर ऊबर घर राखो घर जाइ ।
एक अचम्भा देखिया मुडा काल को खाइ ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ ५०

की नश्वरता (काल) सबके मैं को तोड़ देती है फिर भी कोई इस बात को नही समझता। उस समय सभी अपने अपने सुख को अपने अपने वैभव विस्तार की खोज मे थे। सारा संसार खा पी कर हँसी खुशी से सोता था दास कबीर जाग-जाग कर रोते थे।[१] वे समाज की दीन हीन दशा को देखकर चिंतित थे। वे अपने लिए नही संसार के लिए रोते थे पर उनके लिए कोई नही रोता था।[२] कबीर ने अपने भीतर की तेजस्वी आंखो से समाज के एक एक व्यक्ति को हर एक समाज का हर तरह के धर्म एवं सम्प्रदाय को तथा समस्त मानव जाति को बाहर और भीतर से देखा था। उन्हे ऐसी दार्शनिक दृष्टि मिली थी जिससे वे अनुभव कर रहे थे कि समस्त मानव जाति समस्त प्राणि जगत के साथ एक ही विश्व प्राण लगा हुआ है। वही एक विश्व प्राण समस्त विश्व प्राणो के भीतर विचित्र खेल खेल रहा है। सभी उस असीम की सीमा (अंग) है। सभी सीमा के भीतर असीम अपना सुर अलाप रहा है।[३] इसी दृष्टि से उन्होंने जीव जीव में ब्रह्म को देखा था। इसी हृदय के भीतर उन्हे राम रहीम का आभास हुआ था। समाज के सारे स्त्री पुरुषो मे उन्हे भगवान ही भगवान के दर्शन होते थे।[४] उन्हे अपनी आत्मा के भीतर परमात्मा मिल गया था।[५] इसलिए उन्हें हरि मे तन और तन मे हरि का आभास हो रहा था।

---

१ सुखिया सब संसार है खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवै।
क० ग्रं० पृष्ठ ९

२ हूँ रोऊँ संसार को मुझे न रोवै कोइ।
मुझ को सोई रोइसी जे राम सनेही होइ ॥
क० ग्रं० पृष्ठ ६३

३ एकमेक रमि रह्या सबनि मैं तो काहे भरमावौ।
क० ग्रं० पृष्ठ ८१ पद ५२

४ कहै कबीर मैं पूरा पाया सब घट साहिब दीठा।
क० ग्रं०, पृष्ठ ८१ पद ५१

५ निज ही खोजि दिल दिल भीतर इहा राम रहिमाना।
जेती औरति मरदा कहिये सब मैं रूप तुम्हारा ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ १३१, पद २५९

६ आपा पर सम चीनियें तब मिलै आत्मा राम ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ १४२ पद ३००

७ हरि मैं तन है तन मैं हरि है है सुनि नाही सोई ॥
क० ग्रं० पृष्ठ १४०, पद २९३

उन्होने सत्य की आँखो से अपनी आत्मा को पहचान लिया था ।[1] आत्म ज्ञान से ज्ञान के सारे दरवाजे खुल गये थे । उनके भीतर चेतना की सारी वृत्तियाँ एक सूत्र मे ग्रथित हो गयी थी । उन्होने विश्व म समाज को समाज म स्त्री पुरुष को, स्त्री-पुरुष में गुण दोष को चेतना की इन्ही आँखो से देखा था और उन दोषो को दूर करने का प्रयास भी किया था । उनका कहना था कि मनुष्य तभी दोष मुक्त हो सकता है जब वह अपने को पहचान ले अपने ही भीतर गुण दोष को देख ले और अपने ही भीतर सत्य की पहचान कर ले ।[2] ससार का स्थिर तत्त्व ही सत्य है । उपज कर नष्ट होने वाला तत्त्व झूठा है ।[3] शरीर उपज कर नष्ट होता है । शरीर झूठा है नश्वर है । शारीरिक रूप पर मुग्ध होना नादानी है । शारीरिक बल से किसी को कष्ट पहुँचाना पाप है । शारीरिक भेद मानना अज्ञान है । शारीरिक रूप की दृष्टि से किसी को छोटा बडा, ऊँच नीच तथा छूत अछूत समझना आत्मा की कमजोरी है । शरीर तो जलाने पर जल जाता है, गाडने पर सड जाता है अन्तत मिट्टी है । इसलिए काया से दूर विचार करना ही "अनभ पद" को पाना है ।[4] काया के अन्दर क्या है ? काया के बाहर क्या है ? काया के निकट क्या है ? काया से दूर क्या है ? कबीर कहते हैं कि इन सीमाओ के बाहर और भीतर एक प्रकाश है । एक ज्योति है । उसी एक ज्योति से सब ज्योतिमान हुए हैं ।[5] आत्म द्रष्टा ही इस ज्योति को देख सकता है ।[6] यह ज्योति बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से अभेद है । जसे सागर और

---

१ कबीर सोचि विचारिया दूजा कोई नांहि ।
आपा पर जब चीन्हिया, तब उलटि समाना माहि ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ४३

२ जो दिल खोजौं आपणी, तो सब औगुण मुझ माहि ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ६७

मुकति सो जु आपा पर जानै सो पद कहाँ जु भरमि भुलानैं ॥
क० ग्र०, पृ० ७७७, (रमणी)

४ साँच सोइ जो थिरह रहाई, उपज बिनसै झूठ ह्वै जाई ॥
क० ग्र० पृष्ठ १७७ (रमणी)

५ सतौ सो अनभ पद गहिये ।
काया थें कछू दूरि विचार तास गुर मन धीज ॥
जारयो जर न काटयो सूक उतपत्ति प्रल न आव ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १०४ पद १५७

६ एक ज्योति से सब उत्पन्न कौन बाम्हन कौन सूदा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ८२, पद ५७

घड़े का पानी निभेद और एक है वैसे ही सभी जीव एक समान हैं ।[१] एक हैं । इसी ज्योति का प्रकाश जगत में हुआ है[२] और इसी ज्योति का प्रकाश हर एक शरीर में भी हुआ है । इसी भाव को लेकर कबीर कहते हैं कि हम सब में हैं और सब मुझमे हैं । तीनो लोक में हमारा ही विस्तार है और इस विस्तत ज्योति को हमने अपने आप में देखा है ।[४] इसी ज्योति का आवागमन हो रहा है । ज्योति एक प्रकृति तत्त्व है । हवा की तरह वह भी वेगवान और क्रियाशील है । यह ज्योति हर एक व्यक्ति का प्राण है ।[५] हर एक व्यक्ति की शक्ति है । यह शक्ति अकेले में कम है पर समष्टि रूप में अधिक है । महान है । ज्योति के इस महान रूप को सत संगति तथा पारस्परिक प्रेम में देखा और ग्रहण किया जा सकता है ।

२ समाज का संगठन (सत्संग द्वारा)

कबीर ने सत्संग द्वारा हरि भक्ति और हरि भजन का प्रचार किया था ।[६]

---

१ जाके अतम द्रिष्टि है साचा जन सोई ।

क० ग्र०, पृ० १११, पद १८१

२ ज्यूँ बिम्बहि प्रतिबिम्ब समाना उदिक कुम्भ बिगराना ।
कहै कबीर जानि भ्रम भागा जीवहि जीव समाना ॥

क० ग्र०, पृ० १११, पद १७९

३ घट की ज्योति जगत प्रकास्या, माया सोक बुझाना ॥

क० ग्र०, पृ० १०५, पद १५७

अबरन जोति सकल उजियारा, द्रिष्टि समाल दास निस्तारा ॥

क० ग्र०, पृष्ठ १८१, (रमैणी)

४ हम सब माहि सकल हम माहा, हम थैं और दूसरा नाही ।
तीनि लोक मे हमारा पसारा । आवागमन सब खेल हमारा ।
षट दरसन कहियत हम भेषा हम ही अतीत रूप नही रेखा ।
हम ही आप कबीर कहावा, हम ही अपना आप लखावा ॥

क० ग्र०, पृष्ठ १५१, पद ३३२

५ उतपत्ति व्यंद कहाँ थै आया जोति धरी अरु लागी माया ॥

क० ग्र०, पृ० ७९, पद ४१

६ त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा,
साध संगति मिलि करहु विचारा ॥
भगति कौ हीन जीवन कछू नाही,, उतपत्ति परलै बहुरि समाही ॥

क० ग्र०, पृष्ठ १७३ (

उन्होंने सत्य की आँखों से अपनी आत्मा को पहचान लिया था।[1] आत्म ज्ञान से ज्ञान के सारे दरवाजे खुल गये थे। उनके भीतर चेतना की सारी वृत्तियाँ एक सूत्र में ग्रथित हो गयी थी। उन्होंने विश्व में समाज को, समाज में स्त्री पुरुष को, स्त्री पुरुष में गुण दोष को चेतना की इन्हीं आँखों से देखा था और उन दोषों को दूर करने का प्रयास भी किया था। उनका कहना था कि मनुष्य तभी दोष मुक्त हो सकता है जब वह अपने को पहचान ले अपने ही भीतर गुण दोष को देख ले और अपने ही भीतर सत्य की पहचान कर ले।[2] संसार का स्थिर तत्त्व ही सत्य है। उपज कर नष्ट होने वाला तत्त्व झूठा है।[3] शरीर उपज कर नष्ट होता है। शरीर झूठा है नश्वर है। शारीरिक रूप पर मुग्ध होना नादानी है। शारीरिक बल से किसी को कष्ट पहुंचाना पाप है। शारीरिक भेद मानना अज्ञान है। शारीरिक रूप की दृष्टि में किसी को छोटा बड़ा, ऊँच नीच तथा छूत अछूत समझना आत्मा की कमजोरी है। शरीर तो जलाने पर जल जाता है गाड़ने पर सड़ जाता है अन्तत मिट्टी है। इसलिए काया से दूर विचार करना ही "अनभै पद" को पाना है।[4] काया के अन्दर क्या है ? काया के बाहर क्या है ? काया के निकट क्या है ? काया से दूर क्या है ? कबीर कहते हैं कि इन सीमाओं के बाहर और भीतर एक प्रकाश है। एक ज्योति है। उसी एक ज्योति से सब ज्योतिमान हुए हैं।[5] आत्म द्रष्टा ही इस ज्योति को देख सकता है।[6] यह ज्योति बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से अभेद है। जैसे सागर और

---

१ कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नाहिं।
आपा पर जब चीन्हिया, तब उलटि समाना माहि ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ४१

२ जो दिल खोजौं आपणी तो सब औगुण मुझ माहि ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ६७

मुकति सो जु आपा पर जानैं, सो पद कहाँ जु भरमि भुलानैं ॥
क० ग्र०, पृ० ७७७ (रमैणी)

४ साँच सोइ जो थिरह रहाई उपज बिनस झूठ ह्वै जाई ॥
क० ग्र० पृष्ठ १७७ (रमैणी)

५ सत्री सो अनभै पद गहिए।
काया पैं कछू दूरि विचार तास गुर मन धीजै ॥
जाइयो जरै न काटयो सूकै उतपति प्रलै न आवै ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १०४ पद १५७

६ एक ज्योति ॥ सब उत्पन्न कौन बामन कौन सूदा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ८२, पद ५७

घड़े का पानी निभेद और एक है वैसे ही सभी जीव एक समान हैं ।[1] एक हैं । इसी ज्योति का प्रकाश जगत म हुआ है[2] और इसी ज्योति का प्रकाश हर एक शरीर मे भी हुआ है । इसी भाव को लेकर कबीर कहते हैं कि हम सब म हैं और सब मुझमे है । तीनो लोक म हमारा ही विस्तार है और इस विस्तृत ज्योति को हमने अपने आप में देखा है ।[3] इसी ज्योति का आवागमन हो रहा है । ज्योति एक प्रकृति तत्त्व है । हवा की तरह वह भी वेगवान और क्रियाशील है । यह ज्योति हर एक व्यक्ति का प्राण है ।[4] हर एक व्यक्ति की शक्ति है । यह शक्ति अकेले मे कम है पर समष्टि रूप म अधिक है । महान है । ज्योति के इस महान रूप को सत सगति तथा पारस्परिक प्रेम में देखा और ग्रहण किया जा सकता है ।

२ समाज का सगठन (सत्सग द्वारा)

कबीर न सत्सग द्वारा हरि भक्ति और हरि भजन का प्रचार किया था ।[5]

---

१ जाके आतम द्रिष्टि है साचा जन सोई ।
क० ग्र०, प० १११, पद १८१

२ ज्यूँ बिम्बहि प्रतिबिम्ब समाना उदिक कुम्भ बिगराना ।
कहै कबीर जानि भ्रम भागा, जीवहि जीव समाना ॥
क० ग्र०, प० १११ पद १७९

३ घट की ज्योति जगत प्रकास्या माया सोक बुझाना ॥
क० ग्र०, पृ० १०५, पद १५७
अबरन जोति सकल उजियारा, द्रिष्टि समाल दास निस्तारा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १८१, (रमणी)

४ हम सब माहि सकल हम माहा, हम थैं और दूसरा नाही ।
तीनि लोक म हमारा पसारा । आवागमन सब खेल हमारा ।
षट दरसन कहियत हम भेषा हम ही अतीत रूप नही रेखा ।
हम ही आप कबीर कहावा, हम ही अपना आप लखावा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १५१, पद ३३२

५ उतपति व्यद कहाँ थ आया जोति धरी अरु लागी माया ॥
क० ग्र०, पृ० ७९ पद ४१

६ त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा,
साध सगति मिलि करहु बिचारा ॥
भगति की हीन जीवन कछू नाहीं उतपत्ति परल बहुरि समाही ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १७३ (रमैणी)

इन हरि भजन और हरि भक्ति करने वाले संतो ने प्रेम का मार्ग अपना कर हँसी खुशी से जिन्दगी बिताने की प्रथा चलाई थी।[1] जीवित रहने के लिए जी लगाकर परिश्रम से काम करना,[2] सत्यशील और नतिकता का प्रचार करना[3] पर उपकार और पर सेवा करना[4] इन संतो का उद्देश्य था। कबीर ने लोगो से कहा था कि असंत की संगति म कभी मत जाना। अच्छे लोगो के साथ रहना और सत संगति करना। हरि का गुण गान करना।[5] हृदय म हरि का नाम स्मरण करना और व्यवहार म पर सेवा करना।[6] हरि भजन कोई भी व्यक्ति कर सकता है पर सेवा कोई भी मनुष्य कर सकता है। भजन और सेवा म जाति और धम का कोई भी बधन नहीं। हरि भजन करने वाला मनुष्य भक्त होता है। भक्त की कोई जाति नहीं होती। उसका एक धम होता है। उसकी एक जाति होती है। वह सबको एक धम का, एक जाति का रूप देता है। वह स्वय अपने व्यवहार से अपनी रहनी म अपनी कथनी और करनी स धम बनाता है। इसीलिए ऐसे धम को सभी लोग ग्रहण भी करते हैं। धम को बनाने वाला भी मनुष्य है और धम को मानने वाला भी मनुष्य है। मनुष्य मनुष्य का सगठन समाज बनाता है और उस समाज की सुरक्षा क लिए मनुष्य वधानिक नियम बनाता है जिससे कि मनुष्य दूसरो का अहित न कर सके। यही पर हित की भावना धम है।[7] पहले धम का निर्माता शास्त्र माना गया था। वेद शास्त्र जो कहता था लोग उस धम मानते थ। पर कालान्तर मे समाज के बदलने

---

१ गोबिन्द के गुन बठे गहे खहूँ टूकी टेरी रे।
क० ग्र० पष्ठ ७९ पद ८५

२ कबीर जे धधे तो धूलि बिन धधे धूल नहीं।
ते नर बिनठ मूलि जिनि धधे मे ध्याया नहीं।
क० ग्र०, पष्ठ १७

३ साच सील का चौका दीज भाव भगति की सेवा कीजै॥
क० ग्र० पष्ठ १८६ (रमणी)

४ साहिब सेवा माहि है बेपरवाही दास। क० ग्र० पष्ठ १०

५ असत सगति जिनि जाइ रे भुलाइ साध सगति मिलि हरि गुन गाइ॥
क० ग्र० पष्ठ ९७, पद १२३

६ कहै कबीर हरि गुण गाइ लै सत सगति रिदा मझारि॥
जो सेवग सेवा करे ता सगि रमैं रे मुरारि॥
क० ग्र० पष्ठ ९७ पद १२१

७ पर हित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई॥
राम चरित मानस उत्तरकाण्ड, पृष्ठ ६१८ (तुलसीदासकृत)

के साथ साथ शास्त्र भी बदल गया । धर्म भी बदल गया । पुरानी भाषा से नयी भाषा निकली । पुराने वेद से नया वेद निकला । अब नयी भाषा में नये सिरे से चिन्तन हुआ । इस नयी भाषा और नए धर्म को समाज ने अपनाया और पुराना शास्त्र पीछे छूट गया । पर धर्म का मौलिक रूप नहीं बदला । धर्म के ऊपर कर्मकाण्ड तथा पाखण्ड की जो गन्दगी बैठ गयी थी नए धर्म ने उसमें साफ किया । जहाँ मनु ने धार्मिक होने के लिए मनुष्य में दस गुणों (धृति क्षमा दम चोरी न करना, शौच, इन्द्रियों पर नियन्त्रण बुद्धिशीलता, ज्ञान का उपार्जन सत्य और अक्रोध) का होना आवश्यक माना था[1] वहीं कबीर ने इन्हीं गुणों का प्रचार और प्रसार भी किया था । कबीर ने इन गुणों को इसी संसार से ग्रहण किया था और लोगों को ग्राह्य भी कराया था ।[2] वे जिन्दगी भर गुणों की बीन में लगे थे[3] तथा जन भाषा में इन गुणों का (धर्म का) प्रचार भी कर रहे थे । वे समाज में प्रचलित व्यावहारिक भाषा के माध्यम से लोगों के व्यवहार को बदल रहे थे । उनका कहना था कि सत संगति, व्यवहार ही इस जीवन का सार है और सब कुछ असार है ।[4] मनुष्य का मनुष्य से सद् व्यवहार ही धर्म है ।[5] धर्म व्यवहार से पूरी मानवता का कल्याण होता है । जो व्यवहारशील नहीं है वह अधर्मी है । इसीलिए कबीर ने पण्डित तथा मुल्ला को अज्ञानी कहा क्योंकि ये दोनों धर्म के नाम पर प्राचीन शास्त्र मत और कर्मकाण्ड को साथ लेकर चल रहे थे । ये दोनों व्यवहार हीन थे ।[6] जो समाज में पाखण्ड फैलाकर

---

१ धृति क्षमा दमो स्तेय शौच मिन्द्रिय निग्रह ॥
धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम ॥
मनु पृष्ठ ६–९२

२ सीष भई संसार थैं चले जु साँई पास ।
अविनासी मोंहि ले चल्या पुरई मेरी आस ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ ६२

३ कबीर अगुण ना गहै गुण ही क ले बीन ॥
घट घट महु के मधुप ज्यूँ पर आतम ले चीन्ह ।
क० ग्रं०, पृष्ठ ४३

४ सार आहि संगति निरबाना, और सब असार करि जाना ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ १७६

५ समाजवाद एक विवेचन लेखक–गुरुदत्त, पृष्ठ १

६ पाडोसी सू रूसणा तिल तिल सुख की हानि ॥
पण्डित भये सरावगी पानी पीवे छानि ॥
क० ग्रं०, पृष्ठ २८

भेद की दीवारें खड़ी कर रहे थे। ये पण्डित लोग बिना अनुभव किये मति पाण्डित्य ढो रहे थे। बिना अनुभव का ज्ञान मनुष्य और समाज के लिए घातक होता है। ऐसे ज्ञान से जिसका किसी को अनुभव न हो परिणाम बुरा होता है। ऐसे ज्ञान पर कोई विश्वास भी नहीं करता। जहाँ विश्वास नहीं है वहाँ पारस्परिक व्यवहार टूट जाता है। परिवार ही नहीं समाज और देश का व्यवहार बिगड़ जाता है। इसी ध्येय से कबीर ने हरि नाम स्मरण से लोगों में अनुभव की बात बताकर विश्वास पैदा किया था।[1] भक्त सन्त निश्छल और स्वार्थहीन होता है। वह मन वाणी और कर्म से सुमिरन करता है।[2] इसलिए समाज में उसका व्यवहार सबसे अच्छा होता है। वह भजन से समाज को संगठित बनाता है।

३ शिक्षा, पण्डित परम्परा के साथ कर्मकाण्ड

कबीर कालीन समाज की शिक्षा पद्धति प्राचीन वेदशास्त्र सम्मत थी। शास्त्र ने यह बना दिया था कि विद्या पढ़ने और पढ़ाने का अधिकार केवल पण्डित को है। पण्डित होने के लिए ब्राह्मण होना आवश्यक है। कबीर के समय तक लोगों में यह धारणा थी कि पण्डित वर्ग शास्त्रज्ञ तथा सवर्ण है। वह जाति से ऊँचा है। ज्ञान से महान् है। शरीर से पवित्र है और वाणी से देव है। इसीलिए पंडित वर्ग वेद-पुराण का पाठ करता था। जनता में उसी का उपदेश देता था।[3] ब्राह्मण वेद पुराण स्मृति का अध्ययन करता था। सन्ध्या पाठ गायत्री मन्त्रोच्चारण करता था।[4] इन्हीं षष्ठ कर्मों में वह भूला था।[5] ज्ञानाभिमान से वह फूला था।[6] उसमें अनुभव नहीं था। वह केवल वेद शास्त्र की प्रशंसा करता था पर उसमें निहित ज्ञान को जीवन के व्यवहार

---

१ कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल। क० ग्र०, पृ० ४

२ मनसा वाचा क्रमना कबीर सुमिरन सार ॥ क० ग्र०, पृ० ४

३ का पढ़िये का गुनिये, का वेद पुरान सुनिये।
क० ग्र० पृष्ठ १३२, पद २६२

४ वेद पुरान सुमृत गुन पढ़ि पढ़ि पढ़ि गुनि मरम न पावा।
सन्ध्या गायत्री अरु षट करमा तिनथे दूर बतावा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १३१

पंडित भूले पढ़ि गुन वेदा, आप न पावे नाना भेदा ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १८२, (रमैणी)

५ अरु भूले षट दरसन भाई पाखण्ड भेष रहे लपटाई ॥
क० ग्र० पृष्ठ १८२, (रमैणी)

६ पंडित माते पढ़ि पुरान, जोगी माते धरि धियान ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १६३

मे नही उतारता था । वेद पुराण का ज्ञान उसके लिए भार मात्र था ।[1] वह ज्ञान भार के साथ पत्थर मूर्ति भार भी ढोता था ।[2] कबीर ने ज्ञान अपने अनुभव मे पाया था और पडित ने उस पुस्तक स लिया था । इसलिए दोनो के ज्ञान मे काफी अतर था। कबीर आँखो की देखी पर विश्वास करते थ । पडित कागद की लेखी पर । इसलिए कबीर ने उन सबको छोड दिया जिस पडित मुल्ला ने लिखा था ।[3] इन पडितो द्वारा अपनाया गया वेद भी विष के समान आत्मघाती था ।[4] उस वेद को पढ कर पण्डित भी मरते जा रहे थे और समाज के साधारण लोग भी । उस वद ज्ञान से कोई ऐसा काय हल नहीं हो रहा था जिससे कि मनुष्य सन्तोष एव सुख पा सके ।

यद्यपि वेद कुरान म निहित ज्ञान झूठे नही थे[5] पर इन पण्डितो ने जिस रूप मे ग्रहण किया था वह सब झूठा था ।[6] वह पूरे समाज के लिए घातक था । पडित वग स्वय तो सालिग राम (पत्थर की मूर्ति) की पूजा करता था पर समाज से भी उस पत्थर की पजा करवाता था । ठाकुर बाबा के नाम पर पचामत चढता था पर भोग लगाने वाला स्वय पण्डित था ।[7] वह अपने स्वाथ के लिए विविध ढोग करता था । मूर्ति का पुजारी भी अपने स्वाद के लिए पूजा करता था । उपासना के नाम पर वह

---

१ वेद पुरान पढ़त अस पाँडे पर चदन जसे भारा ।
राम नाम तत समझत नाही अति पड मुखि छारा ॥
क० ग्र०, पष्ठ ७८, पद ३९

२ हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ ।
सतगुरु की कृपा भई डारया सिर थ बोझ ॥ क० ग्र० पष्ठ ३४

३ पण्डित मुल्ला जो लिखि दीया, छाडि चले हम कछू न लीया ॥
क० ग्र० पष्ठ २०६ (परिशिष्ठ)

४ जन जाग का ऐसेहि नाण, विष से लागै वेद पुरान ॥
क० ग्र० प० १५५ पद ३५२

५ वद कतब कह्यो क्यू झूठा झूठा जो न विचार ॥
क० ग्र०, पृष्ठ ८४ पद ६२

६ पण्डित भूल पढि गुण्य वेदा आप न पाव नाना भेदा ॥
क० ग्र०, प० १८२ (रमणी)

७ सालिगराम सिला करि पूजा तुलसी तोडि भया नर दूजा ॥
ठाकुर ल पाट पौढावा भोग लगाइ अरु आप खावा ॥
क० ग्र०, प० १८६ (रमणी)

अपना पेट भरता था।[1] कबीर ने कहा कि इन ढोंगियों की पूजा देखकर तो मेरी बुद्धि विकल हो जाती है। ये कितने मूर्ख लोग हैं कि जो पूजा हरि को नहीं भाती वही पूजा लोग करते हैं। जो पूजा करनी चाहिए उसे कोई भी नहीं करता।[2] अरे मूर्खो! पत्थर कहां मिठाई खाता है? पत्थर कहीं फल फूल खाता है? वह क्या जाने फूल, माला की सुगन्ध? वह क्या जाने मानव जीवन का दुख सन्ताप? जिस पत्थर को देव मानकर उपासना करते हो वह श्रम भी व्यर्थ है। पत्थर तो कुछ बोलता भी नहीं। क्या कोकट में व्यर्थ श्रम करते हो? मृतक शरीर पर चाहे चन्दन चढ़ा दो अथवा विष्ट पढ़ा दो उसका क्या घट जायगा।[3] हे मानव! फिर तुम पत्थर की पूजा क्यों करते हो? बिना विश्वास के क्यों पत्ते तोड़ते हो? बिना ज्ञान के क्यों देवता का सिर फोड़ते हो? हाथ जोड़कर क्यों राम की पुकार लगाते हो? इससे अच्छा है कि तुम पर आत्म की सेवा करो। पर लोग की सहायता करो। जिससे किसी की भलाई हो और सामाजिक संगठन बने। कबीर के समाज में माला फेरने वाले और माला पहनने वाले बहुत थे।[5] पर कहां माला फेरने से हरि मिलता है? माला तो काठ की है। काठ में हरि कैसे मिल सकता है? माथा मुंडाकर

---

१ लाडू लावण लापसी पूजा चढ़ै अपार।
पूजि पुजारा ले गया दे मूरति के मुह छार॥
क० ग्र० पृ० ११६ पद १९८

२ राम राइ भई विकल मति मोरी।
जे पूजा हरि नाही भावै सो पूजनहार चढावै।
जिहि पूजा हरि भल मानै सो पूजनहार न जानै॥
क० ग्र० पृ० १३६, पद २७५

३ जो पाथर को कहिते देव ताकी बिरथा होव सेव।
ना पाथर बोलै ना कछू देइ फोकट कर्म निहफल है सेइ।
जो मिरतक को विष्टा माहि रलाई तो मिरतक का क्या घटि जाई।
क० ग्र०, पृ० २२३ (परिशिष्ट)

४ कौन विचारि करत हो पूजा आतम राम अवर नहिं दूजा॥
बिन प्रतीत पाती तोडै ज्ञान बिना देवलि सिर फोडै।
लुचरी लपसी आप सघारै द्वारै ठाढा राम पुकारै॥
क० ग्र०, पृ० १००, पद १३५

५ माला तिलक पहरि मन माना, लोगनि राम खिलौना जाना।
क० ग्र० पृ० १५३, पद ३४३

माला पहनने से कहीं भक्ति मिलती है ?[1] माला तिलक तो ऊपर के ससारी भेष हैं। सही माला तो अन्तःकरण की शुद्धता है।[2] यदि मनुष्य में हृदय की शुद्धता नहीं है। ईमानदारी नहीं है तो छापा तिलक लगाना, मूड मुड़ाना, तीर्थ करना, गेरुआ वस्त्र धारण करना आदि ससारी भेष पेट भरने के लिये किए गये नृत्य (नाटक) हैं।[3] मनुष्य का स्वार्थ मनुष्य का भेष बदलता है। तभी तो कबीर ने कहा था कि इस ससार की माया ने (स्वार्थ) बड़े बड़े चतुर शास्त्रज्ञ पण्डित, मुल्ला तथा काजी को भी चुन चुन कर मार डाला। जोगी जती मुनि, दिगम्बर को तो जगल में मारा और समाज में वेद पाठी ब्राह्मण को, सेवा करता स्वामी को तथा अर्थ करते मिश्र को पछाड़ दिया।[4] स्वार्थ ने बड़े बड़े ज्ञानी, सज्जन को यहाँ तक कि दास को भी ससार सागर में डुबा दिया।[5] इसी स्वार्थ के कारण पूरे समाज में भ्रष्टाचार फैला हुआ था। इसी स्वार्थ के कारण चार वेद छः शास्त्र का बखान हो रहा था तथा तीर्थ-व्रत पूजा पाठ धर्म नियम, दान पुण्य हो रहा था।[6] स्वार्थ साधना के लिए समाज में न जाने कितनी लीला हो रही थी।[7] समाज के जितने व्यक्ति थे उतने रूप

---

१ माला पहरयां कुछ नहीं भगति न आई हाथि।
माथौ मूँछ मुँडाइ करि चल्या जगत के साथि ॥
क० ग्र० पृ० भेष को अग, पृष्ठ ३६

२ कबीर माला मन की और ससारी भेष। क० ग्र०, पृष्ठ ३५

३ मुष बूष हाइ भज्या नहिं सोइ कछयो डूबम उदर क ताई।
हिरदै कपट हरि सू नहिं साचो, कहा भयो जे अनहद नाच्यौ ॥
क० ग्र० पृ० १३६, पद २७८

४ तू माया रघुनाथ की खेलण चढी अहेडै।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे कोई न छोड्या नेडै ॥
मुनिवर पीर दिगम्बर मारे जतन करता जोगी।
जगल महिं के जगम मारे तूँरे फिरै बलिवन्ती ॥
वेद पढ़ता ब्राह्मण मारा सेवा करता स्वामी।
अरथ करता मिसर पछाड्या तूरे फिरै मैं मन्ती ॥
क० ग्र०, पृ० १९३, पद १८७

५ कबीर अग को को कहै भव जलि बूडे दास ॥ क० ग्र० प० २६

६ चारि वेद छह शास्त्र बखाने, विद्या अनन्त कथै को जानै।
तप तीरथ का तै व्रत पूजा, धरम नेम दान पुन्य दूजा। ॥
क० ग्र०, पृष्ठ १७४ (रमणी)

७ लीला करि करि भेष फिरावा ओट बहुत कछु कहत न आवा।
क० ग्र०, पृ० १७४ (रमणी)

थे । बाहर से रूप विभिन्नता तो थी ही पर अन्दर से वचारिक विभिन्नता भी थी
सबकी अपनी अपनी मन की नमुरी अलाप थी । समाज के मान्य ज्ञानी और पण्डि
(राम कृष्ण) लीला यश गान म लग हुए थ ।[1] इनकी भक्ति भी मनोरजन क लि
थी ।[2] इन पण्डितो की पूजा म न तो कोई सामाजिक सगठन था और न कोई मान
वतावादी विचार ही । इनके वद पुराण पढने से भी समाज का कुछ हित नही ह
रहा था । इसलिय कबीर न कहा कि पण्डित वेद पुराण रूपी खेत म 'बालि' क
खोज म (ज्ञान तत्त्व की खोज म) भटकते रहे । कबीर उस बालि (ज्ञान) क
तो पहले ही उठा लाये थे तो पण्डित उसे कस पा सकते थ ।[3] कबीर वद पुराण प
नही तो सुने अवश्य थे ।[4] व कमवादी थ । अनुभव की बात पर व विश्वास करते
पर पण्डित वग शास्त्रमतावलम्बी था । इसलिय कबीर कागज की लिखी पर भरोस
नही करते थ । पण्डित ही नही पूरा समाज कागज की लिखी पर भूला था । आत्म
अनुभव किसी म नही था ।[5] कबीर इसीलिय आत्म अनुभव का प्रचार कर रह थे
बिना आत्म अनुभव के कोई भी समाज सुधर नही सकता । जिस समाज म आत्म
अनुभव नही है उसमे आत्मा नही है । वह समाज निर्जीव है । जब तक समाज के
हर एक व्यक्ति अपने आप म नही जागेंगे अपने आप म नतिकता का रूप नही
लायेंगे तब तक समाज का सुधार होना असम्भव है । समाज को वधानिक नियम
कब तक सुधारेंगे । वह समाज जिसमे व्यक्तिगत आत्म चेतना नही है हर एक व्यक्ति
अपनी अपनी जिम्मेदारी का अनुभव नही करता उसे कोई भी शिक्षा कुशल नही
बना सकती, उसे कोई भी उपदेश ज्ञानी नही बना सकता और कोई भी प्रशासनिक
नियन्त्रण उसे नतिक पथ पर चलने के लिए बाध्य नही कर सकता । इस भूमि पर
जब से समाज बना है व्यक्ति म नतिकता लाने की लाखो कोशिश हुई हैं पर स्वाथ

---

१ कहैं कबीर गुणी अरु पण्डित मिलि लीला जस गाव ।
क० ग्र० पृ० ११३, पद १८६

२ पडिता मन रजिता भगति हेत ल्यौ लाई रे ।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर और कारण जाइ रे ॥
क० ग्र० पृ० १६४ पद १९०

३ चारिउ वेद पढाइ करि हरि सू न लाया हेत ।
बालि कबीरा ले गया पण्डित ढूढे खेत ॥
क० ग्र० पृ० २८

४ वेद पुरान सब मत सुनिक करी करम की आसा ।
क० ग्र० पृ० २४८ (परिशिष्ट)

६ कागद लिखि लिखि जगत भुलाना, मनही मन न समाना ।
क० ग्र०, पृ० ७७, पद ३४

मय भ्रष्टाचार सदव बना रहा । इसीलिए कबीर ने कहा 'आत्मा को चीन्हो'[1] तभी नर में नारायण का दर्शन पा सकते हो । सभी स्त्री पुरुष म आत्मा है । सभी म ईश्वर है ।[2] पर इस रूप को आत्मा के भीतर ही देखा जा सकता है ।[3] आत्म दृष्टा समाज को अभेद रूप म देखता है । उसके लिये सभी धर्म, सभी सम्प्रदाय तथा सभी जाति एक हैं ।

४ वर्ग सम्प्रदाय और जाति सम्बन्धी

कबीरकालीन समाज विविध वर्गो, सम्प्रदायो तथा जातियो म विभक्त था । मुख्य रूप से वर्ग हिन्दू मुसल्मान का था । सम्प्रदाय वष्णव नाथ, बौद्ध, जन आदि धर्मों का था । समाज म जाति का भेद सभी वर्गों एव सभी सम्प्रदायो म बना हुआ था । समाज का हर एक व्यक्ति किसी न किसी जाति या सम्प्रदाय का बन कर एक दूसरे का विरोधी बन गया था । उसके चारों तरफ स्वार्थ और संघर्ष की ज्वाला थी । सब अपनी अपनी आग म जल रहे थे । मनुष्य ने अपने इस विविध भेद से सारा समाज बिगाड डाला था ।[4] तभी तो कबीर ने कहा कि यह संसार पागल है जो एकता की ओर न जाकर अनेकता की ओर भागता है ।[5] आत्म चिन्तन न कर बाहर की दुनिया म भटकता है । मनुष्य बुराई अपने म न देखकर दूसरे म देखता है । अपनी कमजोरियो के कारण मनुष्य वचारिक भेद करता है । इसी अज्ञान के कारण समाज म विविध जाति धर्म तथा वर्ग बनते हैं । वस्तुत मनुष्य की एक ही जाति है एक ही धर्म है और उसका एक ही वर्ग है । जीव की उत्पत्ति अभेद है ।

---

१ आपा पर सभि चीन्हिये, दीसै सरब समान ।
इहि पद नरहरि भेटिये तू छाडि कपट अभिमान रे ॥
क० ग्र० प० ७० पद ५
आपा पर सभि चीन्हियें, तब मिलै आतमाराम ।
क० ग्र०, पृ० १४२, पद ३००

२ जैसी औरति मरदा कहिये, सब मैं रूप तुम्हारा ॥
क० ग्र० प० १३१, पद २५९

३ दिल ही खोजि दिल दिल भीतरि इहा राम रहिमाना ॥
क० ग्र० प० १३१ पद २५९

४ सल वाव घट दाहिं सलहि माहि ब्योहार ।
क० ग्र०, प० ४८

५ सारा सलव खराब किया है मानस कहा विचारा ।
क० ग्र०, पृ० ९३ पद १०६

६ कहै कबीर एक ही ध्यावो आवलिया ससार ।
क० ग्र०, पृ०

मनुष्य सभी जीवो में श्रेष्ठ है ।[1] उसमें बुद्धि विचार की प्रधानता है । पर उसका व गलत उपयोग करता है । इसीलिए कबीर ने कहा कि पहले बुराई अपने में खोजो सब बुराई तो अपने में ही है । करता ने तुझमें कोई बुराई भरके नही भेजा । स इसी ससार मे स्वार्थ के कारण दुर्गुण बन जाते हैं । इसमें करता (ईश्वर) का दो नही देना चाहिए ।[2] जन्म और मृत्यु की दृष्टि से प्रकृति का सत्य सब जगह सम है । किसी भी सजातीय स्त्री पुरुष के रज बीज से जीव की उत्पत्ति होती है ।[3] इ *लिए सभी स्त्री स्त्री हैं और सभी पुरुष पुरुष हैं । समक्ष्य काल स्त्री पुरुष के सयो* से जीव की सृष्टि होती है । वह चाहे किसी भी जाति, किसी भी धर्म अथवा कि भी परिवार का हो । माँ बनने की शक्ति स्त्री में है और बाप बनने की शक्ति पुर में ।[4] एक ही माँ ने ससार को जन्म दिया है ।[5] यदि माँ के पेट में पिता का बी (बिन्दु) नही पडता तो हिन्दू-तुर्क कहाँ से पैदा होते ?[6] उसी एक बूंद से स्त्री पुरु का जन्म होता है । सब में एक ही प्रकार का हाड मांस रक्त, मल मूत्र आदि रहता है । सभी पानी पवन के सयोग से शरीर में प्राण धारण करते है ।

१ मनिषा जन्म उतिम जो पाया जानू राम तो सयान कहावा ॥
क० ग्र० पृष्ठ १७६ (रमणी)

२ करता केरे बहुत गुण औगुण कोई नाहिं ॥
जे दिल खोजी आपणी तो सब औगुण मुझ माहिं ॥
क० ग्र० पृष्ठ ६७

३ रज बीरज की कली तापरि साज्या रूप । क० ग्र० पृष्ठ २६

४ माय न बाप आव नहिं जावा ना वहु जण्या न को वहि जावा ॥
क० ग्र० पृ० १८३ (रमणी)

५ एक ही जननी जाया ससारा कौन ज्ञान थ भये निनारा ॥
क० ग्र०, पृ० १८५

६ जब नहिं होते तुरुक न हिन्दू माँ का उदर पिया का ब्यद ॥
क० ग्र०, पृ० १८१

७ वेद कतेब दीन अरु दुनिया कौन पुरिष कौन नारी ।
एक बूँद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा ।
एक जोति थ सब उतपन्ना कौन बाह्मन कौन सूदा ॥
क० ग्र० पृ० ८२, पद ५७

+ + +

जब नहीं होते पवन न पानी जब नहीं होती सिष्टि उपानी ॥
क० ग्र०, पृ० १८१ (रमणी)

तात्विक और उत्पत्ति की दृष्टि मे सभी समान हैं। ऊँच नीच का भेद पदा करने वाले लोग पशु हैं जो नाना भ्रम मे भूले रहते हैं।[1] कबीर भीतर की आंखो से मनुष्य के भीतरी रूप को देखते थे। मनुष्य का वाह्य रूप भले ही आकर्षक हो, पर भीतर से तो वह दुगंध का ढेर है। उसके भीतर मल मूत्र मास, रक्त सब घृणित रूप हैं जलाने से भी दुगंध, गाड कर सडाने से भी दुगंध। मिट्टी मे गाडने से भूमि के कीडे और पानी म फेंकने से जल के कीडे (मछली, कच्छप आदि) उसे खा जाते हैं। बाहर फेंकने स उसे सियार, कुत्ते कौवे आदि खा जाते हैं। फिर है मनुष्य। तू क्यो टेढ़ा चलता है? क्यों जाति धर्म का भेद लेकर कलह करता है? क्या तुम्हारी आँखें फूट गयी हैं? तू हृदय की आंखो से नही देख पाता। तू माया, मोह के बन्धन मे पडकर अभिमानी बनता है। तुम्हे तो बिना पानी के ही डूब मरना चाहिए।[2] जन्मने के पहले तुम्हारा जाति भेद कहाँ था? मरने के बाद कौन सा धर्म और कौन सी जाति अपनाओगे?[3] अरे हिन्दू! तुम्हारे जनेऊ कृत्रिम हैं और मुसलमान! तुम्हारा खतना भी कृत्रिम है।[4] तुम दोनो एक ही मिट्टी के भाडे हो।[5] चौरासी लाख जीवो मे एक ही पचतत्त्व का विधान हुआ है। तुम सब अलग अलग भाव

---

१ जब लग ऊँच नीच करि जाना ते पशुआ भूले भ्रम नाना ॥

क० ग्र० पृ० ८४, पद ६६

२ चलत कत टेढो टेढो रे।

मऊ दुवार नरक धर मूँद तू दुरगंधि को बेढो रे।

जे जारे तो होइ भसमतन रहित किरम जल खाई।

सूकर स्वान काग को भखिन तामैं कहा भलाई ॥

क० ग्र०, पृ० १४५, पद ३११

३ फूटे नयन हिरदै माही सूझ मति एक नहिं जानी ॥

माया मोह ममिता सूँ बाध्यो बूडि मुयो बिन पानी ॥

क० ग्र० पृ० १४५ पद ३११

४ पानी पवन सयोग करि कीया है उतपाति ॥

सुनि मैं सबद समाइ गा तब कासनिकहियै जाति ॥

क० ग्र०, पृ० १८१ (रमैणी)

५ कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिन्दू तुरक न जान भेऊ ॥

क० ग्र० पृ० १८१ (रमणी)

६ एक ही खाक घडे सब भाँड़े एक ही सिरजन हारा ॥

क० ग्र०, पृ० ८२

लेकर अपने को हिंदू मुसलमान, छूत-अछूत आदि रूप मे मान लिए हो।[1] यहं तुम्हारी कमजोरी है।

तत्कालीन समाज के पांडे में जाति अभिमान के साथ साथ पवित्रता का अभिमान था। इसीलिए पांडे दूसरों का छुवा पानी नही पीते थे और दूसरों का छुआ खाना नही खाते थे। वे दूसरो को अछूत और अपवित्र समझते थे। पांडे के इस ढोंग को देखते हुए कबीर ने कहा था कि पांडे ! कौन सी जगह पवित्र है जहां भोजन किया जा सके। अन्न, चौका, बर्तन सब जूठा है। पिता माता सब जूठे हैं जिनसे तुम पैदा हुए हो। फिर किसको पवित्र माना जाय।[2] पूरा ससार ही छूत से पैदा हुआ है। यदि तुम्हे छूत से डर थी तो गर्भवास में क्यो आये ?[3] पांडे तुम तीर्थ करके पवित्र बनते हो। व्रत रहने पर अन्न नही खाते। जिस दूध को पीते हो क्या कभी उस पर विचार किया है ? वह दूध उसी रुधिर से बन कर आता है जो अप वित्र है।[4] बिना हृदय की शुद्धता के भगवान नही मिलता।[5] जो मनुष्य अपनी आत्मा को चीन्ह लिया। उसका शरीर निर्मल है। वह पवित्र है। जो उसे नहीं चीन्हा वह पतग की तरह सासारिकता की ज्वाला में जल मरता है।[6] इसलिए जाति धर्म तथा वर्ग की सीमा बनाना और मनुष्य मनुष्य में भेद रखना अन्याय है। ऐसे अन्याय से सामा

---

१ पच तत ले कीन्ह बधान चौरासी लष जीव समान।
बेगर बेगर राखि ले भाव तामें कीन्ह आप की ठाव ॥
क० ग्र० पृ० १०७

२ कहु पाडे सुचि कवन ठाव जिहि धरि भाजन बैठि खाऊँ ॥
अन्न जूठा पानी पुनि जूठा जूठ बैठि पकाया।
जूठे कडछी उन परोस्या जूठ जूठा खाया ॥
क० ग्र०, पृ० १२९, पद २५१

३ काहु को कीजे पाडे छोति बिचारा, छोतिहि ते उपना सब ससारा।
छोति छोति करता तुम्हही जाए तो ग्रभवास काहु को आए ॥
क० ग्र० प० ७९, पद ४२ (ख)

४ ताका दूध आप दुहि पीया, ग्रान विचार कछू नहि कीया ॥
पीया दूध रुध्र है आया, मुई गाइ तब दोष लगाया ॥
क० ग्र०, पृ० १८६, (रमणी)

५ अनहि छाडि इक पीवहिं दूध, हरि न मिल बिन हिरद सूध ॥
क० ग्र०, पृ० १६२, पद ३८०

६ जिनि चीन्हा ते निरमल अगा, जे अचीन्ह ते भये पतगा ॥
क० ग्र०, पृ० १८४ (रमणी)

क सगठन बिगडता है। कबीर ने भली भाँति मानव म निहित इन सकुचित त्तियो का देखा था और उसे दूर करने का प्रयास भी किया था।[1]

५ पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर

मनुष्य मनुष्य का सगठन परिवार और परिवार का सगठन समाज बनाता । समाज में रहने वाले मनुष्यो के विविध सम्ब ध होते हैं और उन सारे सम्ब धो को नाने वाले स्त्री पुरुष हैं। स्त्री पुरुष के एक सम्बन्ध स अनेक सम्बन्ध बनते हैं। रिवार का गठन माता पिता, पति पत्नी भाई-बहन, पुत्र पुत्री आदि को लेकर होता है। परिवार के हर एक यक्ति मे पारस्परिक प्रम और सद्‌व्यवहार होता है जिससे कि सब एक आर्थिक व्यवस्था मे जुडे रहते हैं। परिवार के हर सदस्य का यह उत्तर दायित्व होता है कि ये सब मिलकर आर्थिक सन्तुलन को स्थाई बनाएँ। स्वाथ के कारण पारिवारिक सगठन टूट जाता है। प्रत्यक व्यक्ति का स्वाथ प्रत्येक परिवार से जुडा होने के कारण परिवार परिवार का सम्ब ध बिगड जाता है। फिर तो समाज का सम्बन्ध भी विकृत हो जाता है। इसलिए स्वार्थी भाव म कुटुम्ब बनाना बुरा है।[2] समाज म रहकर यह कहना कि यह घर मेरा है।" यह परिवार मेरा है।' झूठ है। अन्याय है। परिवार और कुटुम्ब का अलगाव अनुचित है। कोई किसी का नही होता। सारे सम्बन्धो स अलग होकर देखो। ससार अन्धा है। सवत्र अँधेरा है।[3] इसी अँधेरे म सब भटक रहे हैं। जिन्हे ज्ञान हो गया है वे धन धाम, स्त्री बच्चे के मोह स मुक्त होते हैं। य स्वार्थी भाव मनुष्य और समाज के लिए विष हैं। इसीलिए कबीर ने कनक कामिनी की निन्दा की है और वे स्वय इन स्वार्थी सम्ब धा से दूर थ।

---

१ जामण मरण विचारि करि कूडे काम निवारि।
जिनि पथू तुझ चालणा सोई पथ सँवारि॥
क० ग्र०, पष्ठ १७

२ कुटब कारणि पाप कमाव तूं जाण घर मेरा।
ए सब मिले आप सवारथ इहा नही को तेरा॥
क० ग्र०, प० ९२, पद १०२

३ झूठा लाग कहैं घर मेरा।
जा घर माहैं बोले डोल सोई नही तन तेरा॥
बहुत बध्या परिवार कुटब मैं कोई नही किस केरा।
जीवत आंषि मू ढि किन देखो ससार अध अधेरा॥
क० ग्र० प० १२५ पद २३७

४ कबीर त्यागा ज्ञान करि कनक कामिनी दोइ॥
क० ग्र०

ये पारिवारिक सम्बन्ध मनुष्य को धोखा देते हैं। मन मे विचार करके देखो कौन किसका पति है ? कौन किसकी स्त्री है ? कौन किसका बेटा है ? कौन किसका बाप है ? कौन मरता है ? कौन किसके लिए दुख करता है ?[1] सब स्वार्थ के लिए रोते हैं। सब अपने परिवार के लिए रोते हैं। दूसरे परिवार का व्यक्ति मर जाता है तो कोई नही रोता। इसलिए हे प्राणी ! इस झूठे ससार से स्वार्थी प्रीति मत करो। इन सम्बन्धो के नष्ट होते देर नही लगती।[2]

कबीर ने अपने समाज को स्त्री पुरुष दो रूपो म देखा था और दोनो म एक ही तत्व का उन्हे आभास हुआ था।[3] तात्विक दृष्टि से वे सबको एक समझते थे पर वचारिक दृष्टि से सब अलग अलग थे। समाज म पति पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध भी अच्छे नही थ। उनके चरित्र के सम्बन्ध म एक दूसरे के प्रति अविश्वास पाया जाता है। इसीलिए कबीर ने कामी नर और कामिनी (नारी) की निन्दा की है।[4] जहाँ पत्नी पति के चरित्र पर सन्देह करती है और पति पत्नी के चरित्र पर वहाँ परिवार और समाज का सगठन टूट जाता है। समाज म भ्रष्टाचार फल जाता है। वश्या वत्ति को बढावा मिलता है। इसलिए कबीर न कहा 'पर नारी गमन बहुत बुरा है।[5] ऐसी स्त्री भी नीच है जो अपना पति छोडकर दूसरे पुरुष से प्यार करती है।[6] वह भले ही सोलहो शृगार कर ले पर अपन पति को अच्छी नही

---

१ कौन पुरिष को काकी नारी अभि अतरि तुम लहु बिचारी।
कौन पूत को काको बाप, कौन मर कौन सताप॥
क० ग्र० पृ० ९० पद ८९

२ प्राणी प्रीति न कीजिय इहि झूठ ससारो रे।
धूवा केरा धौलहर जात न लाग बारो र॥
क० ग्र० प० १६६ प० ३०८

३ जती औरति मरदा कहिय सब मैं रूप तुम्हारा॥
क० ग्र० पृ० १३१ प० २५९

४ नर नारी सब नरक है जब लगि देह सकाम। क० ग्र०, प० ३१

५ पर नारी क राचणे औगुण है गुण नाहि॥ क० ग्र०, पृष्ठ ३१

+ + +

पर नारी पर सुदरी, बिरला बच कोइ।
खाता मीठी खाँड सा, अति कालि विष होइ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ३०

६ कबीर जे की सुन्दरी, जानि कर बिभचार।
ताहि न कबहूँ आदर प्रम पुरिष भरतार॥ क० ग्र० पृष्ठ ६३

लगेगी।[1] इसलिए कबीर ने बार-बार ऐसी नारी और ऐसे पुरुष की निन्दा की है जो चरित्र से गिरे हुए होते हैं। पत्नी ही नही माता बहन और कन्या जितने भी नारी के सम्बन्ध पुरुष के साथ हैं यदि चरित्रहीन हैं तो वे परिवार और समाज के पतन के कारण होते हैं।

कबीर का नारी के प्रति दृष्टिकोण बहुत अच्छा था। जो नारियाँ पतिव्रता होती हैं, अपने पति से ही प्रेम करती हैं तथा चरित्र से पवित्र होती है वे पति और समाज से आदर पाती है।[2] वैसे तो कबीर ने काम ससग को भी बुरा नही माना है। काम तो सृष्टि का कारण है। काम को नियंत्रित रूप से रखना हरि को पाना है।[3] काम वासना का नियन्त्रण स्त्री पुरुष दोनो के लिए लाभदायक है। स्वास्थ्यप्रद है। कबीर ने सन्तानोत्पत्ति को भी बुरा नही माना है। उन्होने कहा है कि वह स्त्री धन्य है जो सुशील पुत्र को जन्म देती है। जिस कुल में ऐसी सन्तान की उत्पत्ति नही होती वह कुल आक पलास की तरह महत्त्वहीन और व्यर्थ है।[5]

६ नारी और पुरुष [सामान्य रूप मे]

कबीर के समाज मे नर नारी का एक मामा म स्तर बना हुआ था। नारी और पुरुष का पारस्परिक प्रेम ही समाज म विविध परिवार का रूप लिए था। यद्यपि नारी का स्तर कबीर के समाज म गिरा हुआ था पर वे गृहस्थी के कार्यो मे पुरुष के लिए सहायक थी। पानी भरना,[6] भोजन बनाना, सूत कतना[7] खेत खलिहान

---

१ नव सत साज कामिनी तन मन रही सजोइ।
पीव के मन भाव नही पटम कीय क्या होइ॥ क० ग्र० पृष्ठ १७

२ जे सुन्दरी साइ भज तज आनि की आस।
ताहि न कबहूँ परहर पलक न छाडै पास॥ क० ग्र० पृ० ६३

३ काम मिलाव राम कूँ जे कोइ जाण राषि॥ क० ग्र० पृ० ४०

४ कबीर धनि ते सुन्दरी जिनि जाया बसनौं पूत। क० ग्र०, पृ० ४१

५ कबीर कुल तौ सो भला जिहि कुल उपजै दास।
जिहि कुल दास न ऊपज, सो कुल आक पलास॥
क० ग्र०, पृ० ४१

६ नारी बिना नीर घट भरिया सहज रूप सो पाया॥
क० ग्र०, प० ७१

७ कातौं गी हजरी का सूत ननद के भइया की सौं॥
\+ \+ \+
चूल्हे अगनि बताइ करि फल सो दीयौ ठठाइ॥
क० ग्र०, पृ० ७२-७

ये पारिवारिक सम्बंध मनुष्य को धोखा देते हैं। मन में विचार करके देखो कौन किसका पति है ? कौन किसकी स्त्री है ? कौन किसका बेटा है ? कौन किसका बाप है ? कौन मरता है ? कौन किसके लिए दुख करता है ?[1] सब स्वार्थ के लिए रोते हैं। सब अपने परिवार के लिए रोते हैं। दूसरे परिवार का व्यक्ति मर जाता है तो कोई नहीं रोता। इसलिए हे प्राणी ! इस झूठे संसार से स्वार्थी प्रीति मत करो। इन सम्बन्धों के नष्ट होते देर नहीं लगती।[2]

कबीर ने अपने समाज को स्त्री पुरुष दो रूपों में देखा था और दोनों में एक ही तत्व का उन्हें आभास हुआ था।[3] तात्विक दृष्टि से वे सबको एक समझते थे पर व्यावहारिक दृष्टि से सब अलग अलग थे। समाज में पति पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध भी अच्छे नहीं थे। उनके चरित्र के सम्बन्ध में एक दूसरे के प्रति अविश्वास पाया जाता है। इसीलिए कबीर ने कामी नर और कामिनी (नारी) की निंदा की है।[4] जहाँ पत्नी पति के चरित्र पर संदेह करती है और पति पत्नी के चरित्र पर वहाँ परिवार और समाज का संगठन टूट जाता है। समाज में अत्याचार फैल जाता है। वेश्या वृत्ति को बढ़ावा मिलता है। इसलिए कबीर ने कहा, पर नारी गमन बहुत बुरा है।[5] ऐसी स्त्री भी नीच है जो अपना पति छोड़कर दूसरे पुरुष से प्यार करती है।[6] वह भले ही सोलहो शृंगार कर ले पर अपने पति को अच्छी नहीं

---

१ कौन पुरिष को काकी नारी, अभि अंतरि तुम लेहु बिचारी।
कौन पूत को काको बाप कौन मरे कौन संताप॥
क० ग्र० पृ० ९० पद ८९

२ प्राणी प्रीति न कीजिये इहि झूठ संसारो रे।
धूंवा केरा धौलहर जात न लागै बारो रे॥
क० ग्र० पृ० १६६ पद ३९८

३ जेती औरति मरदा कहिये सब मैं रूप तुम्हारा॥
क० ग्र०, पृ० १३१, पद २५९

४ नर नारी सब नरक है जब लगि देह सकाम। क० ग्र०, पृ० ३१

५ पर नारी के राचणे औगुण है गुण नांहि॥ क० ग्र०, पृष्ठ ३१
\+ \+ \+
पर नारी पर सुंदरी, बिरला बचै कोइ।
खाता मीठी खांड सी, अंति कालि विष होइ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ३०

६ कबीर जे की सुंदरी, जानि करै बिभचार।
ताहि न कबहूँ आदर प्रेम पुरिष भरतार॥ क० ग्र० पृष्ठ ६३

लगी ।[1] इसलिए कबीर ने बार-बार ऐसी नारी और ऐसे पुरुष की निन्दा की है जो चरित्र से गिरे हुए होते हैं । पत्नी ही नहीं माता बहन और कन्या जितने भी नारी के सम्बन्ध पुरुष के साथ हैं यदि चरित्रहीन हैं तो वे परिवार और समाज के पतन के कारण होते हैं ।

कबीर का नारी के प्रति दृष्टिकोण बहुत अच्छा था । जो नारियाँ पतिव्रता होती हैं अपने पति से ही प्रेम करती हैं तथा चरित्र से पवित्र होती है व पति और समाज में आदर पाती हैं ।[2] वैसे तो कबीर ने काम सगन को भी बुरा नहीं माना है । काम तो सृष्टि का कारण है । काम को नियंत्रित रूप से रखना हरि को पाना है ।[3] काम वासना का नियन्त्रण स्त्री पुरुष दोनों के लिए लाभदायक है । स्वास्थ्यप्रद है । कबीर ने सन्तानोत्पत्ति को भी बुरा नहीं माना है । उन्होंने कहा है कि वह स्त्री धन्य है जो सुशील पुत्र को जन्म देती है ।[4] जिस कुल में ऐसी सन्तान की उत्पत्ति नहीं होती वह कुल आक पलास की तरह महत्त्वहीन और व्यर्थ है ।[5]

६ नारी और पुरुष [सामान्य रूप में]

कबीर के समाज में नर नारी का एक सामान्य स्तर बना हुआ था । नारी और पुरुष का पारस्परिक प्रेम ही समाज में विविध परिवार का रूप लिए था । यद्यपि नारी का स्तर कबीर के समाज में गिरा हुआ था पर वे गृहस्थी के कार्यों में पुरुष के लिए सहायक थी । पानी भरना[6] भोजन बनाना, सूत कतना खेत खलिहान

१ नख सत साजे कामिनी तन मन रही सजोइ ।
पीव के मन भाव नहीं पटम कीयें क्या होइ ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ३७

२ जे सुन्दरी साइ भज तजै आंन की आस ।
ताहि न कबहूँ परहर पलक न छाडै पास ॥ क० ग्र०, पृ० ६३

३ काम मिलावै राम कूँ जे कोइ जाणै राखि ॥ क० ग्र० पृ० ४०

४ कबीर धनि ते सुन्दरी जिनि जाया वैसनों पूत । क० ग्र०, पृ० ४१

५ कबीर कुल तौ सो भला जिहि कुल उपजै दास ।
जिहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥ क० ग्र० पृ० ४१

६ नारी बिना नीर घट भरिया सहज रूप सो पाया ॥ क० ग्र०, पृ० ७१

७ कानों गो हजरी का सूत ननद के भइया की सौं ॥
+ + +
चूल्हे अगनि बताइ करि फल सो दीयो ठठाइ ॥
क० ग्र०, पृ० ७२-७३, पद ११

म किसान (पति) के साथ काम करना[1] आदि स्त्रियो के सहयोगी कम थ। ये स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर मगल गीत गाती थी।[2] जब दुल्हन बनकर पति से मिलने के लिए जाती थी तो बहुत शृगार करती थी।[3] समाज मे पतिव्रता नारियाँ भी थी जो अपने पति के सुख के लिए सवस्व योछावर करती थी।[4] ऐसी पत्नियाँ अपने पति की बहुत प्यारी होती थी।[5] समाज म अपने पति के प्रति स्त्रियो का त्याग महान था। इसीलिए समाज म सती प्रथा का प्रचलन था। पति के मरन पर वे अपने को भी जला देती थी।[6] कबीर न अपने समाज म स्त्रियो के अच्छ और बुरे दोनो रूपो को देखा था। जहाँ पुरुष और स्त्री म चरित्रहीनता थी वहाँ उन्होन दोनो की नि दा की है। वसे तो उन्होंने पूरी नारी जाति को एक रूप मे देखा है। पर कौन नारी अपने पति की प्यारी है, कौन जान सकता है।[7]

साधारण जन जीवन नारी के वासना, सौन्दय पर आकर्षित था। उसके रूप

---

१ गग तीर मोरी खेती बारी जमुन तीर खरिहाना।
सातौं बिरही मेरे नीपज पचू मोर किसाना॥
क० ग्र० प० ७३, पद १४

२ दुलहिन गावहु मगलचार॥
हम धरि आय हो राजा राम भरतार॥ क० ग्र० पष्ट ६९, पद १
\+ \+ \+
सखी सहेली मगल गाव सुख दुखमाथ हलद चढाई॥
क० ग्र०, पृष्ठ १२२–२३, पद २१६

३ हरि मोरा पीव मैं राम की बहुरिया।
किया स्यगार मिलन कै ताई काहे न मिलो राजाराम गुसाई॥
क० ग्र० पष्ठ ५५ पद ११७

४ सती बिचारी सत किया, काठी सेज बिछाइ।
ल सूती पिव आमणा चहुँ दिसि अगनि लगाइ॥ क० ग्र०, पष्ठ ५५

५ जो प पतिव्रता है नारी, कसे ही रहीसो पियहि पियारी॥
क० ग्र०, प० १००, पद १३९

६ सती जलनकू नीकली पीव का सुमिरि सनेह।
शब्द सुनत जीवनी क्ल्या भूलि गइ सब देह॥
क० ग्र०, प० ५६

७ एक ही रूप दीस सब नारी ना जानो को पियहि पियारी॥
क० ग्र०, पष्ठ ९६, पद ११८

पर मुग्ध था।[1] विषय विकार में रुचि लेता था।[2] इससे पुरुष और नारी दोनों का चरित्र गिरा हुआ था। इसलिए कबीर ने ऐसे रूप को विष कहा, जिसके ग्रहण से मनुष्य मर जाता है।[3] यही (नारी) संसार की माया है। यही समाज का बंधन है जिसके फेर मे पड़कर मनुष्य जहाँ का तहा ही रह जाता है। काम क्रोध, मोह लोभ की ज्वाला मे अपने आप भस्म हो जाता है।[4] इसलिए हे मानव ! विषय रस को छोड़कर हरि भक्त बनो। नव बनो। बार-बार नर तन नहीं मिलेगा।[5]

७ वैयक्तिक जीवन में सुधार

कबीर ने वेद पुरान शास्त्र मत का सार निचोड़ कर कहा था कि सभी धर्म सभी उपदेश का लक्ष्य है—राम नाम का जानना।[6] राम नाम जानने का अर्थ है सद असद वस्तु याकि तत्व का विवेचन होना। बिना आत्म दर्शन के बिना आत्म पहचान के विवेक नहीं होता। आत्मा के स्वरूप की पहचान राम नाम जानने से ही होती है।[7] कबीर ने अपने-आप को अपने में ही देखकर अपने को पहचान लिया था।[8] वे आत्म द्रष्टा थे। आत्मा ही उनकी दृष्टि थी। उसी दृष्टि से वे पूरे समाज को देखते थे। उन्होंने पूरे समाज के आत्म तत्त्व को तिलक रूप मे ग्रहण किया

---

१ तथा का बदन देखि सुख पावै साध की संगति कबहूँ न आवै ॥

क० ग्र०, पृष्ठ १२६ पद २३९

२ विष विकार बहुत रुचि मानी, माया मोह चित दीन्हा ॥

क० ग्र० पृष्ठ १२७ पद २४४

३ एक कनक अरु कामिनी विष फल कीएउ पाइ ॥

देखे ही थें विष चढ़ खाये सू मरि जाइ ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ३१

४ काम क्रोध घट भरे विकारा आपहि आप जरै संसारा ॥

क० ग्र०, पृष्ठ ९१

५ कबीर हरि की भगति करि तजि विषिया रस चोज।

बार बार नहीं पाइए मनिषा जन्म की मौज ॥

क० ग्र०, पृष्ठ १९

६ कहैं कबीर मै कथि गया कथि गया ब्रह्म महेस।

राम नाँव ततसार है सब काहू उपदेस ॥ क० ग्र०, पृष्ठ ४

७ राम नाम जाका मन माना, तिन तो निज सरूप पहिचाना ॥

क० ग्र० पृष्ठ १७३ (रमैणी)

८ आप मैं तब आपा निरष्या अपन पै आपा सूझ्या।

आप कहत सुनत पुनि आपना अपन पै आपा बूझ्या ॥

क० ग्र०, पृष्ठ ७१ पद ६

था ।[१] भक्ति के विनम्र भाव से सबको अपना बना लिया था । झुककर सबको झुका लिया था । उन्होंने समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समता की दृष्टि से देखा था । उनका कहना था कि शूद्र म्लेच्छ तथा ऊँच नीच का भाव वही रखता है जो आत्मा को पहचानता नहीं ।[२] आत्मद्रष्टा ही समाज का सच्चा व्यक्ति है ।[३] आत्मद्रष्टा केवल द्रष्टा ही बन कर नहीं जीता । वह कथनी करनी और रहनी में एक साम्यता स्थापित करता है । वेद पुराण शास्त्र मत को अपने व्यवहार में उतारता है । वह सारे पोथी ज्ञान अभिमान को भूलकर कर्म करता है ।[४]

कबीर ने सबको कर्म करने की चेतावनी दी थी ।[५] ऐसा कर्म नहीं जो राम नाम विहीन है । जो मनुष्य को लोभ के फन्दे में फँसाकर मार डालता है ।[६] वही कर्म, कर्म है जो बहुजन सुखाय बहुजन हिताय होता है । ऐसा कर्म वही कर सकता है जो स्वार्थहीन होता है । स्वार्थ का त्याग तभी सम्भव है जब मन पर नियन्त्रण रखा जाय ।[७] मन पर नियन्त्रण तभी सम्भव है जब मनुष्य इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर ले । अपनी इच्छाओं को कम कर सन्तोष धारण कर ले । तभी उसमें सत्यशील और श्रद्धा का भाव जग सकता है ।[८] सत्यशील दया धर्म से मनुष्य नैतिकता धारण करता है । नैतिकता से वह दुर्गुण (पर स्त्री गमन चोरी ठगी मद्यपान जुआ, कुसंगति आदि) का त्याग करता है । इसलिए कबीर ने कहा कि हे अज्ञानी जीव ! तू इन्द्रिया से

---

१ तत तिलक तिहूँ लोक में राम नाव निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया सोभा अधिक अपार ।। क० ग्र०, पृष्ठ ४

२ सूद्र मलेच्छ बसै मन माही, आतमराम सु चीन्हा नाही ।।
क० ग्र० पृष्ठ ११२

३ एक आतमद्रिष्टि है साचा जन सोई ।। क० ग्र० पृष्ठ १११ पद १८१

४ वेद पुरान सब मत सुनि के करी करन की आसा ।।
क० ग्र० पृष्ठ २४८ (परिशिष्ट)

५ कहैं कबीर सुनहु रे संतो करि ल्यो जे कछु करणा ।।
लख चौरासी जोनि फिरौगे बिना राम की सरना ।।
क० ग्र०, पृष्ठ १२७, पद २४४

६ राम नाम जाण्या नहीं पाल्यो कटक कुटुम्ब ।
धंधा ही मे मरि गया बाहर हुई न बंब ।। क० ग्र०, पृ० १९

७ मन मारया ममिता मुई अह गई सब छूटि । क० ग्र०, पृ० ५१

८ मन न मारया मन करि सके न पंच प्रहारि ।
सील साच सरधा नही इद्री अजहूँ उघारि ।।
क० ग्र०, पृष्ठ २०

युद्ध कर नैतिकता पर विजय प्राप्त करो। नैतिकता से मनुष्य अनुचित गुणों का त्याग और सद्गुणों को ग्रहण करता है।[1] वह जीवन की नकली धारणाएँ छोड़कर व्यावहारिक जीवन में सत्य का आचरण करता है।[2] इसी नैतिकता का प्रचार कबीर ने दया, धर्म, परसेवा और परोपकार के रूप में किया था। जो मनुष्य सेवक बनकर समाज की सेवा करता है, वही भगवान को पा लेता है।[3] वस्तुतः मानव जीवन का हेतु ही परसेवा और परोपकार है। सद्गुणों के विकास से मनुष्य में परोपकार का भाव जागता है जिससे व्यक्ति और समाज दोनों का हित होता है।

८ श्रम और भगवद् भक्ति

मनुष्य को चाहिए कि सभी सामाजिक भेद भाव को भूल कर वह कर्म करे। वही कर्म सच्चा कर्म है जिसमें किसी का आर्थिक शोषण न हो। अपने कर्म द्वारा किसी को (आर्थिक) पीड़ा पहुँचाना पाप है। समाज के लोगों पर अन्याय है। यदि मनुष्य अपने कर्म द्वारा किसी की भलाई नहीं कर सकता तो उसे अपने कर्म द्वारा किसी को पीड़ा भी नहीं देनी चाहिए। जो मनुष्य दूसरों को पीड़ा पहुंचाता है वह अधर्मी है।[4] इसलिए देह की आजीविका के लिए किया गया श्रम सही कर्म है। परिवार तथा समाज के हर एक व्यक्ति को यथा शक्ति श्रम करना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी आजीविका के लिए कोई उत्पादक श्रम नहीं करता वह व्यक्ति समाज का शत्रु है। उस समाज में रहने का कोई अधिकार नहीं है। इसीलिए कबीर ने जोगी जती, जटाधारी आदि भेषधारी भिक्षुकों को कर्महीन कहा है।[5] दूसरे जीव की

---

१ पूठ पड्या न छूटियो सुणि रे जीव अबूझ।
कबीर मरि मदान में करि इन्द्रया सूं झूझ ॥ क० ग्र०, प० १३

२ कबीर औगुण ना गहै गुण ही कौं ले बीनि।
घट घट महु के मधुप ज्यु पर आत्म ले चीन्हि ॥ क० ग्र० पृष्ठ ५३

३ साइं सेती सांच चलि औरां सूं सुध भाइ ॥ क० ग्र० प० ३६

४ सेवग सो जो लागै सेवा, तिनही पाया निरंजन देवा ॥
क० ग्र०, पृ० १५४, पद ३४८

५ गुरु सेवा करि भगति कमाई जो तै मनिषा देही पाई।
क० ग्र०, पृ० १५४, पद ३४८

६ जीव बधत अरु धरम कहत हौ अधरम कहाँ है भाई।
आपन तौ मुनिजन ह्वै बैठे कासनि कहौ कसाई ॥
क० ग्र० पष्ठ ७९, पद ३९

हिंसा करके बिना श्रम किये पेट भरने वाला व्यक्ति कैसे मोक्ष पा सकता है ?[1] हिंसक होना और कामचोर होना अनैतिकता है। मनुष्य को कर्म करके इस अनैतिकता का निवारण करना चाहिए। कबीर ने कई बार यह कहा है कि यह संसार श्रम करने वालों के लिए है। जागकर देखो ! यह जग धंधा के अलावा और कुछ नहीं है। वह मनुष्य अन्धा है जो राम-नाम और कर्म के महत्त्व को न जानकर सांसारिक प्रलोभनों में पड़ा रहता है।[3] कबीर कर्म और राम नाम की भक्ति को साथ लेकर चलते हैं। बिना भक्ति के श्रम व्यर्थ है। नीरस और बेमन का है। भगवद् भक्ति से श्रम परिहार होता है। हरि भजन से कोई भी कार्य सरल होता है। हरि भजन से मनुष्य मनुष्य का पारस्परिक प्रेम बढ़ता है। हरि भजन और सत्संग ही समाज के सुधार का उपाय है। हरि भजन से ही मनुष्य आत्म संतुष्टि पाता है। कबीर ने उत्पादक कार्य करके हरि भजन करने का उपदेश दिया था। उस समय समाज सुधार के लिए श्रम और भगवद् भक्ति आवश्यक थी। बिना भक्ति और बिना सत्संगति के मनुष्य जीवन की ऊपरी धारणाएँ ग्रहण कर लेता है। उसमें पाखण्ड एवं मिथ्याचार का प्रवेश हो जाता है। वह आलसी तथा कर्मकाण्डी बन कर जीवन का गन्तव्य भूल जाता है। इसलिए कबीर ने ऐसे लोगों को कर्म करने की ओर आकर्षित किया।

निष्कर्ष

कबीर को अपने अनुभव और चिन्तन से मानव को मानव रूप में देखने की सम्यक दृष्टि मिल गई थी। उन्होंने भक्ति और सत्संगति द्वारा दास भक्त तथा साधुओं का एक संगठित समाज बनाया था। ये भक्त आत्म निर्भर थे। कमाकर खाना और सत्संग द्वारा समाज को एकता में जोड़ना इन सन्तों का उद्देश्य था। कबीर ने कोरे पाण्डित्य का खण्डन मण्डन करके अनुभूत सत्य का प्रचार किया। उन्होंने मानव को तात्त्विक दृष्टि से अभेद बताकर जाति वर्ग तथा सम्प्रदाय के भेद को दूर किया। मानव की एकता उनका आत्म दर्शन था। इस आत्म दर्शन से वे सामाजिक एकता को सुदृढ़ बनाना चाहते थे। उनका कहना था कि समाज के सभी स्त्री पुरुष आत्म पहचान से ही अपने दोषों का त्याग और सद्गुणों को ग्रहण कर

---

१ जोति जंगम जती जटाधार अपनैं औसर सब गये हैं हारि ॥

क० ग्र० पृष्ठ १६२ पद ३८४

२ खाहि हलाल हराम निवारै भिस्त तिनहु कौ होई।

क० ग्र०, प० ९२, पद १०२

३ चतनि देख रे जग धंधा।
राम नाम का मरम न जानं माया के रसि अंधा ॥

क० ग्र० पृ० १२९, पद २५३

सकते हैं। सदगुणा से ही मनुष्य में सद्‌व्यवहार और नतिकना आती है। नतिकता से ही मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन तथा सामूहिक जीवन म सुधार होता है। नतिकता ही मनुष्य को सत कम करना सिखाती है। सतकम से व्यक्ति और समाज का हित होता है। मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य सत्कम करना है। कम ही मनुष्य के आर्थिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन को परस्पर समन्वित करता है। लोक पर लोक का हित मानव समाज की व्यवस्था (मुख सुविधाओ) पर आधारित है। समाज की यह व्यवस्था तभी मजबूत होगी जब मानव द्वारा नतिक कम किय जायेंगे।

सप्तम अध्याय

कबीर की भक्ति और तत्कालीन समाज

भक्ति शब्द का शाब्दिक अर्थ भजना या सेवा करना है।[1] पर कबीर ने वेदशास्त्र में निहित ज्ञान को नहीं माना है।[2] इसलिए वे धर्म शास्त्र में निहित भक्ति के स्वरूप को भी नहीं मानते। उन्हें सहज रूप में मानव कल्याण के लिए जो कुछ अनुभूत सत्य प्राप्त हुआ था उसी पर वे विश्वास करते थे।[3] बिना जाने, बिना देखे, बिना परखे किसी चीज पर विश्वास करना अन्ध विश्वास है और बिना ज्ञान विचार किये ऐसे मार्ग पर चलना अन्धानुकरण है। आत्मा की कमजोरी है। जब मनुष्य आत्म निर्बल होता है तब वह किसी पर भी भरोसा कर बैठता है। गलत हो या सही किसी के आकर्षण में खिंच जाता है। उसे अपने में सोच विचार करने की कुछ शक्ति ही नहीं होती। तब वह समाज में प्रचलित देखा देखी प्राह्यता को ग्रहण करता है। जिन चीजों को आत्म ज्ञान तथा अनुभूति से जाना जाता है उन्हें वह नहीं जान पाता।[4] कबीर के समाज में ऐसे बहुत से लोग थे जो देखा-देखी माला तिलक के साथ भक्ति करते थे।[5]

---

१ "कबीर एक विवेचन" लेखक सरनाम सिंह पृष्ठ ३९७

२ पंडित मुल्ला जो लिखि दिया छाडि चले हम कछू न लिया ॥
क० ग्र० पृ० २०६

३ का पढ़िये का गुनिये का वेद पुराना सुनिये ॥
पढ़े गुने मति होई, मैं सहज पाया सोई ॥
कहैं कबीर मैं जाना मैं जाना मन पतियाना ॥
पतियाना औ न पतीज, तौ अंध कू का कीज ॥
क० ग्र०, पृ० १३२ पद २६२

४ देखा देखी पाकड जाइ अपरच छूटि ।
क० ग्र०, पृ० २७

५ देखा देखी भगति है कदे न चढई रंग ॥
क० ग्र० पृ० ३७

१ भक्ति से कबीर का तात्पर्य

कबीर परम्परागत भक्ति के स्वरूप को न अपना कर स्वानुभूतिपरक भक्ति को अपनाए थे। उनकी स्वानुभूति समाज में रह कर जगी थी, सामाजिक चेतना बनकर जगी थी और मानव कल्याण के लिए जगी थी। कबीर ने भक्ति अवश्य किया था। पर बिना फूल माला के, बिना चन्दन तिलक के बिना देव और बिना मन्दिर के।[1] वे न पूजा करते थे और न नमाज पढ़ते थे पर हृदय में निराकार को नमस्कार करते थे।[2] यह निराकार कौन था ? यह राम और हरि कौन था ? जिसकी भक्ति कबीर कर रहे थे। कबीर ने इस बात को स्पष्ट रूप से कहा है कि यह तब जान सकते हो जब अपने शरीर में निहित आत्मा को जान लोगे।[3] आत्मा ही तो राम है।[4] वही ॥ सब में रम रहा है। इसलिए हरि को पाने का उपाय है, आत्मा की भक्ति आत्मा का भजन। मानव ! तुम सब आत्मा हो। अपने आप में उस आत्मा को देखो। चिंतन करो। विचार करो। सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करो। यही आत्मा की भक्ति है। यही निराकार की भक्ति है।

कबीर ने आत्मा के भजन को हरि भजन कहा है। आत्मा की पहचान को निराकार की पहचान माना है। तब प्रश्न उठता है कि आत्मा की पहचान कैसे हो ? आत्मा है क्या ? वस्तुतः आत्मा चेतन शक्ति है। चेतन शक्ति हममें तुममें सबमें है। हर तन में हरि है। हरि एक है इसीलिए तन है। अन्यथा तन नहीं है। हरि नहीं है बिलकुल शून्य है ? ऐसा नहीं कह सकते। कबीर कहते हैं कि

---

१ माला पहर्‍या कुछ नहीं भगतिन आई हाथि।
माथो मूँछ मुड़ाइ करि चल्या जगत के साथि॥
क० ग्र० पृ० ३६

छापा तिलक लगाइ करि दगध्या लोक अनेक।
क० ग्र०, पृ० ३६

जीव बिहूणा देहुरा देह बिहूणा देव।
कबीर तहाँ बिलम्बिया करै अलप की सेव॥
क० ग्र०, पृ० १२

२ पूजा करूँ न नमाज गुजारूँ एक निराकार हिरदै नमसकारूँ।
क० ग्र० पृ० १५२, पद ३३८

३ कहै कबीर घट लेहु विचारी औघट घाट सींचि ले क्यारी।
क० ग्र०, पृ० ११७

४ कौन विचारि करत हौ पूजा आतमराम अवर नही दूजा।
क० ग्र०, पृ० १०० पद १३५

आकाश, पाताल तथा दसों दिशाओं में गगन का विस्तार है। इस आकाश में अनेक पिण्ड घूम रहे हैं। जड़ भी घूम रहा है, चेतन भी घूम रहा है। चेतन शक्ति, जो नश्वर शरीर में आकर जीव का रूप धारण करती है और जब शरीर नष्ट हो जाता है तब वह पुनः इसी विशाल गगन में व्याप्त हो जाती है। महान आकाश ज्यों का त्यों बना रह जाता है।[1] इस आकाश में युगों से जीव पिण्ड बन बिगड़ रहे हैं। वही चेतना हर एक व्यक्ति में है। फिर क्या उस चेतना को नहीं पहचाना जा सकता? कबीर कहते हैं कि उस चेतना को पहचानने के लिए जीवन को देखना चाहिए। बिना मरे जीवन को देख नहीं सकते।[2] बिना मरे जीवन को समझ नहीं सकते। मरना जीवन में एक ही बार होता है। फिर मर कर देखेंगे क्या? मरने का अर्थ है उन सारे सांसारिक लगाव से अलग हो जाना (निरासक्त हो जाना) जिनसे कि साधारण जन-समुदाय लगकर काम क्रोध मोह और लोभ के फंदे में पड़ जाता है। नैतिकता को खो देता है। इसलिए इस बात को समझने के लिए काया से दूर विचार करना चाहिए।[3] जहाँ अपनापन कुछ नहीं है। मैं का भाव जहाँ नष्ट हो गया है। उसी नहीं की जगह जहाँ से हटकर अपनापन मिटा दिया गया है आत्मा को पहचानो। वहाँ अपना कुछ नहीं है। अपना अस्तित्व समाप्त हुआ मान लिया गया है। इसलिए वहाँ से नहीं भागना चाहिए। उसी नहीं की जगह जम कर गहन चिंतन करना चाहिए।[4] उस नहीं की जगह तन का अस्तित्व

---

१ आकाश गगन पाताल गगन दसों दिसा गगन रहाइ ले।
आनंद मूल सदा परसोतम घट बिनसे गगन न जाई ले॥
हरि मैं तन है तन मैं हरि है है सुनि नाहीं सोई।
कहै कबीर हरि नाम न छाड़ू सहज होइ सो होई॥
क० ग्रं० प० १४० पद २९३

\+ \+ \+

नव लख तारा चलै मंडल चलै ससिहर भान॥
क० ग्रं०, पृ० १४२, पद ३०१

२ अब क्या कीजै ज्ञान विचारा निज निरखत गत ब्योहारा।

\+ \+ \+

वो जीवन भला कहाई बिन मूवा जीवन नाहीं।
क० ग्रं०, प० १३७, पद २८२

३ काया थैं कछू दूर विचार तास गुरु मन धोज। क०ग्रं०, पृ० १०४,

४ जहा नहीं जहा नहीं तहाँ कछू जानि जहा नहीं तहा लेहु पछाणि।
नाहीं देखि न जइये भागि तहा नहीं तहा रहिये लागि॥
क० ग्रं०, पृ० १४८, पद ३२६

नहीं होता। तन का अस्तित्व वहाँ तब नही होता जब मन नहीं होता।[1] कबीर कहते हैं कि तन मन का अन्त ही भाव भगति" है और इसी भाव भक्ति से हरि से सम्बन्ध भी स्थापित होता है।[2] वही भक्त है जो तन मन को सौंप कर भक्ति करता है।[3] तन मन के समपण से मैं' का भाव मिट जाता है। जब मैं" का भाव मिट जाता है तब हरि का ही रूप रह जाता है। सब अभिमान नष्ट हो जाता है। जब मनुष्य मे अभिमान नही रहता तब वह भक्त है। भक्त ही नही तब वह भक्त भगवान के समान है।[5] भक्त अभिमान तथा स्वार्थ छोड़कर भाव, प्रेम की पूजा करता है। भाव प्रेम से सद्व्यवहार बनता है। सद व्यवहार से मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध दृढ़ होता है। कबीर ने इसी भाव प्रेम की पूजा समाज मे रहकर की थी। उन्हे यह भाव प्रेम अनुभव मे मिला था। इसलिए वे अनुभव देखी बात कहते थे।[6] यह अनुभव मनुष्य को उचित उपाय से प्राप्त होता है। खोजने से अपने ही शरीर मे मिलता है। जो मनुष्य अपने मे इस अनुभव को उतार लेता है। वह भक्त है। उसकी

---

१ तन नाही कब जब मन नाहिं मन परतीत ब्रह्म मन माहि ॥
क० ग्र०, प० १५९ पद ३२६

२ कहै कबीर तन मन को ओरा भाव भगति हरि सू गठजोरा ॥
क० ग्र० प० ११९ पद २१३

३ तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहिसुहागनि कहैं कबीरा।
क० ग्र०, प० १००, पद १३९

\+ + +

ऐसा कोई ना मिल राम भगति का मीत।
तन मन सौंपे मग ज्यू सुन बधिक का गीत ॥
क० ग्र०, प० ५२

४ जब मैं था तब हरि नही अब हरि हैं मैं नाहि।
क० ग्र०, पृ० १२

५ कहैं कबीर जिनि गया अभिमाना, सो भगता भगवत समाना ॥
क० ग्र०, पृ० १००, पद १३७

६ भाव प्रेम की पूजा ताथ भयो देव थ दूजा।

\+ + +

कहै कबीर मैं गावा, मैं गावा आप लखावा।
जो इहि पद माहि समाना, सो पूजनहार सयाना ॥
क० ग्र०, प० १३६, पद २७५

३ सेवा (भक्ति)

कबीर ने आत्मा को भगवान माना है। हर एक आत्मा का रूप भगवान का रूप है। इसलिए सबकी सेवा के रूप में भगवान की भक्ति करनी चाहिए। यह सेवा तभी भक्ति कही जा सकती है जब वह निष्काम (निःस्वार्थ) भाव से की जाय।[1] यह सेवा तन मन से ही नहीं धन से भी करनी चाहिए। सामाजिक व्यवस्था से मनुष्य का धन सीमित है। अधिकार सीमित है। वह अपनी ही सेवा नहीं कर पाता। उसकी भूख, उसके भजन में बाधक है। भूखे भजन नहीं होता। माला, तिलक पेट नहीं भर सकते।[2] इसलिए सतसंग करना आवश्यक है। सतसंग में ही मनुष्य की समस्या सुलझ सकती है। समाज के संत सगे साधुजन ही गरीबी की समस्या को हल कर सकते हैं।[3] पर मनुष्य को आलसी नहीं होना चाहिए। श्रम करने की लगन आवश्यक है। श्रम करने से जी चुराना भक्ति से अलग होना है। कबीर ने कहा है कि राम नाम का मूल अर्थ है कर्म करना।[4] इसलिए मानव देह पाकर कर्म करना चाहिए। कर्म का फल हरि तथा राम की भक्ति का फल है।[5] भक्ति करके मनुष्य भूखा नहीं रह सकता। बिना कर्म किये राम को दोष देना उचित नहीं।[6]

---

१ जब लगि भगति सकामता तब लग निष्फल सेव ॥
कहै कबीर वै क्यू मिलै निहकामी निज देव ॥
क० ग्र० पृ० १५

२ भूखे भगति न कीजै, यह माला अपनी लीजै।
क० ग्र०, प० २४० (परिशिष्ट)

३ यह ससार गभीर अधिक जल को गहि लावै तीरा।
नाव जिहाज खेवइया साधू उतरे दास कबीरा ॥
क० ग्र०, प० ११४ पद १८९

४ चेतनि देखै रे जग धंधा।
राम नाम का मरम न जानै माया कै रसि अंधा।
क० ग्र०, प० १२९, पद २५३

५ मानिष जनम अवतारा ना ह्वै है बारम्बारा ॥
+ + +
जावत हो कछू कीजै हरि राम रसाइन पीजै।
कहैं कबीर जग धंधा काहू न चेतो अंधा ॥
क० ग्र०, प० १४१, पद २९६

६ भाई रे सकहु त तनि बुनि लेहु रे, पीछै रामहि दोस न देहु रे ॥
क० ग्र०, पृ० १३९, पद २८९

बिना श्रम किये जीवन बनता नहीं। घिस घिस कर चन्दन लगाने से राम नहीं मिलता। बिना श्रम के लोग अनेक दुःख झेलते हैं। इसलिए सत्संग-मत के अनुसार मन में धैर्य धारण कर सहज रूप से श्रम करना चाहिए।[1] कबीर सत्संग को ही जीवन का सार और मोक्ष मानते हैं।[2] सत्संग मनुष्य को श्रम करना सिखाता है। श्रम आत्मा और पर आत्मा की सेवा है। श्रम व्यष्टि और समष्टि की सेवा है। वही राम का प्यारा है वही राम का भक्त है जो हित (भलाई) का काम करता है। और संसार में सब कुछ अनहित है पर जिससे व्यक्ति और समाज का हित होता है वही धर्म है। वही स्थिर सत्य है।[3] मानव हित के लिए राजा बदलता है। राज्य बदलता है। धर्म बदलता है। साहित्य बदलता है। मानव के हित-हेतु सारा इतिहास बदलता है। जहाँ तक सत्य चलता है वहाँ तक स्थायित्व चलता है। जहाँ सत्य का हनन हो जाता है स्थायित्व ढह जाता है। सत्य का मार्ग बहुत लम्बा है। चलने की होंस सभी करते हैं। पर बिना पथ परिचय के जाये कहाँ ?[4] जो जानते हैं वे उस पथ पर चल नहीं पाते। सुर नर मुनि तक थक जाते हैं।[5] मार्ग सत्य और नैतिकता का है। स्वार्थ के कारण कोई सत्य का निर्वाह नहीं कर पाता। इसलिए वह बीच में ही रह जाता है। मनुष्य को सत्य पथ पर चलाने के लिए अनेक नियम बनते हैं। अनेक धर्म बनते हैं। सत्य की जगह वाद खड़ा हो जाता है। सत्य का

---

१ कहौ संतो कैसे जीवन होई।
चंदन घसि घसि अंग लगाऊँ राम बिना दारुन दुख पाऊँ।
संत संगति मति मन करि धीरा सहज जानि रामहि भज कबीरा॥
क० ग्र०, प० ९५, पद ११५

२ सार गहि संगति निरवाना, और सब असार करि जाना॥
क० ग्र०, प० १७६ (रमैंणी)

३ अनहित आहि सकल संसारा हित करि जानिय राम पियारा॥
साध सोइ जो थिरह रहाई, उपज बिनस झूठ ह्वै जाई॥
क० ग्र० प० १७७ (रमैंणी)

४ चली चली सब को कहै मोहि अंदेशा और।
साहिब सू परचा नहीं ए जाहिं गे किस ठौर॥
क० ग्र०, पृ० २४

५ कबीर मारग अगम है मुनि जन बठि थाकि।
\+ \+ \+
सुर नर थाके मुनि जना जहाँ न कोई जाइ॥
क० ग्र०, पृ० २४

कुछ भी अश व्यवहार म नही उतर पाता। फिर झूठे का व्यवहार समाज म चलने लगता है। पूजा, अरचा ज्ञान, ध्यान सबमे स्वाथ आ जाता है। फलस्वरूप मनुष्य सत्य से दूर हो जाता है। कबीर ने सारे भ्रम जाल को, सारे स्वाथपूण कम को उतार कर फॅक दिया था।[1] इसीलिए वे सत्य तक सहज रूप से पहुँच गये थे। उनका कहना था कि सहज रूप से (ईमानदारी से) कम करने स जो भक्ति का फल मिलता है, वही सबसे उत्तम और मधुर है। जो अति कष्ट करने से फल मिलता है वह कड़ुआ होता है।[2] यह कम करने का यायपूण रास्ता नही है। "मैं' और 'मेरे" के लिए सब लोभमय कम करते हैं। चोरी, ठगी तथा बेईमानी से बनाया गया धन मनुष्य को कष्ट देकर इकट्ठा किया जाता है। इसलिए यह अन्याय है। अधम है। इस कपट युक्त व्यवहार को भाव भक्ति से ही दूर किया जा सकता है।

अ साधु-सन्त की सेवा

साधु की सेवा भगवान की सेवा है।[3] हर एक साधु हरि भक्त है। चाहे वह गरीबी के कारण झोपडी मे ही क्यो न रहता हो।[4] यह अपनी भक्ति के कारण महान् है। वह अपनी सच्चाई के कारण अनुपम है। इसीलिए कबीर ने कहा है कि वह घरी, मुहूत तथा दिन धन्य है जिस दिन भगवान् के भक्त घर मे आ जाते हैं।

---

१ हरि बिन झूठे सब ब्योहार, कते कोऊ करौ गॅवार॥
झूठा जप तप झूठा ज्ञान, राम नाम बिन झूठा ध्यान॥
इन्द्री स्वारथ मन के स्वाद, जहाँ साँच तहाँ माड वाद॥
दास कबीर रह्या ल्यो लाइ भम कम सब दिय बहाइ॥

क० ग्र०, प० १२९, पद २५२

२ मीठा सो जो सहज पावा अति कलेस मैं करू कहावा।
ना जरिय ना कीज मैं मेरा तहा अन द जहा राम निहोरा॥

क० ग्र०, प० १७७ (रमैणी)

३ जिहि घरि साध न पूजिय हरि की सेवा नाहि।
ते घर मडहट मारषे भूत बस तिन माँहि॥

क० ग्र०, पृष्ठ ४१

साहिब सेवा माहि है बे परवाही दास॥

क० ग्र०, पृ० १०

४ राम जपत दालिद भला टूटी घर की छानि॥
ऊँचे मन्दिर जालि द जहाँ भगति न सारग पानि॥

क० ग्र०, पृ० ४१

उनके दर्शनमात्र से हरि का साक्षात्कार होता है।[1] सत्संग से मनुष्य के मन को संतोष मिलता है। यह बात कहने से कोई विश्वास नही करेगा। जब तक कि कोई व्यक्ति अपने आप उस हद तक नही पहुँच जाता। उस सत्संग का आनन्द नही ले पाता। वस्तुत साधु संगति ही मोक्ष तथा वकुण्ठ है।[2] साधु संगति मे मनुष्य मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेता है। सांसारिक प्रलोभन के बन्धनो से मुक्त हो जाता है। कबीर ने इसी सतसंग के भरोसे कहा था कि हम नही मरेगे। संसार भले ही मर जाय। मैंने अपने मन को मानव के मन मे मिला लिया है। मानवता से मेरी सहानुभूति हो गई है। इसलिए हम सुख का सागर और अमरत्व दोनो मिल गया है।[3] *कबीर की समाज के प्रति बडी आत्मीयता थी। वे साधु समाज मे* रहकर मानव के हित की बात सोचते थे। इसलिए पूरा समाज उनका सगी था।

४ पारिवारिक सम्बन्धो मे समाज की सेवा (भक्ति)

कबीर आत्म द्रष्टा थे। आँखो देखी पर विश्वास करते थे। उन्होने अपनी आँखो से राम को कभी नही देखा था। इस लिए वे राम को नही जानते थे।[4] दुनिया ने राम तथा कृष्ण को भगवान् के रूप मे माना था। ईश्वर के दोनो अव–

---

१ धनि सो घरी महूरत्य दिना जब ग्रिह आये हरि के जना।
दरसन देखत यहु फल भया, नैना पटल दूरि है गया ॥
+ + +
कहैं कबीर सत भल भाया, सकल सिरोमनि घट मैं पाया ॥
क० ग्र० पृ० १६५ पद २१५

२ कहैं सुन कैसे पतिअइये जब लग तहाँ आप नहिं जइये ॥
कहैं कबीर यहु कहिये काहि साध संगति बकुंठहि आहि ॥
क० ग्र० पृ० ७५, पद २४

३ हम न मरै मरि है संसारा हम कूं मिल्या जियावनहारा ॥
+ + +
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं हरि न मरै हम काहे कूं मरिहैं।
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा अमर भये सुख सागर पावा ॥
क० ग्र०, पृ० ८०, पद ४२

४ भारी कहौं त बहु डरौ हलका कहूँ तो झूठ।
मैं का जाणौं राम कूं नैनूं कबहूँ न दीठ ॥ क० ग्र० पृ० १३

तारा को विविध सम्बन्धो के रूप मे पूजा था।[1] कबीर ने सबको झूठा और गलत कहा।[2] क्योंकि भगवान के मा-बाप नही होते। वह न तो किसी को पैदा करता है और न उसे ही कोई पैदा करता है।[3] जो राम अवतार लिया था वह तो अब नही है फिर पूजा किसकी की जाय ? कबीर कहते हैं कि जिस समाज म मनुष्य का रहना, जीना हो रहा है उसी समाज म भगवान भी रहता है। घट घट मे वह साईं रम रहा है। समाज के एक व्यक्ति के साथ उस ईश्वर की चेतना क्रियाशील है। मा, बाप, भाई बहन पिता, पुत्र तथा गुरु शिष्य सबम उस एक की सत्ता समाई हुई है। जो यह जान कर सभी मनुष्य म भगवान का रूप देखता है, वह भक्त स्वय भगवान है।[4] वही भक्त सत्य द्रष्टा है। उसे ही पूर्णता की दृष्टि मिल सकती है। उसी पूर्ण दृष्टि से वह पूरे समाज को समान रूप से देख सकता है।[5]

कबीर ने अपने को स्त्री रूप म कल्पित कर हरि भजन किया है। इस रूप

---

१ ना दसरथ घरि अवतरि आवा ना लका का राव सतावा ॥
देव कूख न अवतरि आवा ना जसुदा लै गोद खिलावा ॥
+ + +
ना तिप सब्द न स्वाद न सोहा, ना तिहि मात पिता नही मोहा ॥
ना तिहि सास ससुर नही सारा, ना तिहि रोज न रावन हारा ॥
क० ग्र० पृ० १८४-८५ (रमणी)

२ झूठे झुठ रह्यो उरझाई, साचा अलख जग लख्या न जाई ॥
क० ग्र० पृ० १७९ (रमैणी)

३ माय न बाप आव नही जावा ना बहु जण्यां न को वहि जावा ॥
क० ग्र० पृ० १८३ (रमणी)

४ लोहा कचन समि करि देख, त मूरति भगवाना।
क० ग्र० पृ० ११२, पद १८४
+ + +
इहि पद नर हरि भेटिये तू छाडि कपट अभिमान रे ।
क० ग्र०, पृष्ठ ७०, पद ५

५ एक एक जिनि जानिया तिनही सच पाया ।
प्रेमी प्रीत ल्यो लीन मन ते बहुरि न आया ।
पूरे की पूरी द्रिष्टि पूरा करि देख ।
कहै कबीर कछू समुझि न परई या कछू बात अलेख ॥
क० ग्र०, पृ० ११२, पद १८१

मे उन्होंने समाज को यह बताने की कोशिश की है कि पत्नी का व्यवहार पति के साथ,[1] बहू का सास के साथ,[2] माँ का बेटे के साथ[3] बहन का भाई के साथ[4] किस प्रकार होना चाहिए। समाज के सभी व्यवहार विश्वास तक चलते हैं। जहाँ विश्वास नष्ट हो जाता है वहाँ सम्बन्ध टूट जाता है। बिना विश्वास के पति पत्नी का सम्बन्ध भी अधूरा है। इसीलिये कबीर ने पतिव्रता नारी की भूरि भूरि प्रशंसा की है।[5] वे स्वयं अपनी भक्ति में पतिव्रता का आचरण करते हैं। पत्नी का पति के साथ सबसे मधुर सम्बन्ध होता है। वह अपने तन, मन तथा जीवन को पति के हाथ समर्पित कर पति की सेवा करती है। ऐसे ही हर एक व्यक्ति को पतिव्रता नारी की तरह रहकर समाज की सेवा करनी चाहिए। ऐसी पतिव्रता नारी को समाज का कोई भी पुरुष दीन दुखी नहीं देख सकता। यदि पतिव्रता नारी वस्त्रहीन है तो उस पुरुष को ही लज्जा आनी चाहिए जिसकी वह पत्नी है।[6] समाज में रहकर इस प्रकार की भक्ति करने वाला व्यक्ति समाज का सच्चा पुरुष है। जिस प्रकार हर एक मनुष्य अपने परिवार के साथ प्रेम व्यवहार तथा विश्वास रखता है उसी प्रकार उसे समाज के हर एक व्यक्ति के साथ व्यवहार रखना चाहिए। जैसे वह कमा कर अपना और अपने परिवार की सेवा करता है वैसे ही समाज की सेवा उसे करनी चाहिए। यदि सेवा करने में कष्ट होता है तो उसे भी सुख समझना चाहिए। यदि

---

१ हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
क० ग्र० पृ० ९५ पद ११७

२ सासू कहै कांति बहू ऐसे बिन कात निसतरिबो कैसें।
क० ग्र०, प० १२३, पद २१८

३ हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहै न तेते।
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता॥
क० ग्र०, पृष्ठ ९४, पद १११

४ अब घर जाहु हमारी बहना।
+ + +
कातौ गी हजरी का सूत ननद के भइया की सौं॥ क० ग्र०, प० ७२

५ जो पै पतिव्रता है नारी, कैसे हो रही सो पियहिं पियारी।
क० ग्र० प० १००, पद १३९

६ पतिव्रता नांगी रहै तो उसही पुरिस कौं लाज॥ क० ग्र०, प० १५

७ सेवत जन सेवा कै ताईं बहुत भांतिकरि सेवि गुसाईं।
सेवा करता जो दुख भाई, सो दुख सुख बरि गिनहु सवाई।
क० ग्र०, पृ० १८३ (रमणी)

समाज का हर एक व्यक्ति इस प्रकार की सेवा करता है तो कोई भी व्यक्ति दीन दुखी नहीं रहेगा। कबीर के समाज मे इस प्रकार की भक्ति का अभाव था । इसी लिए लोग दुख के भवसागर मे डूब रहे थे।[1] अपने तो बिना भक्ति के डूब ही रहे थे दूसरों को भी पाखण्ड के नरक मे डुबा रहे थे। ये पुजारी पण्डा लोग समाज मे कर्मकाण्ड की आग लगाकर मन्दिर म जाकर सोते थे।[2] न स्वय कुछ उत्पादन काय करते थे और न दूसरो को करने ही देते थे ।

वह भक्ति कोई भक्ति नहीं जो मनुष्य को कम करने मे बाधा डाले । तत्कालीन समाज म प्रचलित सारे भक्ति के रूप वाह्याडम्बर थे । कोई माला लेकर बैठा था तो कोई तसबी लेकर।[3] सबकी बदगी झूठी थी। सबका पजा, नमाज व्यथ था। सब झूठ पढ़कर सत्य का नाश कर रहे थे और व्यथ मे समय बिता रहे थे।[4] ऐसी झूठी भक्ति से कौन दास बन सकता है।[5] भक्त तो वही है जो विश्वास से बिना कपट किए समाज की सेवा करता है। उस व्यक्ति मे भगवान पूर्ण रूप से व्याप्त रहता है जो विश्वास गाता है,[6] विश्वास का भजन करता है तथा जीवन मे सवत्र विश्वास का व्यवहार करता है। बिना विश्वास के भक्ति का कोई मूल्य नहीं । जिस व्यक्ति म विश्वास नहीं है उस व्यक्ति म कोई भक्ति भाव नहीं है। बिना भक्ति के जीवन व्यथ है ।[7]

---

१ भगति बिन भोजलि डूबति है रे। क० ग्र०, पृ० १५४, पद ३१०

२ ऐसे लोगनि सू का कहिये ।
जे नर भय भगति थें न्यार तिनथ सदा डराते रहिय ।।
आपण बूड और को बोड, अगिनि लगाइ मदिर मैं सोवैं ।।
क० ग्र०, पृ० १०१ पद १४४

३ राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई ।।
क० ग्र०, पृ० ८२, पद ५६

४ यहु सब झूठी बदगी बरिया पच निवाज ।
साच मारै झूठ पढ़ि, काजी कर अकाज ।। क० ग्र० पृ० ३३

५ कैसे तू हरि को दास कहायो करि बहु भेषर जनम गवायो ।
सुध बुध होइ भज्यो नहि सांई काछयो डयभ उदर क ताई ।।
क० ग्र०, पृ० ११६, पद २७८

६ जिनि गाया बिसवास सू तिन राम रह्या भरपूरि ।।
क० ग्र०, पृ० ४६

७ भगति को हीन जीवन कछू नाहीं, उतपति परलै बहुरि समाहीं ।।
क० ग्र०,

(क) समाज की दास्य भाव से सेवा–(भक्ति)

कबीरकालीन समाज दासता के बंधन से मुक्त नहीं था। वह शासन और धर्म का दास था। शासन और धर्म जो कुछ कहता था उसे समाज को करना पड़ता था। यह दासता मानसिक दासता थी जो उसे परम्परा से मिली थी। सेवक, सख्य भाव का काफी प्रचलन हो चुका था। भक्ति के क्षेत्र में भी दासता थी। हिंदू समाज राम कृष्ण को पूजते पूजते पत्थर मूर्ति का दास हो गया था। दासता की अनेक वृत्तियाँ उसके जीवन के रग रग में समा गयी थी। प्रभुता को पाने के लिए लघुता का क्रम सबने अपना लिया था। जप माला एवं पत्थर पूजा के साथ साथ जीव हिंसा भी होने लगी थी।[1] बिना राम को सही अर्थ में जाने जनता अनेक पाखण्डों में भूली हुई थी।[2]

इन विविध पाखण्डों से मुक्त होने के लिए कबीर ने दूसरे ढंग से दास भक्तों का संगठन किया था। ये भक्त कहने के लिए तो दास थे पर विचारों में बड़े स्वतन्त्र थे। ये लोग वास्तव में दास (पिछड़े हुए) वर्ग से उठे हुए ज्ञानी भक्त थे। जो जाति पाँति तथा ऊँच नीच का भेद मिटा कर समाज में समानता लाना चाहते थे।[3] इन सन्तों की एक वास्यता इतनी ही थी कि वे सब हरि दास बन कर भक्तों का एक सुसंगठित समाज बना रहे थे। कबीर सबके नेता थे। वे दासों के भी दास बनकर सबको एकता का संदेश दे रहे थे।[4] कबीर की दास भक्ति में प्रेम सहानुभूति और

---

१ कुकड़ी मार बकरी मार हक हक हक करि बोल।
क० ग्र०, पृ० ८४ पद ६२

२ पाखंड करि करि जगत भुलाना नाहिन राम अयाना।
क० ग्र०, पृ० १५३ पद ३४५

३ ना तिहि जाति पाँत्य कुल लीका ना तिहि छोति पवित्र नहीं सींचा॥
क० ग्र० पृ० १८५ (रमणी)

एक ही जननी जन्या संसारा, कौन ज्ञान थे भये निनारा।
क० ग्र०, पृ० १८५ (रमणी)

जब लग ऊँच-नीच करि जाना ते पसुआ भूले भ्रम नाना॥
क० ग्र०, पृ० ८४, पद ६६

४ कबीर चेरा संत का दासनि का परदास।
क० ग्र०, पृष्ठ ५१

\+ \+ \+

कहै कबीर दासनि को दास, अब नहि छाड़ौं हरि चरन निवास॥
क० ग्र०, पृ० ६५, पद ३९३

करुणा की अभिव्यक्ति है। जो नतिकता का उन्नयन करती है। कबीर अपने को दास' कहकर विनम्रता प्रकट करते हैं और साथ ही साथ सद्व्यवहार का प्रचार करते हैं। दास ही उनके मोता हैं। भक्त हैं। स्नेही हैं।[1] ज्ञानी है।[2] वे स्वयं दास बनकर दासों की सन भगति करते हैं और पर सेवा, परोपकार का उन्हे उपदेश देते हैं।[3] कबीर का दास भाव समाज के प्रति विश्वासपूर्ण सेवा का भाव पैदा करता है। इसीलिए कबीर का भक्ति मानवता का एक रंग में रंगने में सफल हुई है।

४ कबीर की भक्ति व्यावहारिक जीवन यापन है

कबीर की भक्ति जीवन यापन का एक सही ढंग है। उनकी भक्ति में जीवन की नकली धारणा या औपचारिकता नही है बल्कि वह उनकी रहनी है। मनुष्य का मनुष्य के साथ कर्तव्य है। मनुष्य अपने ही लिए जिया तो क्या जिया ? यदि वह भाव भक्ति नही किया तो उसका जीवन व्यर्थ है। भाव भक्ति से मनुष्य मानवमात्र के प्रति करुणा बनता है। सहृदय बनता है। उसमें सत्यशील के भाव जगते हैं।[4] दीन-दुखी के प्रति दया होती है। तब वह लोक सेवा को ही अपना कर्तव्य मान लेता है।[5] लोक सेवा को ही भक्ति मान लेता है। दिन रात लोक सेवा कर भजन करता है। मन, वाणी कर्म से 'सुमिरन' करता है।[6] उसके बाहर और भीतर का संसार अभेद हो जाता है। इस भक्ति से उसे पूर्णता की दृष्टि मिलती है। वह अपने

१ घरि परमगुर पाहुणा गुणी सनेही दास।
पट रस भोजन भगति करि, ज्यूं कद न छाड़े पास।।
क० ग्र०, पृ० १५

२ कबल ज फूल पूल बिन को निरख निज दास।
क० ग्र०, पृ० १०

३ कहैं कबीर हरि गुण गाइ लै सत संगति रिदा मझारि।
जो सेवग सेवा कर ता संगि रमै मुरारि।।
क० ग्र०, पृ० ९७, पद १२१

४ साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै।।
क० ग्र०, पृ० १८६, (रमणी)

५ भाव भगति की सेवा मानें, सतगुरु प्रकट कहै नही छानें।।
क० ग्र०, पृ० १८६, (रमणी)

६ मनसा वाचा क्रमना, कबीर सुमिरण सार।
— क० ग्र० पृष्ठ ४

७ पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै।।
क० ग्र० पद १८१

अस्तित्व को नगण्य मानकर भक्ति करता है। सांसारिक मोह दुख को त्यागकर बन्धन मुक्त होता है। यही उसकी भक्ति का मौन फल है। इसीलिए कबीर ने सत् संग को जीवन का सार माना है।[1] सत्संग भक्ति की पहली अवस्था है और दूसरी जीवन में सेवा कर के उसे व्यावहारिक रूप देना। संसार में सभी लोग कर्म करते हैं पर सब भव सागर नहीं पार कर पाते। इसका कारण यह है कि सबके कर्म भाव भक्ति पूर्ण नहीं होते। इस लिए कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! जब तक तू भाव भक्ति से पूर्ण कर्म नहीं करोगे तब तक भव-सागर नहीं तर सकते।[2] भाव भक्ति से मनुष्य ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करता है। जो भक्त ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है वह अपने पन को खो कर ईश्वरत्व धारण कर लेता है।[3] जब तक मनुष्य अपने पन का ख्याल करता है तथा अपने स्वार्थों की सिद्धि में लगा रहता है तब तक वह अनेक तरह का कष्ट झेलता है। किन्तु जब वह स्वार्थ मुक्त होकर अपनी भाव भक्ति को किसी एक निराकार शक्ति से जोड़ता है तब वह परम सुख का अनुभव करता है। संसार विकार युक्त है। स्वार्थ के कारण भाव भक्ति का रूप भी बिगड़ जाता है। इसलिए भक्त सब कुछ भूलकर एक ईश्वर की भक्ति करता है। भक्ति-रस से उसके मन के सारे विकार धुल जाते हैं। उसका मन निर्मल हो जाता है। जिसका मन निर्मल होता है उसके लिए संसार में कोई दुख नहीं। क्योंकि निर्मल हृदय में ईश्वर का निवास होता है। ईश्वर आनन्द स्वरूप है। भाव भगति से आनन्द प्राप्त होता है। भाव भगति से ईश्वर प्राप्त होता है। ईश्वर प्राप्त होने से दुख किस बात का ? दुख तो तब है जब ईश्वर नहीं है। इसलिए मनुष्य में भक्ति भाव का होना आवश्यक है। इस धरती पर दुख भूलने का एक ही मार्ग है वह है भक्ति मार्ग। दुख ज्ञानी अज्ञानी सबको होता है। दैहिक दैविक तथा भौतिक ताप सबको होता है। यह संसार ही दुख से भरा है। पर कोई दुख भोगना नहीं चाहता। इसलिए लोग सुख की खोज करते हैं। सुख खोजने से नहीं मिलता। ईश्वर खोजने से नहीं मिलता। वह सहज है उसे सहज रूप से जाना जा सकता है। उसे सहज रूप से पाया जा सकता

---

१ सार आहि संगति निरवाना और सब असार करि जाना ॥
क० ग्र० पृष्ठ १७६ (रमणी)

२ जब लगि भाव भगति नहिं करिहो। तब लग भव सागर क्यू तरि हो।
क० ग्र० पृष्ठ १८६

३ कहै कबीर तन मन का ओरा। भाव भगति हरि सू गठ जोरा ॥
क० ग्र० पद २१३

४ दुनिया भाडा दुख का भरी मुहामुह भूप।
अदयाअलहराम की कुरहे ऊणी कूप ॥ क० ग्र०, पृ० २०, दोहा ४७

है। तर्क और बुद्धिबल से उसे नहीं प्राप्त किया जा सकता क्योंकि मनुष्य की बुद्धि का विकास प्रयत्नज है स्वाभाविक नहीं। मनुष्य की जो प्रवृत्ति है, वह सहज है। वह स्वाभाविक है। वही सुख का मूल है। भक्ति द्वारा मनुष्य इसी सुख के मूल का विकास करता है। वह दुनियाँ मे सीखे हुये सारे प्रपंचो को छोडकर अपने सहज गुणो का विकास करता है। इन्ही गुणो म मनुष्य के व्यक्तित्व का नैतिक मूल्य निहित रहता है। मनुष्य म नैतिक मूल्यो का विकास भक्ति द्वारा होता है। इसीलिए ज्ञानी अज्ञानी दोनो भक्ति करते हैं। दोनो म नैतिकता पायी जाती है। मानव समाज म आज तक जितने भी महान व्यक्ति हुए है सबमे नैतिकता का ही बल है। वह बल उन्हें भक्ति से प्राप्त हुआ था। कबीर की भाव भगति का भी यही उद्देश्य है कि मनुष्य भक्ति करके अपने व्यक्तित्व को उज्ज्वल बनाये।[१] भक्ति की दूसरी अवस्था है। सत्संग द्वारा अनुभूत भक्ति भाव मानव समाज को उचित एवं नैतिक रूप से रहने का ढंग बताता है। इसीलिए कबीर ने सारे अनैतिक कर्मों की निन्दा करके सबको भक्ति करने का उपदेश दिया था।[२] उन्होंने बताया था कि बिना 'भाव भगति" के, बिना विश्वास के बिना जन सेवा के, मनुष्य का संशय एवं संकट दूर नहीं हो सकता। बिना "भाव भगति के दुख से छुटकारा तथा सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जन सेवा ही हरि भक्ति है। बिना हरि भक्ति के मोक्ष नहीं मिलता।[३] इस लिए समाज के हर एक व्यक्ति को भाव भक्ति कर्तव्य के रूप मे करनी चाहिए।

५ विनम्रता

विनम्रता भक्त का प्रमुख गुण है जो उसे महान बनाता है। कबीर काम, क्रोध और तृष्णा को छोडकर भक्ति कर रहे थे।[४] जगत के प्रति उनकी आस्था

---

१ साँच सील का चौका दीजै। भाव भगति की सेवा कीजै ॥

क० ग्र०, पृ० १८९

२ कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ।
दुरमति दूर गँवाइसी देसी सुमति बताइ ॥

क० ग्र०, पृ० ३८

३ भाव भगति विसवास बिनु कटै न संसै मूल।
कहै कबीर हरि भगति बिनु मुकति नहीं रे मूल ॥

क० ग्र०, पृ० १८६ (रमणी)

४ काम क्रोध त्रिष्णा तजै, ताहि मिलै भगवान।

क० ग्र०, पृष्ठ ८

जीवित रहकर भी मृतक के समान थी।[1] क्योंकि उन्होंने 'मैं' के स्वार्थी भाव को मिटा दिया था। वे अपने को मनुष्य के पाँव के नीचे का घास तथा धूल समझते थे।[2] उन्होंने अभिमान तथा पाखण्ड को छोड़कर जनता के साथ विनम्रता का व्यवहार करना सीखा था। समाज के साथ उनका स्वामि भक्ति उस पालतू कुत्ते की तरह थी जो स्वामी का हर हुक्म मानता है। जब स्वामी उसे बुलाता है तो उसके पास जाता है। दुत्कारता है तो दूर हट जाता है। कुछ देता है तो खा लेता है, नहीं तो चुपचाप स्वामी के पास पड़ा रहता है।[3] कबीर अपनी विनम्रता तथा दीनता को कई रूपकों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कभी वे अपने को राम के पिंजड़े में बन्द तोता मानते हैं। तो कभी वे हरि भक्ति की मस्ती में अपने को हरि का हाथी मानते हैं।[5] कबीर के इन विविध कथनों से ऐसा लगता है कि समाज के प्रति विनम्रता प्रदर्शन ही उनका मुख्य ध्येय था जिससे कि लोग अभिमान तथा पाखण्ड को भूलकर पारस्परिक प्रेम स्थापित करें। वस्तुतः समाज में प्रेम भाव का प्रचार एवं प्रसार ही उनकी भक्ति का उद्देश्य था।

निष्कर्ष

कबीर के समाज में भक्ति के नाम पर अनेक प्रकार के कर्मकाण्ड प्रचलित थे। सत्य के स्थान पर झूठी पूजा अरचा का व्यवहार होने लगा था। समाज में धर्म तथा भक्ति के नाम पर हिंसात्मक कार्यों के अलावा अनेक तरह का भ्रष्टाचार फैला

---

१ जीवत मृतक ह्वै रहै तजै जगत की आस।
तब हरि सेवा आपण करै मति दुख पावै दास॥
क० ग्र० पृष्ठ ६५

२ कबीर ऐसा ह्वै रहा ज्यूं पाऊं तलि घास।
रोड़ा ह्वै रहो बाट का तजि पाषंड अभिमान॥
क० ग्र०, पृ० ५१

३ कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउं॥
गलै राम की जेवड़ी जित खैंचे तित जाउं॥
तो-तो करै ता बाहुड़ो दुरि दुरि करै तो जाउं॥
ज्यूं हरि राखै त्यूं रहौं जो देवै सो खाउं॥
क० ग्र० पृष्ठ १५

४ तुम्ह प्यंजरा मैं सुवना तोरा दरसन देहु भाग बड़ मोरा॥
क० ग्र०, पृष्ठ ९६, पद १२०

५ काहे को हो मेरे साधा हूं हाथी हरि केरा॥
क० ग्र०, पृष्ठ १३२, पद २६१

हुआ था। जिसमें जन जीवन की प्रगति में स्थिरता आ गयी थी। ऐसे ही समय में जन जीवन में नतिकता लाने के लिए कबीर ने अपना भक्ति का प्रचार मानव मात्र की सेवा सगठन तथा आनन्द के लिये किया था। उनकी भक्ति का सार 'असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण' है। जो कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है। मनुष्य को इसी सत्य का व्यवहार तथा आचरण करना चाहिए। कबीर के अनुसार हर एक आत्मा में भगवान रहता है। इसलिये हर एक मनुष्य की सेवा भगवान के रूप में करना चाहिये। सेवा का साकार रूप मानव का उत्पादक कर्म है जिससे वह अपनी और अपने परिवार की सेवा करता है। यही कर्म की सेवा सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर की जानी चाहिए। जिससे कि समाज में अर्थ एवं अधिकार की समानता हो। कबीर की भक्ति कर्म के प्रति नतिकता का दृष्टिकोण रखती है। इसलिये समाज के हर एक व्यक्ति का कर्म नतिक स्तर पर होना चाहिए। नतिकता का व्यवहार में लाने से ही मनुष्य सच्चा भक्त बन सकता है। तभी मानव, मानव से पारिवारिक प्रेम स्थापित कर सकता है। जब तक मनुष्य की स्वार्थ पूर्ण जीवन की ऊपरी धारणाएं समाप्त नहीं हो जाती तब तक वह नैतिकता को रहनी के स्तर पर नहीं उतार सकता। कबीर की भक्ति आचरण की रहनी है। जीवन-यापन का एक ढंग है। जिसे पढ़कर नहीं बल्कि व्यवहार में उतार कर जाना जा सकता है। इसीलिये वह अनुभव गम्य है। यह अनुभव समाज के सम्पर्क में ही रहकर प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः समाज ही भक्त का मन्दिर है। जिसमें वह सद्व्यवहार की भक्ति करके मोक्ष पाता है।

उपसंहार

कबीर भारतीय इतिहास के एक ऐसे विवादग्रस्त व्यक्ति हैं जिनके सम्बन्ध मे विद्वान अभी भी एक मत नही हो सके। इसका सबसे बड़ा कारण कबीर की रचनाओं मे प्राप्त अनेक विरोधी तत्व हैं जो कबीर के व्यक्तित्व एवं विचारधारा पर प्रश्न चिन्ह लगाते रहते हैं। किन्तु यदि उनकी रचनाओं का आग्रह मुक्त होकर अध्ययन किया जाय तो उसमे आरम्भ से अन्त तक एक सूत्रता दिखायी देती है। समाज सम्बन्धी उनकी धारणा बिलकुल ही स्पष्ट है। इस पुस्तक मे इसी पक्ष का विवेचन किया गया है।

कबीर के जीवन काल निर्धारण के सम्बन्ध मे विद्वानो मे बड़ा मतभेद है। मतभेद का कारण कबीर के जीवन काल के सम्बन्ध मे कोई सही ऐतिहासिक तिथि का न मिलना है। प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो तथा किंवदन्तियो के आधार पर विद्वानो ने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जिन्हे पूर्णतया प्रामाणिक नही माना जा सकता। अन्त और बाह्य साक्ष्य के आधार पर अभी तक कोई ऐसी प्रामाणिक तिथि नही मिली है जो सब दृष्टि से उपयुक्त एवं सर्वमान्य हो। मैंने विभिन्न मतो एवं उपलब्ध सामग्रियो का निरीक्षण परीक्षण करते हुए इस तथ्य पर पहुँचने की कोशिश की है कि कबीर का जीवन काल सन् १३४८ ई० से सन् १४४८ ई० तक है जो कि कई दृष्टि से उपयुक्त लगता है।

उपरोक्त काल खण्ड के बीच तत्कालीन परिस्थितियो का अध्ययन इतिहास एवं कबीर काव्य के आधार पर किया गया है। संस्कृति, धर्म, राजनीति, साहित्य एवं अर्थ आदि सामाजिक रूपो मे संघर्ष ही संघर्ष दिखाई देता है। इन संघर्षों मे जो शक्तिशाली था वही विजयी होता था। इसीलिए धर्म एवं राजनीति मे जल्दी-जल्दी परिवर्तन होते रहे। मुख्यतः धर्म और राजनीति जनता के सुख दुख के कारण थे। समाज मे असमानता के विविध रूप इन्ही दोनो के पारस्परिक संघर्षो के परिणाम थे। कबीर का काव्य भी इन्ही असमानताओ के बीच विकसित हुआ है जिसकी साक्षी उनके काव्य मे मिलती है।

कबीर मे कुछ विशेष प्रकार की प्रतिभा थी जिसका उपयोग उन्होने मानव और समाज को विविध ढंग से देखने मे किया था। वह समाज की विविध गति विधियो का निरीक्षण ही नही करते थे। बल्कि उन गति विधियो की नैतिकता पर भी विचार करते थे। वे अपने चिंतन को काव्य के माध्यम से

व्यक्त करने के कारण कवि हैं। हर एक विषय पर तार्किक ढंग से सोचने के कारण एक सफल विचारक हैं और समस्त जीव के साथ करुणा एवं आत्मीयता का भाव रखने के कारण संत हैं। मैंने उनके व्यक्तित्व को संत, विचारक तथा कवि के रूप में समझने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः उनके ये तीनों रूप चिन्तन के क्षेत्र में एक हैं। उनके व्यक्तित्व से उभरे सारे गुण मानवमात्र के कल्याण के लिए हैं। अहं का त्याग नश्वर संसार से विराग तथा सांसारिकता से विमुख होकर भक्ति करने का उनका अभिप्राय यही है कि कोई किसी का शोषण न करे, कोई किसी की प्रगति में बाधक न बने। सबको जीने, रहने का समान अधिकार मिले। वे सामाजिक दुर्व्यवस्था से पीड़ित थे। जन जीवन के व्यवहार से असन्तुष्ट थे और पांडे मुल्ला की करनी से रुष्ट थे क्योंकि ये सब रूप सामाजिक संगठन को बिगाड़ने वाले थे। कबीर प्रेम व्यवहार तथा भक्ति के माध्यम से समाज में नैतिक भावनाओं की स्थापना करना चाहते थे। वे अपने लिए नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए भक्ति करते थे। इसीलिए वे कोरे पाण्डित्य का खण्डन कर आत्मानुभूत व्यवहार का प्रचार कर रहे थे। उन्होंने यह मान लिया था कि मानव ही समाज का प्रमुख है। मानव ही अपने समाज का विविध वातावरण बनाता है। वही समाज का कर्ता नेता है। यदि उसमें कर्तव्य का विवेक हो जाय तो समाज का हर एक व्यक्ति सही रास्ते पर चल सकता है। कोई किसी के सुख में बाधक नहीं हो सकता। इसके लिए स्वतन्त्र चिन्तन की आवश्यकता है। चिंतन से मनुष्य अपने जीवन के हेतु तथा उत्तरदायित्व को समझता है। यही आत्मा की पहचान है जिससे मनुष्य सही कर्म करना सीखता है। कबीर का व्यक्तित्व इन्हीं सद्गुणों को लेकर अधिक ऊपर उठ सका है। मनुष्य स्वार्थपूर्ण कर्म करके मानव जीवन से दूर चला जाता है पर कबीर सबका खण्डन मण्डन करके मानव जीवन के बिलकुल समीप पहुँच गये थे। वे जीवन के समीप होकर बोल रहे थे उनके जीवन की सबसे बड़ी सफलता यह है कि उन्होंने जीवन को सही ढंग से समझा है और उसे व्यावहारिक रूप दिया है।

कबीर कालीन समाज में धर्म प्रमुख था। राजनीति, साहित्य, अर्थ आदि धर्म का अनुसरण करते थे। पर यह धर्म वास्तव में धर्म नहीं था बल्कि यह कर्मकाण्ड एवं बाह्याचार था। उस समय धर्म के नाम पर मानव समाज में अनेक वर्ग बन गये थे। इन वर्गों में विद्वेष के कारण संघर्ष था। पण्डित, मुल्ला में धर्म एवं ईश्वर के नाम पर मतभेद था और साथ ही साथ दोनों के सामाजिक व्यवहार टूट गये थे। हिन्दू समाज में अनेक जातीय वर्ग बन गये थे जिसके कारण जन-जीवन में छूत-अछूत का भाव था और उस भेद भाव के कारण पूरे समाज में अनेकता थी। कबीर ने समाज के इस बाह्य और अंतरंग को देखा और आवश्यकतानुसार उसकी आलोचना भी की। वे ऐसे समाज में रहकर भी जाति, धर्म तथा वर्गवाद से मुक्त थे

उन्होने समाज मे तटस्थ भाव से रहकर, हिन्दू मुसल्मान तथा अन्य जातीय भेदो को मिटाकर समस्त मानव को एक रूप से जोडने की कोशिश की थी। वस्तुत तत्कालीन समाज म प्रचलित लोक व्यवहार एव वर्ग विद्वेष मनुष्य को पतन की ओर ले जा रहे थे जिसकी प्रतिक्रिया कबीर पर हुई है। उनका सारा काव्य उसी प्रतिक्रिया की उपज है।

कबीर का उद्देश्य केवल जाति धर्म वेद पुराण कुरान एव मनुष्य के अनतिक कर्म की निन्दा करना ही नही था बल्कि वे एक ऐसे समाज की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थ जिसम मनुष्य प्रमुख हो। धर्म साहित्य, राजनीति अर्थ व्यवस्था आदि समाज मे सहायक रूप मनुष्य की सेवा म प्रस्तुत हो। मनुष्य के विकास म सहायक हो। पर तत्कालीन समाज का मनुष्य धर्म एव राजनीति का दास था। वह मानसिक एव शारीरिक रूप म परत त्र था। उसमे स्वार्थ के कारण सघर्ष था। वह सघर्ष के विविध पहलुओ म जीवन मूल्य खो चुका था। लोभ के कारण सबके जीवन की शान्ति भग हो गयी थी। सारा समाज कनक और कामिनी मे सुख खोज रहा था। इसीलिए समाज म अत्याचार एव भ्रष्टाचार था। मनुष्य को सुख एव शान्ति देने वाली चीजें ही उसके दुख का कारण थी। लोभी मानव कृत राजनीतिक एव सामाजिक दुर्व्यवस्था ने समाज को अनेक खण्डो मे तोड दिया था जिसके कारण समाज का अधिकांश वर्ग दुखी था। कबीर मानव समाज को इस रूप मे नही देखना चाहते थे। व धर्म जाति एव वर्ग के नाम पर ऊपर से आरोपित अवांछित तत्त्वो को हटा कर मानव को मानव रूप मे देखना चाहते थ। यही उनका आत्म दर्शन था। उन्हे मानव को मानव रूप म देखने की पूर्ण दृष्टि मिली थी। कबीर ने प्रेम, सहानुभूति एव पर सेवा का प्रचार इसी पूर्णता के स्तर पर किया था। इसके प्रचार के लिए उन्होने भक्तो का सगठन बनाया था। भक्ति भजन एव सत्सग द्वारा उसे व्यावहारिक रूप दिया था। उस समाज के लिए कबीर द्वारा कही गयी सारी बातें बडी उपयोगी थी। वस्तुत कबीर न वही कहा था जो उस समाज म नही था। इससे ऐसा लगता है कि कबीर क मन मे एक ऐसे समाज निर्माण की भावना विद्यमान थी जिसमे सभी सुखी हो।

कबीर न समाज को बाहर और भीतर की आँखो स भली भाँति देखा था। उन्होने अपने चिन्तन मनन से मनुष्य के क्रिया व्यापार को अच्छी तरह समझा था। इसीलिए उन्होन हजारो वर्ष से आती हुई परम्परा का तिरस्कार किया था। उस परम्परागत आये हुए धर्म एव पाण्डित्यपूर्ण शास्त्र म कोई मानव जीवन उपयोगी तत्त्व नही था। इसलिए कबीर न उसे कोई महत्त्व नही दिया। उन्होने मानव धर्म का नये सिरे से चिन्तन किया और परम्परागत पाखण्डपूर्ण मान्यताओ का विरोध

कर मनुष्य को सही राह पर चलने का निर्देश किया। उनके स्वर में एक क्रांतिकारी संदेश था। उनकी भक्ति में एक रचनात्मक सामाजिक स्वरूप था। वे अपने सद्व्यवहार द्वारा समाज में नैतिकता का बीज बोना चाहते थे। वे मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नहीं मानते थे। सबको समान दृष्टि से देखते थे। वे स्वर्ग नरक में कोई आस्था नहीं रखते थे क्योंकि यह सब मनुष्य की कल्पना और कमजोरी है। मनुष्य स्वर्ग नरक तथा ईश्वर की कल्पना करके स्वयं डरता है और दूसरों को डराता है। कबीर के भारी और हल्के रूप को किसी भी तरह मानने को तैयार नहीं थे। उनकी सारी आस्था समाज के मनुष्य पर थी। उनका स्वर्ग बैकुण्ठ इसी धरती पर था। उनका ईश्वर हर एक मनुष्य था। इसीलिए वे साधु संगति को बैकुण्ठ मानते थे और भक्त (जो नैतिकता का आचरण करता है) को भगवान मानते थे। उनके विचार से सारी अलौकिक बातें लौकिक जीवन के सुधार के लिए हैं। इसी लिए उन्होंने लौकिक जीवन को ही सब कुछ माना है। समाज में रहकर गृह की आजीविका के लिए उद्योग करना दूसरों का यथाशक्ति उपकार करना जीवन में सत्य का आचरण और अहिंसा का पालन करना उनके दर्शन का लक्ष्य है।

कबीर भक्ति को जीवन का एक अंग मानते हैं। भक्ति से अलग होना जीवन से अलग होना है। बिना भक्ति के जीवन बनता नहीं। समाज के हर एक व्यक्ति के लिए जीवन का महत्व है। इसलिए जीवन की रक्षा के लिए सबको भक्ति करना चाहिए। भक्ति से मनुष्य अहंकार, काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों से मुक्त होता है। इसमें उसे संतोष एवं धैर्य मिलता है। संतोष ही मनुष्य के सुख का कारण है। बिना संतोष के मनुष्य अनेक कष्ट झेलता है। अतः भक्ति दुख निवारण का एक उपाय है। एक साधन है। भक्त निशि दिन भजन करता है। वह भक्ति से समाज में जीने, रहने का ढंग सीखता है वह सद्‌व्यवहार से हम तुम के ऊपर उठता है। वह अपनी भक्ति के कारण ही समाज का प्रिय होता है। भक्ति से मनुष्य सामाजिक असमानता आधिकारिक विषमता तथा अन्याय को मिटाता है। भक्ति सम वय का रिश्ता का एक रूप है। इसलिए कबीर ने कथनी छोड़कर करनी करने को और करनी कर के रहनी के स्तर को बनाये रखने का उपदेश दिया था। मनुष्य की रहनी ही समाज है। मनुष्य के रहन का ढंग मनुष्य का मनुष्य के साथ सद्व्यवहार ही समाज को प्रगतिशील बनाता है सद्‌व्यवहार में सत्यता का आचरण होना आवश्यक है। आचरण की पवित्रता भक्ति से ही सम्भव है। आचरण जीवन के ऊपरी व्यवहार से नहीं बनता। वह तो अपने अन्दर में उद्भुत नैतिकता है जिसका व्यवहार जीवन के हर एक क्षण में होता रहता है। इसलिए कबीर भक्ति को ऊपर से आरोपित कोई आदर्श नहीं मानते। उसे वे जीवन यापन का एक अंग मानते हैं।

उस व परम मूल्य के रूप म स्वीकार करते हैं। इसलिए भक्ति प्रत्येक मनुष्य को कत
के रूप म करनी चाहिए। नतिक कतव्य ही मनुष्य की भक्ति है।

कबीर के सामाजिक विचारो और कार्यों का महत्व यह है कि उन्होंने व्य
वहारिक स्तर पर एक अलग समाज की स्थापना की थी जो परम्परागत मा यता
से भिन्न था। कबीर का यह व्यवहार मनुष्य का नतिक कम था। प्रत्यक्ष जीवन स्ा
था। उन्होंने मानव को समाज का प्रमुख घटक माना था। इसीलिए उन्होंने न
की सवा नारायण रूप म की थी। कबीर क अनुसार मनुष्य की सेवा और मनुष
के साथ सद् व्यवहार ही मनुष्य की भक्ति है। वस्तुत उनकी भक्ति का उद्देश
मनुष्य म सद्गणो को उभारना है जिसम मानव समाज का कल्याण एव विका
होता है। मानव मग्‍ः ही मानवता की सबसे बडी उपलब्धि है।

कबीर सम्बन्धी साहित्य–सूची

क–हिन्दी ग्रन्थ

१ कबीर ग्रन्थावली – डॉ० श्याम सुन्दरदास
२ कबीर दर्शन – डा० रामजी लाल 'सहायक'
३ कबीर की विचार धारा – डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत
४ कबीर साहित्य की भूमिका – डा० रामरतन भटनागर
५ कबीर – डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
६ कबीर ग्रन्थावली – डॉ० पारसनाथ तिवारी
७ कबीर का रहस्यवाद – डॉ० रामकुमार वर्मा
८ कबीर और जायसी का रहस्यवाद – डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत
९ कबीर वचनामृत – डॉ० मुंशीराम शर्मा
१० कबीर साखी सार – डा० तारकनाथ बाली
११ कबीर के धार्मिक विश्वास – धर्मपाल मैनी
१२ कबीर साहित्य की परख – आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
१३ कबीर संग्रह – सीताराम चतुर्वेदी
१४ कबीर साहित्य का अध्ययन – पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव
१५ कबीर साहित्य और सिद्धान्त – यज्ञदत्त शर्मा
१६ कबीर एक विवेचन – डा० सरनाम सिंह शर्मा
१७ कबीर व्यक्तित्व – डा० सरनामसिंह शर्मा
१८ कबीर विमर्श – डॉ० सरनाम सिंह शर्मा
१९ कबीर वचनावली – पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय
२० कबीर-कसौटी – बाबू लहना सिंह
२१ कबीर – विजयेन्द्र स्नातक
२२ कबीर चरित्र बोध – स्वामी युगलानन्द
२३ कबीर और कबीर पंथ – डा० केदारनाथ द्विवेदी
२४ कबीर मंसूर – परमानन्ददास
२५ बीजक – विचारदास शास्त्री

२६ युग द्रष्टा कबीर — सारकनाथ बाली
२७ संत कबीर — डॉ० रामकुमार वर्मा
२८ संत कबीर दर्शन — गजेन्द्र सिंह

(ग) सन्त साहित्य
१ भारतीय सन्त परम्परा और समाज — डॉ० रांगेय राघव
२ सन्त साहित्य — डॉ० सुन्दरसिंह मजीठिया
३ सन्त साहित्य और साधना — भुवनेश्वरनाथ मिश्र (माधव)
४ सन्त काव्य — आ० परशुराम चतुर्वेदी
५ हिन्दी सन्त साहित्य — डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
६ हिन्दी जनपद सन्त — गोमीराम सन्त साहित्य
शोध संस्थान द्वारा सम्पादित ।
प्रस्तु—जगन्नाथनराम
७ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा — आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

(ग) दर्शन शास्त्र
१ गीता का व्यवहार दर्शन — रामगोपाल मेहता
२ दर्शन दिग्दर्शन — राहुल सांकृत्यायन
३ भारतीय दर्शन — बल्देव उपाध्याय
४ भारतीय दर्शन — वाचस्पति गरोला
५ भारतीय दर्शन का परिचय — डॉ० रामानन्द तिवारी
६ भारतीय दर्शन की भूमिका — डा० रामानन्द तिवारी
७ मुस्लिम दर्शन — राहुल सांकृत्यायन
८ वेदान्त दर्शन — गीता प्रेस गोरखपुर
९ सन्त दर्शन — डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित

(घ) समाजशास्त्र
१ भारतीय सामाजिक व्यवस्था — शम्भूरत्न त्रिपाठी
२ मानव समाज — राहुल सांकृत्यायन
३ समाजवाद एक विवेचन — गुरुदत्त
४ समाज दर्शन की रूप रेखा — जे० एस० मैकेंजी
५ संस्कृति और मानवशास्त्र — डॉ० रांगेय राघव,
गोविन्द शर्मा

(ङ) अन्य पुस्तकें
१ कार्ल मार्क्स, पूँजी — प्रगति प्रकाशन, मास्को

काव्य यथार्थ और प्रगति — डा० रागेय राघव
गरीबदास जी की बानी — व० प्रे० प्रयाग
तुलसी आधुनिक वातायान से — रमानुतल मेघ
धर्म और समाज — राधाकृष्णन
नाथ सम्प्रदाय — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
परिचयी साहित्य — डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
प्रेम योग — स्वामी विवेकानन्द
प्राचीन भारत — डा० राधा कमल मुखर्जी
भक्ति का विकास — डा० मुंशीराम शर्मा
१ भक्तमाल — नाभादास कृत
२ मध्ययुगीन काव्य साधना — डा० रामचन्द्र तिवारी
३ मध्ययुगीन प्रेमाख्यान — डा० श्याम मनोहर पाण्डेय
४ मनु की समाज व्यवस्था — सत्य मित्र दुबे
५ मध्यकालीन धर्म साधना — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
६ रामानन्द सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव — डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव
७ रामचरितमानस (तुलसीदास कृत) — गीताप्रेस, गोरखपुर तुलसीदास कृत
८ रामकथा (उत्पत्ति और विकास) — कामिल बुल्के
९ वैज्ञानिक भौतिकवाद — राहुल सांकृत्यायन
० सूफी मत और हिन्दी साहित्य — डा० विमल कुमार जैन
१ सिद्ध साहित्य — डा० धर्मवीर भारती
२ साहित्य तथा साहित्यकार — डा० देवराज उपाध्याय
३ समाजवाद एक विवेचन — गुरुदत्त
४ सत्संग साधन और फल — स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती
५ हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि — विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
२६ हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा — डा० गोविन्द त्रिगुणायत
२७ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० रामकुमार वर्मा
२८ हिन्दी नवरत्न — मिश्र बन्धु
२९ हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय — डा० पी० द० बड़थ्वाल

(च) इतिहास-ग्रन्थ

१ भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास	– एस० आर० शर्मा
२ मध्यकालीन भारत का इतिहास	– बी० के० शर्मा
३ मध्यकालीन भारत	– श्री निवासचारी
४ मध्यकालीन भारत	– पी० डी० गुप्ता
५ मध्य देश ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन	– डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

(छ) संस्कृत ग्रन्थ

१ पातंजल योग दर्शनम्	– ब्रह्मलीन मुनि
२ श्रीमद् भगवदगीता	– गीताप्रेस गोरखपुर
३ श्री विष्णु पुराण	– गीताप्रेस, गोरखपुर
४ संस्कृत बीजक	– हनुमान साहब
५ ईशादि नौउपनिषद	– गीताप्रेस, गोरखपुर

(ज) उर्दू और फारसी ग्रन्थ

१ खजीन अतुल असफिया	– मौलवी गुलाम सरूर
२ तजकीरुल फुकरा	– नसीरुद्दीन
३ दबिस्ताने मजाहिब	– ट्रोयर शी द्वारा अनूदित
४ आइन ए-अकबरी	– अबुल फजल अल्लामी

(झ) अंग्रेजी ग्रन्थ

१ कबीर अॅण्ड भक्ति मूवमेंट	– डॉ० मोहन सिंह
२ कबीर अॅण्ड हिज फालोअस	– एफ० ई० की०
३ कबीर अॅण्ड दि कबीर पंथ	– एच० जी० वेस्टकाट
४ कबीर हिज बायोग्राफी	– डा० मोहन सिंह
५ दि सिख रेलिजन	– एम० एस० मेकालिफ
६ दि सल्तनत आफ डेलही	– आशिर्वादीलाल
७ मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र	– प्रो० रानाडे
८ मेडिवल इण्डिया	– डॉ० ईश्वरी प्रसाद
९ मनूमेंटल ऐंटिक्वटीज आफ दि नॉर्थ वेस्टन प्राविंसेज	– डा० फयुहर
१० मेडिवल इण्डिया	– एस० लेनपूल
११ वष्णविज्म शविज्म अण्ड अदर रेलिजस सिस्टिम	– डॉ० भण्डारकर

१२ लाइफ एण्ड कंडिशन आफ् द पिपुल आफ हिन्दुस्तान — कुँवर मुहम्मद अशरफ
१३ हन्ड्रेड पोएम्स आफ कबीर — रवीन्द्रनाथ टगोर
१४ हिस्टी आफ मुस्लिमरूल इन इण्डिया — डॉ० ईश्वरी प्रसाद
१५ आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया नार्थ वेस्ट प्राविंसेज, — भाग २
१६ इण्डियन इस्लाम — टिट्स
१७ ए हिस्ट्री आफ इण्डिया — माइकेल इडवर्ड स
१८ एलिएट एण्ड डासन — खण्ड ३
१९ ऑन आउट लाइन आफ दि रेलिजस लिटरेचर — जे० एन्० फर्कुहर

पत्रिकाएँ

कबीर-पथ — दिल्ली
कल्याण — गीताप्रेस, गोरखपुर
कल्पना — हैदराबाद
गवेषणा — केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
दार्शनिक त्रमासिक — कानपुर
परिषद पत्रिका — बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना
नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका — बनारस
पूर्वी टाइम्स (कबीर विशेषांक) — गोरखपुर
भारतीय साहित्य — आगरा
माध्यम — इलाहाबाद
लेखन — कलकत्ता
लोकतंत्र समीक्षा — नई दिल्ली
साहित्य सन्देश — आगरा
सरस्वती — प्रयाग
साहित्य पर्यवेक्षक — कानपुर
सम्मेलन पत्रिका — प्रयाग
हिन्दी अनुशीलन — प्रयाग
हिन्दुस्तान त्रमासिक
शोध पत्रिका — इलाहाबाद

अनुसंधान — इलाहाबाद
आलोचना त्रमासिक — दिल्ली

हस्तलिखित प्रति

दादू दयाल की वाणी — पटियाला
बषना जी की वाणी — जयपुर

शब्द कोश

१ मानक हिन्दी कोश